साहित्य अमृत

वैशाख-ज्येष्ठ, संवत्-२०७९ ❖ मई २०२२
मासिक

वर्ष-२७ ❖ अंक-१० ❖ पृष्ठ ८४
यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित
ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक
पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक
डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)
श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक
पीयूष कुमार

संपादक
लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक
डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक
उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२
फोन : ०११-२३२८९७७७
०८४४८६१२२६९
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क
एक अंक—₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण
बैंक ऑफ इंडिया
खाता सं. : **600120110001052**
IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

✍ **संपादकीय**
सबकी हिंदी ४
✍ **प्रतिस्मृति**
फत्तू भूखा है/ *देवेंद्र सत्यार्थी* ६
✍ **कहानी**
स्मृतियाँ/ *अश्विनीकुमार दुबे* १२
परोपकार/ *मंजरी शुक्ला* १८
जिंदा होने का सर्टिफिकेट/ *राजेश कुमार* ३६
लँगड़ी/ *दिवाकर पांडेय 'चित्रगुप्त'* ५४
मेरे हिस्से का सुख/ *मार्टिन जॉन* ६६
✍ **लघुकथा**
महाराज की जय हो/ *प्रतिभा चौहान* १७
कल का छोकरा/ *सविता इंद्र गुप्ता* ३५
व्यापार/ *प्रतिभा चौहान* ४४
नुस्खा/ *सविता इंद्र गुप्ता* ६५
✍ **आलेख**
बीती ताहि बिसार दे/ *रमेश चंद्र बादल* १५
उर्वीजी की लेखनी लिखती निशि-दिन राम/ *बालस्वरूप राही* २२
हिंदी विश्व के कुशल चितेरे सरस्वती साधक : रामदरश मिश्र/ *ओम निश्चल* २६
बदला लिया मैंने : अनंत कान्हेरे/ *विद्या केशव चिटको* ३३
ब्रेख्त के नाट्य सिद्धांत का सामाजिक सरोकार/ *प्रदीप त्रिपाठी* ४२
क्रांति के विस्मृत नायक और कवि : पंडित जगतराम हरियानवी/ *अजय कुमार 'अजेय'* ६८
✍ **कविता**
नदी जब सूख जाती है/ *भावना सक्सेना* १०
क्या युद्ध जरूरी है/ *गिरिराज शरण अग्रवाल* ११
पुत्री—सीता, जीजा, लक्ष्मीबाई/ *प्रीति कच्छल* २०
तूफान की संभावना/ *इंदिरा मोहन* २१
ताल/ *नरेश नाज़* ३२
ग़ज़ल/ *राजेंद्र कलकल* ४१
रंगों का खेल/ *फैयाज़ हुसैन* ५३
कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर/ *गिरेंद्रसिंह भदौरिया 'प्राण'* ५८
बुढ़ापे की लाठी/ *सत्यनारायण भटनागर* ५९
कोयल की कूक निराली/ *सुमन यादव* ७८
✍ **राम झरोखे बैठ के**
महानता के मुगालते का नया मानसिक मर्ज/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३०
✍ **व्यंग्य**
लॉकडाउन, भ्रष्टाचार और उसके साथी/ *हरदेव सिंह धीमान* ४०
✍ **जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख**
गोपाल कृष्ण गोखले, वीर सावरकर ४५
✍ **स्मरण**
महामानव थे डॉ. स्मरजीत जैना/ *प्रेमपाल शर्मा* ४८
✍ **ललित-निबंध**
माटी-चंदन-सोना/ *विनम्र सेन सिंह* २४
✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**
प्रण/ *मेहुल प्रजापति* ६०
✍ **लोक-साहित्य**
सिक्किम के उत्सवधर्मी लोकगीत और लोकनृत्य/ *वीरेंद्र परमार* ६२
✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**
एक सूर्यास्त का ब्योरा/ *व्लैदिमिर नैबोकोव* ७०
✍ **यात्रा-वृत्तांत**
गेट्लिनबर्ग : एक रोमांचक अनुभव/ *राजेंद्र नागदेव* ७४
✍ **बाल-संसार**
निर्णय/ *निश्चल* ७६

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७९
✍ वर्ग-पहेली ८०
✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८१

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सबकी हिंदी

नोबेल सम्मान मिलने के बाद कविवर रवींद्रनाथ टैगोर को देश-विदेश के अनेक संस्थानों द्वारा व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किया गया। इसी क्रम में उन्हें अहमदाबाद की एक संस्था ने व्याख्यान हेतु आमंत्रित किया। टैगोरजी इस बात को लेकर दुविधा में पड़ गए कि व्याख्यान हेतु किस भाषा का प्रयोग किया जाए। उनकी मातृभाषा बांग्ला कोई समझेगा नहीं। गुजराती उन्हें न आती थी, न सीखने का समय था। अंग्रेजी जानने वाले भी थोड़े से लोग होंगे। हिंदी का विकल्प उनके मन में था, किंतु इस बात का संकोच था कि वे पुल्लिंग-स्त्रीलिंग में गड़बड़ कर जाते हैं। उन्होंने महात्मा गांधी को पत्र लिखकर अपनी परेशानी बताई तथा सलाह माँगी कि क्या करें? महात्मा गांधी ने उन्हें सुझाया कि हिंदी में व्याख्यान देना ही सर्वाधिक उपयुक्त रहेगा और वे पुल्लिंग-स्त्रीलिंग वाले संकोच में न पड़ें।

टैगोर ने अहमदाबाद में हिंदी में ही व्याख्यान दिया और वह बहुत सराहा गया। उसके बाद उन्हें जहाँ भी अवसर मिला, हिंदी में ही व्याख्यान दिया। यह सौ साल पहले की बात है, जब न रेडियो था, न दूरदर्शन, न हिंदी सिनेमा।

इसी प्रकार महर्षि दयानंद, जिनकी मातृभाषा गुजराती थी, आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के लिए संस्कृत में प्रवचन किया करते थे। उन्हें सुझाव दिए गए कि यदि आर्य समाज को गाँव-गाँव में पहुँचाना है तो उन्हें हिंदी का प्रयोग करना चाहिए। सुझाव देने वालों में एक अंग्रेज विद्वान् भी थे, जो हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के समर्थक थे। महर्षि दयानंद ने इस सुझाव को माना और हिंदी में प्रवचन करने लगे। यह सच्चाई है कि हिंदी के कारण आर्य समाज गाँव-गाँव में पहुँचा और आर्य समाज को मानने वालों की संख्या में कई गुना वृद्धि हो गई। तब भी न रेडियो था, न दूरदर्शन।

थोड़ा और पीछे की ओर जाएँ तो जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में अपने पाँव जमाना शुरू कर रही थी, तब ब्रिटिश सरकार ने एडवर्ड टेरी नाम के एक विद्वान् को विशेष दायित्व देकर भारत भेजा था कि टेरी पूरे भारत का भ्रमण करें और यह पता लगाएँ कि भारत में ऐसी कौन सी भाषा है, जिसे पूरे देश में प्रयोग किया जा सकता है और जो पूरे भारत में समझी जाती है। एडवर्ड टेरी पूरा भारत घूमे थे और अपने गहन अध्ययन के बाद उन्होंने ब्रिटिश सरकार को अपनी रिपोर्ट में बताया कि हिंदी ही ऐसी भाषा है, जिसे पूरे भारत के लोग समझ पाते हैं और जो सही मायने में पूरे देश की संपर्क भाषा हो सकती है। एडवर्ड टेरी की इस रिपोर्ट के बाद ब्रिटिश सरकार ईस्ट इंडिया कंपनी में जो भी अधिकारी भारत भेजती थी, उन्हें हिंदी सिखाकर भेजा जाता था। यह सत्रहवीं शताब्दी की बात है।

यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश सरकार ने आई.सी.एस. (इंडियन सिविल सर्विस) में हिंदी को अनिवार्य कर दिया था; परंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के ७५ वर्ष बाद भी भारतीय प्रशासनिक सेवा हेतु अंग्रेजी का वर्चस्व बरकरार है।

एक बार स्वाधीनता संग्राम के महानायकों की ओर भी देखना उचित होगा कि वे स्वाधीन भारत की राष्ट्रभाषा किसे बनाना चाहते थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, जिनकी अपनी मातृभाषा मराठी थी, हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। लाला लाजपत राय की मातृभाषा पंजाबी थी, बिपिन चंद्र पाल की बांग्ला थी, किंतु वे भी हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के समर्थक थे। 'लाल-बाल-पाल' से आगे बढ़ें तो महात्मा गांधी की मातृभाषा गुजराती थी, किंतु उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रयास किए। हिंदी के प्रचार-प्रसार को उन्होंने अपने स्वाधीनता संग्राम का ही एक अंग बनाया तथा दक्षिण भारतीय हिंदी प्रचार सभा जैसी संस्थाएँ खड़ी कीं। एक और महानायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस की मातृभाषा बांग्ला थी, किंतु वे भी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न देखते थे। आजाद हिंद फौज तथा आजाद हिंद सरकार की आधिकारिक भाषा हिंदी ही थी। राजा महेंद्र प्रताप ने काबुल में अस्थायी भारत सरकार बनाई तो उसकी आधिकारिक भाषा हिंदी ही थी। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सुब्रमण्यम भारती की मातृभाषा तमिल थी, किंतु वे राष्ट्रभाषा हिंदी के समर्थक थे। शहीद भगत सिंह हों, जिनकी मातृभाषा

पंजाबी थी या जवाहर लाल नेहरू, जिनकी मातृभाषा कश्मीरी थी या महर्षि दयानंद या लाला हरदयाल या अन्य महान् स्वाधीनता सेनानी, सब एकमत से हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे।

यह कितना विडंबनापूर्ण है कि स्वाधीनता के पश्चात् क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों के कारण हिंदी का विरोध अस्तित्व में आया तथा स्वाधीनता संग्राम के महानायकों की अभिलाषा तथा हिंदी की व्यापकता एवं सर्वग्राह्यता को भुला दिया गया। इसी का एक उदाहरण पिछले दिनों देखने को मिला। राजभाषा विभाग की एक बैठक में देश के गृहमंत्री अमित शाह ने स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के वर्ष में यदि यह आह्वान किया कि भारत के राज्यों को अंग्रेजी पर निर्भरता कम करनी चाहिए तथा हिंदी को विकल्प के रूप में अपनाने पर जोर देना चाहिए तो इसमें क्या अनुचित है! स्वाधीनता के ७५ वर्ष बाद भी यदि अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है और हिंदी अपना सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकी है तो यह दुखद भी है और लज्जाजनक भी। यह भी स्पष्ट है कि दुनिया के जितने भी विकसित एवं समृद्ध देश हैं, उन्होंने अपनी भाषा में ही सफलता एवं उपलब्धियों के कीर्तिमान गढ़े हैं। इजराइल जैसे छोटे से देश का उदाहरण हमारे सामने है। गृहमंत्री के आह्वान के बाद दक्षिण भारत के एक-दो प्रांतों के नेताओं ने जिस प्रकार आपत्ति जताई तथा नकारात्मक प्रतिक्रिया दी, वह निश्चित ही दुर्भाग्यपूर्ण है। भारतीय भाषाओं के समर्थन तथा विकास से जुड़ा कोई प्रश्न हो तो बात समझ में आती है, किंतु अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व की पैरोकारी का औचित्य समझ से परे है। लोगों की भावनाएँ भड़काकर अपनी राजनीति चमकाने के लिए 'हिंदी विरोध' कितना आसान उपाय बन जाता है; यह निंदनीय है।

यह याद करना भी प्रासंगिक होगा कि कुछ वर्ष पहले गृह मंत्रालय ने एक प्रपत्र जारी करके प्रांतीय सरकारों को हिंदी के प्रयोग के संबंध में सलाह दी थी तो चीखने-चिल्लाने वाले एक टी.वी. एंकर ने तूफान खड़ा कर दिया था और तब भी दक्षिण भारत के एक-दो प्रांतों ने इसी तरह विरोध किया था। प्रपत्र में कोई आदेश नहीं था, मात्र सलाह थी, किंतु गृह मंत्रालय ने वह प्रपत्र वापस ले लिया था, ताकि अनावश्यक विवाद से बचा जा सके। दक्षिण भारत में हिंदी विरोध को हथियार बनानेवालों को अपने दुराग्रह छोड़कर यह विचार करना चाहिए कि औद्योगीकरण के पश्चात् जिस तरह की मिली-जुली संस्कृति का प्रसार हुआ है और इंटरनेट क्रांति के बाद हिंदी की स्वीकार्यता और भी बढ़ी है, हिंदी विरोध बेमानी तथा निरर्थक है। दक्षिण भारत की फिल्मों ने जिस प्रकार अपनी सफलता के कीर्तिमान गढ़े हैं, वही एक उदाहरण बनना चाहिए कि भाषाई मेलजोल कितना सुखद तथा लाभकारी है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक १९७१ के बाद हिंदी समझने तथा प्रयोग करनेवालों की संख्या में १६१ प्रतिशत की अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज दुनिया भर के देशों में फैले प्रवासी भारतीयों तथा भारतवंशियों ने हिंदी प्रसार को नई ऊचाइयाँ दी हैं। यहाँ हिंदी के रचनाकारों, विद्वानों, हिंदी-सेवियों तथा हिंदीभाषी प्रांतों की सरकारों पर यह जिम्मेदारी आती है कि वे न केवल हिंदी को सशक्त तथा समृद्ध करें, अनुवाद एवं भाषाओं के आपसी मेलजोल को बढ़ावा दें, वरन् हिंदी में रोजगार एवं सुखद भविष्य निर्माण के अवसर उत्पन्न करें, ताकि राजनीतिक स्वार्थ के लिए हिंदी विरोध के अनावश्यक स्वर स्वयं ही अप्रासंगिक हो जाएँ।

बच्चों से शुरुआत हो···

लगभग १० वर्ष पहले की बात है। विश्व पुस्तक मेले में नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से एक संस्था के साथ मिलकर आयोजन किया गया था, जिसमें दिल्ली के ६-७ विद्यालयों के बच्चों को भाग लेना था। ट्रैफिक जाम के कारण एक विद्यालय की स्कूल बस नहीं आ पाई थी। शेष विद्यालयों के बच्चे बहुत पहले आ गए थे तथा कुछ परेशान हो रहे थे। तय किया गया कि औपचारिक कार्यक्रम शुरू होने से पहले बच्चों का मन लगाने के लिए उनसे कुछ बातचीत की जाए। बच्चों से पूछा गया कि कितने बच्चों के घर में कोई बाल पत्रिका आती है? लगभग दो सौ बच्चों में से बमुश्किल ८-१० हाथ ही उठे। जब उनसे कोर्स के अलावा बाल-साहित्य की किताब पढ़ने का सवाल किया गया, तब भी ऐसी ही निराशा हाथ लगी। उस आयोजन का विषय था, 'मेरी पसंद की किताब'। और जब औपचारिक आयोजन हुआ, बच्चों ने एक से बढ़कर एक प्रस्तुतियाँ दीं तथा कितनी ही पुस्तकों का नाम लेकर उनकी महत्ता बताई गई। स्वाभाविक था कि बच्चों को माता-पिता या शिक्षकों को जो कुछ लिखकर दिया, बच्चों ने प्रस्तुत कर दिया। जब प्रस्तुतियों में से चुनकर बच्चों को पुरस्कार दिए गए तो मुख्य अतिथि ने कहा कि बच्चो, आपने जिन पुस्तकों के विषय में इतना अच्छा बोला है, उन्हें पढ़ भी लीजिएगा।

निश्चय ही इतने वर्षों बाद स्थिति में कोई बदलाव आ गया होगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। मोबाइल के आने के बाद से स्थितियाँ बिगड़ी ही हैं। सबसे बड़ा संकट तो यही है कि कोई ऐसी बाल पत्रिका नहीं है, जो घर-घर पहुँचे। बाल-पत्रिकाओं से ही बच्चों के मन में साहित्य के प्रति अनुराग पनपता था, जिज्ञासाओं का समाधान होता था तथा अच्छे संस्कार बनते थे। अब चैनलों से, सोशल मीडिया से जिस प्रकार अपसंस्कृति और फूहड़ता और अश्लीलता की बारिश हो रही है, उसके दुष्प्रभाव बाल एवं किशोर अपराधों में भयावह वृद्धि के रूप में महसूस किए जा सकते हैं। हिंदी के प्रकाशकों, रचनाकारों, सामाजिक संस्थाओं को इस गंभीर प्रश्न पर अवश्य विचार करना चाहिए कि बच्चों को साहित्य की ओर कैसे मोड़ा जाए।

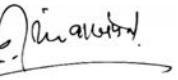

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

फत्तू भूखा है

● देवेंद्र सत्यार्थी

विलक्षण लोकयात्री देवेंद्र सत्यार्थी हिंदी साहित्य के बड़े अद्‌भुत कथाशिल्पी और किस्सागो थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस विशाल देश की धरती से उपजे लोकगीतों की खोज में लगाया, और इसके लिए देश का चप्पा-चप्पा छान मारा। यहाँ तक कि जेब में चार पैसे भी न होते थे, पर इस फक्कड़ फकीर की उत्साह भरी यात्राएँ अनवरत जारी रहतीं। धरती उनका बिछौना था और आकाश छत, जिसके नीचे उन्हें आश्रय मिल जाता। इस तरह राह में मिलने वाली ढेरों अकथनीय तकलीफें झेलकर भी धुन के पक्के सत्यार्थीजी के पाँव रुके नहीं। उन्होंने घोर तंगहाली में दूर-दूर की यात्राएँ करके, देश के हर जनपद के लोकगीत एकत्र किए और उन पर सुंदर भावनात्मक लेख लिखे तो देश भर में फैले हजारों पाठकों के साथ-साथ महात्मा गांधी, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर और महापंडित राहुल सांकृत्यायन तक उनके लेखन के मुरीद बने।

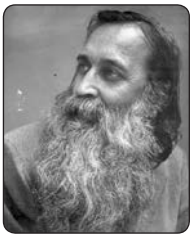

विलक्षण लोकयात्री देवेंद्र सत्यार्थी हिंदी साहित्य के बड़े अद्‌भुत कथाशिल्पी और किस्सागो थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस विशाल देश की धरती से उपजे लोकगीतों की खोज में लगाया, और इसके लिए देश का चप्पा-चप्पा छान मारा। यहाँ तक कि जेब में चार पैसे भी न होते थे, पर इस फक्कड़ फकीर की उत्साह भरी यात्राएँ अनवरत जारी रहतीं। धरती उनका बिछौना था और आकाश छत, जिसके नीचे उन्हें आश्रय मिल जाता। घोर तंगहाली में दूर-दूर की यात्राएँ करके उन्होंने देश के हर जनपद के लोकगीत एकत्र किए और उन पर सुंदर भावनात्मक लेख लिखे तो देश भर में फैले हजारों पाठकों के साथ-साथ महात्मा गांधी, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर और महापंडित राहुल सांकृत्यायन तक उनके लेखन के मुरीद बने।

इन्हीं लोकयात्राओं में हासिल हुए अनुभवों की अकूत संपदा ने सत्यार्थीजी को कहानीकार भी बनाया। 'फत्तू भूखा है' सत्यार्थीजी की अद्‌भुत कहानी है। एक तरह की आत्मकथात्मक कहानी। फत्तू उनके घर भैंसों को चराने वाला युवक है। एक अनाथ लड़के की तरह वह इस घर में आया और फिर हमेशा के लिए यहीं का होकर रह गया। भैंसों की वह इतने मन और लगन से सेवा-टहल करता है कि उनका दूध दूना हो गया। पर बदले में पैसे या तनख्वाह लेना उसे मंजूर नहीं। आखिर वह इस घर का ही तो प्राणी है। पर एक दिन जब उसकी प्यारी भैंस रेशमा बिकने लगी, तो उसने घर में भूख हड़ताल कर दी। उसे सबने मनाने की कोशिश की, पर वह नहीं माना। तब उसे वचन दिया गया कि रेशमा नहीं बिकेगी। पर आखिर जो कुछ हुआ, उसने फत्तू को भीतर-बाहर से तोड़ दिया। और सिर्फ फत्तू ही नहीं, कहानी का पाठक भी अंत तक आते-आते एकदम स्तब्ध सा रह जाता है।

भूख मर रही है। अब यह बढ़ तो नहीं सकती। पहले तो साँपिन की तरह बल खाते हुए बढ़ती चली आ रही थी। चूल्हे में आग नजर नहीं आती। आज आग नहीं जलेगी। दोपहर तो कभी की ढल गई। पिताजी भूखे हैं, चाचा भूखा है, चाची भूखी है, माँ भी, मैं भी, छोटा भाई भी। और फत्तू भी तो भूखा है।

फत्तू ने कल भी कुछ नहीं खाया था। इधर सारे घर में बताया तो यही गया कि किसी ने कुछ नहीं खाया। पर एक माँ को छोड़कर सबने कुछ-न-कुछ डाल ही लिया था मुँह में चोरी-छिपे। गुस्से से जला-भुना फत्तू भैंसों के समीप खाट डालकर सो गया था। अनेक वर्षों से वह इसी जगह सोता आया है।

फत्तू मुसलमान है। जी हाँ। हम हिंदू हैं। होंगे! पर फत्तू एक मुद्‌दत से हमारी भैंसों की सेवा करता आया है। कम दूध देने वाली भैंसें अधिक दूध देने लगीं। नाच नचाने वाली अड़ियल भैंसें सीधी हो गईं। वह वेतन भी तो नहीं लेता। वह तो घर का आदमी है। जी हाँ, घर का आदमी। सब अपना-अपना काम करते हैं। वह भैंसों को सँभालता है। भैंसें उसे चाहती हैं। जरा किसी भैंस के शरीर पर हाथ फेर दिया, बस वह उस पर खुश हो गई। भैंस तो भैंस, अभी परसों तक तो यह हाल था कि वह किसी भैंस के शरीर पर अपना हाथ फेरता और मुझे यों लगता कि वह मेरे शरीर पर हाथ फेर रहा है।···हाँ तो आज फत्तू भूखा है।

भैंसें भी उदास नजर आती हैं···उन्होंने कैसे जान लिया कि फत्तू भूखा है? गोमा का मुँह उतर गया है। बंतो मुँह बाँधे बैठी है। रेशमा की आँखों में आँसू आना चाहते हैं। बेजुबान भैंसों ने कैसे जान लिया कि फत्तू भूखा है?

कल फत्तू भूखा नहीं रहा होगा। किसी भैंस का दूध पीकर पड़ रहा होगा। नहीं, नहीं, वह ऐसा आदमी नहीं। जरूर वह कल भी भूखा रहा होगा। और वह आज तो भूखा है ही।

माँ कह रही है—रोटी खा ले, फत्तू!···पेट के साथ क्या दुश्मनी है? कल से चूल्हा ठंडा पड़ा है। अभी चूल्हे में आग जलाऊँगी। बस तू जरा हाँ कर दे, फत्तू!

मैं फत्तू के समीप खड़ा हूँ। इधर मेरी उदासी बढ़ रही है। फत्तू भूखा

है। उसकी आँखें मंदिर के दीयों के समान टिमटिमा रही हैं। मुँह से वह कुछ नहीं बोलता।

"तुम भी एक ही गुस्सैल हो, फत्तू!" मैं कहना चाहता हूँ, "तुम्हारे कपड़ों से तो गोबर की बू आती है। फिर मैं तुम्हारे पास दौड़ आता हूँ। तुम्हारा यह गुस्सा मुझे सिरे से नापसंद है। पेट के साथ क्या दुश्मनी! माँ सच कहती है।"

अभी कल तक मेरे हँसने-खेलने के दिन थे। अब मैं समझदार हो रहा हूँ। केवल हँसता-खेलता रहता तो आठवीं की परीक्षा में सारे स्कूल में प्रथम कैसे रहता? सब लड़कों के सामने हेडमास्टर साहब ने मुझे शाबाशी दी थी। कुछ दिन और हूँ इधर। हाईस्कूल में भरती होने के लिए बाहर जाना होगा। फिर न वहाँ फत्तू होगा, न गोमा, न बंतो, न रेशमा। हाँ तो फत्तू आज भूखा है।

पहले-पहल फत्तू इस घर में आया था तो वह मुझसे एक ही वर्ष बड़ा था—एक अनाथ लड़का। खुले शब्दों में वह वेतन माँग सकता था। उसने तो घर का आदमी बनना ही पसंद किया। लोगों ने उसे सौ-सौ पट्टियाँ पढ़ाईं। उस पर कुछ प्रभाव न हुआ। माँ ने भी बहुत कहा, "फत्तू, तनख्वाह ले ले!" पर वह हमेशा इसे मजाक समझता रहा। बेटा माँ से तनख्वाह ले, यह तो न होगा। बस यही उसका गढ़ा-गढ़ाया जवाब था।

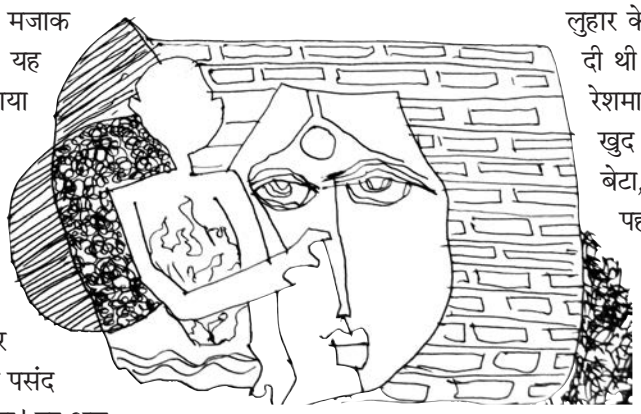

□

चूल्हे में आग नहीं जली। सारे घर में अफरा-तफरी फैल रही है। फत्तू चुप है। जी चाहता है कि उसकी खाट के गिर्द कोई अजीब सा नाच नाचूँ और उस गीत के बोल गुनगुनाऊँ जो मुझे बहुत पसंद है—फत्तू की पगड़ी में कोयल का घोंसला! पर अब तो हवा भी थम गई। मुझे भी शांत होकर बैठ जाना चाहिए। टकटकी बाँधे मैं फत्तू की ओर देख रहा हूँ। कितना सुकड़ू सा आदमी है। पर वह दूध में बसता है। रेशमा और गोमा को दुहते समय, शुरू में या आखिर में, उनके थनों को मुँह लगाकर जितना चाहे दूध पी सकता है। कोई निगरानी तो नहीं करता। पर नहीं, नहीं, वह इस तरह दूध नहीं पीता। घर का आदमी जो ठहरा। पूरा दूध दुहकर लाता है। मेरी निगाह में तो वह एक मूर्ख है। उसे तो खूब दूध पीना चाहिए। लाख कोई झख मारा करे, चोरी का नाम दिया करे। मैं तो इसे चोरी न कहूँगा। अपने दूध की चोरी भी क्या! जी हाँ, फत्तू तो घर का आदमी है।

चाची ने आज भी चोरी-छिपे पँजीरी खा ली होगी। ऊपर से वह फत्तू की मिन्नत किए जा रही है—देख, फत्तू बेटा! रेशमा कितनी उदास हो रही है। ठीक ही तो है। रेशमा को फत्तू से पूरी हमदर्दी है—चाची से कहीं ज्यादा।

रेशमा की बड़ी-बड़ी आँखों में झाँककर मैं पूछता हूँ—क्या तुम जानती हो रेशमा, कि चाचाजी फत्तू की सलाह लिए बिना ही तुम्हें बेच डालेंगे? और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जैसे आँसुओं से गीली हो गईं। जैसे वह कहना चाहती हों—फत्तू के बिना मैं कैसे जिंदा रहूँगी? और मेरे कारण वह इस घर को तो छोड़ने से रहा।

गोमा अलग उदास बैठी है। जैसे कहना चाहती हो—फत्तू यहाँ से चला गया तो मैं कैसे जिंदा रहूँगी? जब वह मुझे नजर नहीं आता तो मुझे बिनौले भी अच्छे नहीं लगते।

बंतो ने अपनी थूथनी गोबर और पेशाब से लथपथ जमीन पर रख छोड़ी है। जैसे वह अब इसी तरह बैठी रहेगी। उसके शरीर पर कभी फत्तू ने मालिश नहीं की। वह जानती है कि उसे सबसे अधिक प्रेम रेशमा से है। उसी को वह सबसे अधिक बिनौले खिलाया करता है। पर वह ईर्ष्या में फँसकर फत्तू से घृणा नहीं करती।

वचनी ने घास को मुँह तक नहीं लगाया। पहले फत्तू खाएगा। जी हाँ, पहले तो फत्तू को ही खाना चाहिए। और जब तक फत्तू अपनी जुबान से हुक्म नहीं देता, वचनी अपने पेट की बात कभी नहीं सुनेगी।

चाची कह रही है, "इन गरीब भैंसों का ही कुछ खयाल करो, फत्तू! क्या खाओगे? बोलो तो। जो खाओ, वही पका दूँ। तुझे तेरे अल्लाह का वास्ता! अब गुस्से को थूक दो। तेरे चाचा ने तो वैसे ही भूलकर सुंदर लुहार के पास रेशमा को बेच देने की बात कह दी थी। मैं देखूँगी कि किस तरह तुम्हारे चाचा रेशमा को बेच डालते हैं। उन्हें आने तो दो। मैं खुद उनका हाथ पकड़ लूँगी। वही होगा फत्तू बेटा, जो तुम चाहोगे। बस अब जिद न करो। पहले कुछ खा लो।"

रेशमा ने अपनी थूथनी फत्तू की खाट पर रख दी और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी ओर देख रही है। जैसे कह रही हो—हाँ, हाँ, फत्तू पहले कुछ खा लो। चाची की बात रख लो, कब तक भूखे रहोगे? अपनी भूख की तो मुझे कुछ चिंता नहीं। तुम जरूर मेरे दूध की खीर बनवा लो अपने लिए।

मैं सोच रहा हूँ कि चाची से कैसे सवाल-जवाब करूँ। तेरे अल्लाह का वास्ता! तो क्या फत्तू का अल्लाह और चाची के भगवान् अलग-अलग हैं! दो तो न होंगे। फत्तू को मैं जानता हूँ। वह कोई नमाजी तो नहीं है। पर उसका अल्लाह उस पर खुश जरूर है। जब अल्लाह ने रेशमा और गोमा का दूध बढ़ा दिया था, तो जैसे अल्लाह ने अपनी खामोश जुबान में कहा था कि वह फत्तू से बहुत खुश है। पिछले साल जब एक नई ब्याई भैंस मर गई थी, तो अल्लाह ने फत्तू को किसी गुनाह की सजा दी थी। पर यह कोई न समझे कि अल्लाह यह सजा देकर खुश हुआ होगा। बड़ी मजबूरी में वह अपने बंदों को सजा देता है। अल्लाह भला अपना काम कैसे छोड़ दे? चाची का भगवान् भी उसे कभी-कभी सजा देता रहता है। वह कोई भक्तिन नहीं है। चरखा कातने को वह मंदिर जाने से अच्छा काम समझती है।... भगवान् का मंदिर तो आदमी का दिल है।...तेरे अल्लाह का वास्ता!... इसकी जगह यह क्यों नहीं कहा—मेरे भगवान् का वास्ता!

कल जगदीश दुकान पर चाचा से कह रहा था, "न कोई अल्लाह

है, न भगवान्। यह सब वहम है। यदि कोई ऐसी शक्ति होती तो पहले अमीरी और गरीबी की सीमाएँ नजर नहीं आतीं। बल्कि अगर कोई ईश्वर होगा, तो कोई बड़ा महाजन होगा, क्योंकि आजकल महाजनों की चाँदी है। ईश्वर भी पूँजीपतियों की ड्योढ़ी के आगे पहरा देता है।"

जगदीश न जाने क्यों ऐसी बातें किया करता है? जी हाँ, वह अब ग्रैजुएट है। तभी वह ईश्वर को नहीं मानता। क्या सब ग्रैजुएट ऐसे ही होते हैं? क्या ग्रैजुएट होने पर मैं भी ईश्वर के अस्तित्व को नकार दूँगा? अभी तो मेरा ईमान खड़ा है। कल शाम को मैं जगदीश के साथ सैर करने गया था। जब मैंने उसे बताया कि मैंने चाची को चोरी-छिपे पँजीरी खाते देखा है, तो वह गला फाड़कर हँसने लगा। बोला, "मैं भगवान् होता तो चाची को इस हिमाकत के बदले चार घूँसों से तो क्या कम सजा देता!"

खैर, अब चाची की जुबानी यह तो पता चला कि फत्तू नाराज क्यों है? वह रेशमा को चाहता है। किसी भी मुनाफे पर वह उसे बिकने नहीं देगा।

रेशमा और गोमा, बंतो और बचनी—चारों भैंसें एक-दूसरे की ओर देख रही हैं। शायद वे मिलकर फैसला करना चाहती हैं कि फत्तू को खाना खा लेना चाहिए।

मुझे विश्वास नहीं होता कि कोई ग्रैजुएट भी भैंसों से इतना प्यार कर सकता है। न मुझे यही विश्वास होता है कि अल्लाह या भगवान् के अस्तित्व को नकारने वाला आदमी इतनी सरलता और सच्चाई से अपने पालतू पशुओं की सेवा कर सकता है। आदमी अपने त्योहार मनाए और अपनी भैंसों को अपनी खुशी में न शामिल करे, तो यह तो बड़ी मूर्खता होगी। हर साल फत्तू ईद के अवसर पर सवेरे-सवेरे अपनी भैंसों को नहलाता है और फिर एक-एक के कान में कहता जाता है—कल ईद है! और रात को नहर के किनारे वह अपने साथ उन्हें भी ईद का चाँद दिखाकर खुशी से झूम-झूम उठता है। और फिर कार्तिक की पूर्णमासी पर वह उन्हें मेला दिखाने ले जाता है। कहता है—इन्हें भी तो मालूम होना चाहिए कि आज बाबा नानक का जन्मदिन है।

दीवाली की रात आती है तो वह खुरलियों के पास दीये जलाकर रखता जाता है। उसका विश्वास है कि इस खुशी में भैंसों का दूध बढ़ जाता है। पर जगदीश तो नास्तिक है और उसने चाचा को भी नास्तिक बना दिया है। मुझे डर है कि जगदीश कहीं फत्तू को भी अपनी तरह ईश्वर से विमुख न कर दे।

□

फत्तू अपनी चारपाई पर पड़ा है। कभी-कभी फत्तू अपने होंठ चूस लेता है और सोचता है—रेशमा, मेरी रेशमा अगर सुंदर के हाथ बिक जाए, तो कौन उसे नई कपास के बिनौले देगा? सूखा न्यार भूसा खाते हुए वह कहती—किधर गया वह मेरा फत्तू? उसके सींग तेल की मालिश के बिना सूख जाते। उसकी नरम और मुलायम पीठ सेही की पीठ की तरह खुरदरी हो जाती। उस समय वह मुँह उठाकर 'बाँय-बाँय' करती हुई कुछ तलाश करती हुई सी निगाहों से बाड़े के पार देखती···और फत्तू इससे आगे नहीं सोच पाता। अपने सिर को एक झटका देकर वह उठ बैठा।

रेशमा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से फत्तू की ओर देखते हुए एक बार फिर अपनी थूथनी खाट की पट्टी पर रख देती है। जैसे कहना चाहती हो—तुम खाना खा लो फत्तू! चाचा जरूर चाची की बात रख लेंगे और मुझे बेचेंगे नहीं। और अगर उन्होंने मुझे बेच भी दिया तो मैं रस्सा तुड़ाकर भाग आऊँगी। मैं किसी भी तरह अपने नए मालिक के घर में बँधकर न रहूँगी। तुम तो जानते ही हो फत्तू कि तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुम दूध दुहने बैठते हो तो मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे घंटों दुहते रहो। मुझे उस समय एक गुदगुदी सी होती है और यह केवल तुम्हारे ही हाथों से दुहे जाने पर।

भूखी आँखों से फत्तू रेशमा की तरफ देखता है। जैसे कह रहा हो—बस चलते तो तुम्हें बिकने नहीं दूँगा, रेशमा! मुझे मालूम है, तुम हमेशा मेरे हाथों से दुहा जाना पसंद करती हो। बल्कि तुम तो इस बात के लिए तरस जाती हो कि मैं कभी तुम्हारे थन को मुँह में लेकर दूध पिऊँ।

चाचा अभी-अभी बाहर से आए हैं। यह देखकर कि फत्तू की नाराजगी के कारण चूल्हा ठंडा पड़ा है, उनका मन सुलगने लगा है। असल में वे फत्तू से तंग आ चुके हैं। वे फत्तू का इस घर में रहना बिल्कुल भी पसंद नहीं करते। क्योंकि वे जानते हैं कि फत्तू अपने होते दूध दुहने का काम उन्हें कभी नहीं सौंपेगा। और वे रोज भैंस के थनों को मुँह में लेकर दूध पीने की इच्छा दिल में लेकर ही इस संसार से विदा हो जाएँगे। अगर वे भी चाची की तरह अल्लाह या ईश्वर का वास्ता देकर फत्तू से कह दें कि रेशमा कभी नहीं बिकेगी, तो सारा मामला ठीक हो सकता है। मुझे तो यही शक है कि वे अल्लाह या ईश्वर को मानते भी हैं या नहीं।

जगदीश उनके पास बहुत आता-जाता है। उन पर जरूर उसकी बातों का असर हुआ होगा। इसलिए अगर पक्के नास्तिक नहीं, तो कच्चे नास्तिक तो जरूर बन चुके होंगे।···डरिए ईश्वर से! चाचाजी···ईश्वर से विमुख!

"अच्छा सत्याग्रही है!" पिताजी कह रहे हैं, "अब छोड़ो यह भूख हड़ताल, फत्तू बेटा! तुम्हारी यह हड़ताल कब तक चलेगी? तुम्हारी बात मान तो ली गई है। रेशमा बिकेगी नहीं। वह तुम्हारी है और तुम्हारी ही रहेगी। हम डिगेंगे नहीं।"

अगर रेशमा सचमुच बिकेगी नहीं तो खुद चाचा क्यों नहीं कह देते? न भगवान् की कसम खाएँ, न अल्लाह की। केवल कह दें कि रेशमा बिकेगी नहीं। पर आश्चर्य तो इस बात का है कि जब से जगदीश चाचा के पास आने लगा है, चाचा फत्तू की ओर और भी उपेक्षा से देखने लगे हैं।

चाची परे बैठी कमीज सी रही है। जरूर यह चाचा के लिए सी रही होगी। पर मैं सोचता हूँ कि चाचा को यह कमीज हरगिज नहीं मिलनी चाहिए। फत्तू का चाचा को जरा भी तो खयाल नहीं। जी हाँ, अब तो फत्तू को बहुत सख्त भूख लग रही होगी, भूख से उसकी जान निकल रही होगी। पर वह भी एक ही हठीला है। अड़ गया तो अड़ गया हमेशा के लिए। बस अब खुदा भी आकर कहे कि भूख हड़ताल बंद कर दो तो वह एक नहीं सुनने का।

फत्तू की जबान पर बराबर टाँका लगा है। अंदर से निकलकर चाचा उसकी खाट के समीप खड़ा हो गया? दोनों खामोश हैं। ऐसी भी क्या खामोशी है? शायद चाचा झुकने को तैयार हैं। लेकिन बात मुँह पर नहीं आती। कितने जिद्दी हैं चाचा भी। आखिर इसमें जिद की क्या बात है?

रेशमा को बेचना इतना जरूरी कहाँ से हो गया? फत्तू भी आखिर इनसान है। अगर वह सचमुच रेशमा को बिकने नहीं देना चाहता तो स्वार्थ में ही चाचा को ही जिद करने की क्या जरूरत है?

फत्तू के दिल में तो सारे घर का दर्द भरा है, सब भैंसों का दर्द भरा है। वह कितना भला आदमी है—बिल्कुल घर का आदमी। आज वह कैसे इतना पराया हो गया कि चाचाजी उसके आगे झुकने में अपनी हेठी समझने लगे। फत्तू अनाथ सही, पर उसने अपना सारा जल इसी नदी में मिला दिया है। और यदि यह सत्य है तो उसका सत्याग्रह ठीक है, भूख हड़ताल भी ठीक है।

क्या रक्त का संबंध बड़ा संबंध है? फत्तू मेरा भाई है। उसका अल्लाह मेरा भी अल्लाह है। उसके साथ मैं भी मुसलमान हूँ। अरे, अरे! यह मैं क्या कह गया? पर ऐसी भी क्या बात है। फत्तू मेरा भाई है। जी हाँ, फत्तू हमेशा मेरा भाई रहेगा। उसकी आँखों में आँखें डालकर मैं हमेशा दिल की बातें भाँप सकता हूँ। और उसके गले में बाँहें डालकर मैं हमेशा कह सकता हूँ—तुम कभी इतने नाराज तो नहीं हो जाओगे फत्तू कि मुझे अकेला छोड़कर चले जाओ?

पिताजी कह रहे हैं, "अब जिद छोड़ दो, फत्तू बेटा! तुम देखोगे कि रेशमा तुम्हारे पास ही रहेगी।"

□

चाचा अब भी खामोश हैं। न जाने चाचा क्यों खामोश हैं? चाचा चाहें तो एक ही शब्द से फत्तू को खुश कर सकते हैं। लेकिन यह तो तभी हो सकता है कि चाचा जिद छोड़कर सीधे मुँह बात करें। फत्तू में ऐसी क्या बुराई है कि चाचा व्यर्थ ही उसे नाराज करने पर तुल गए हैं। आखिर चाचा अपना इरादा जाहिर क्यों नहीं कर देते? क्या रेशमा को बेचने की जिद बहुत जरूरी है? रेशमा तो बहुत अच्छी भैंस है। उससे तो मुझे भी प्यार है। अब मैं कैसे कहूँ कि चाचाजी, फत्तू के लिए नहीं तो मेरे लिए ही रेशमा को रख लो।

जिस दिन परीक्षा का परिणाम निकला था, मैंने फत्तू को पच्चीस अमरूद दिए थे। वह कितना खुश नजर आता था। उसका मुँह जैसे सूरजमुखी का फूल था। अगर मेरे पास कैमरा होता तो मैं उसका फोटो ले लेता। उस दिन उसने मेरे पास हो जाने की खुशी में एक नया गीत बना डाला था। जब वह गा रहा था, तो मुझे ऐसा लगा कि परीक्षा में तो फत्तू पास हुआ है और मैं केवल एक चरवाहा हूँ। फत्तू की पगड़ी में कोयल का घोंसला—मैं गा रहा था। उसने मुझे कान से पकड़ लिया। उसकी उँगलियों ने चिमटी का रूप धारण कर लिया था। मेरी चीख निकल गई। फिर कहीं उसने मुझे छोड़ा और धमकी दी, "अब मत कहना कोयल का घोंसला फत्तू की पगड़ी में! आठवीं पास कर ली, पर पुरानी शरारतें नहीं गईं।"

मैं इसके आगे-आगे दौड़ा जा रहा था और कहता जा रहा था, "यह तो मेरा गीत है फत्तू, केवल गीत। चिढ़ता क्यों है? कोयल का घोंसला कभी देखा भी है? बात को समझा भी कर!"

उस समय मैंने सोचा कि अपने गीत का बोल बदलकर गाऊँ—रेशमा के सींगों पर कोयल का घोंसला! पर यह स्पष्ट था कि वह इसे पसंद नहीं करेगा। किसी तरह मुझे यह महसूस हो रहा था कि फत्तू मेरा हमउम्र है और किसी जादू के असर से उसकी उम्र पच्चीस की जगह चौदह साल रह गई है। अगर यही बात उसे अमरूद खिलाने से पहले मालूम हो जाती, तो मैं उसे पच्चीस अमरूदों की जगह चौदह अमरूद ही देता।

माँ कह रही है—तेरा चाचा तुझे नाराज नहीं करेगा फत्तू बेटा! मुँह से न बोल, इशारे से कह दे। बोल, आग जलाऊँ चूल्हे में?

चाचा कह उठते हैं, "हाँ, हाँ, जलाओ आग। अरे, फत्तू तो बहुत समझदार लड़का है।"

मैं खुशी से उछलकर परे को सरक जाता हूँ। जी में आता है कि फत्तू के गले में बाँहें डालकर कहूँ—देखो, अब यह तुम्हारी भूख हड़ताल नहीं चल सकती, फत्तू भाई!

चाची ने कमीज पूरी कर ली। उसे मशीन पर ही छोड़कर अब वह चूल्हे के समीप जा बैठी और आग सुलगा रही है। आज भी आग न जलती तो वह जरूर चोरी-छिपे चाचा को पँजीरी खिला देती और खुद भी खा लेती।

मैं चाचाजी की नई कमीज उठा लाया हूँ। मैं कहता हूँ, "फत्तू के लिए भी आज एक नई कमीज होनी चाहिए।"

चाचा और पिताजी एक स्वर होकर कहते हैं, "एक क्यों, पाँच!"

फत्तू उठ बैठा है। सारा घर खुश नजर आता है। अब तो मालूम होता है कि जैसे फत्तू का अपने अल्लाह पर ईमान है, वैसे ही चाचा का अपने भगवान् पर विश्वास है। है भी ठीक। जगदीश का असर इतनी जल्दी कैसे हो सकता था?

चाचा फत्तू से गले मिल रहे हैं। पिताजी परे खड़े यह तमाशा देख रहे हैं। वे अब कुछ नहीं बोलेंगे। फत्तू कहता है, "रेशमा का क्या फैसला हुआ, यह तो कहो, चाचा?"

चाचा पहले खामोश रहते हैं। फिर बड़े विश्वास से कहते हैं, "मैं रेशमा को कहीं बाहर न ले जाऊँगा। यह तुम विश्वास रखो।"

□

चूल्हे पर खीर पक रही है। छोटा भाई बाहर से आकर कहता है, "माँ, पहले मुझे देना खीर।"

"नहीं, माँ!" मैं कहता हूँ, "पहले मुझे देना खीर।"

पिताजी कह रहे हैं, "आँच और तेज कर दो।"

न जाने खीर कब तक तैयार होगी? मरी हुई भूख फिर चमक उठी है। भूख तो आदमी को बावला बना देती है। सब स्वार्थों की माँ है यह भूख। अगले ही रोज जगदीश दुकान पर चाचा से कह रहा था, "जिसने भूख की फिलॉस्फी को समझ लिया, उसने जीवन का भेद पा लिया। फिर न कोई अल्लाह रह जाता है, न भगवान्, न इनसान, न हैवान। मतलब यह है कि फिर अमीर-गरीब का फर्क न रहेगा। न कोई नौकर होगा, न मालिक। आदमी-आदमी सब बराबर होंगे। यह नहीं कि कुछ आदमी अपने को इनसान समझें और दूसरों को हैवान। सारे काम करेंगे और पेट भरकर खाएँगे।"

खीर तैयार हो गई। मैं कहता हूँ, "माँ, पहले मुझे देना खीर।"

छोटा भाई कहता है, "माँ, पहले मुझे देना खीर।"

माँ डाँट लगाकर छोटे भाई को चुप करा देती है। और मैं खुद ही शर्मिंदा हो जाता हूँ। माँ चमककर कहती है, "पहले फत्तू खाएगा, फत्तू भूखा है।"

थाली में खीर भरकर चाची फत्तू के सामने ला रखती है और कहती है, "यह लो रेशमा के दूध की खीर फत्तू बेटा! बासमती के चावल, रेशमा का दूध और गन्ने का रस। ऐसी खीर तुमने पहले कभी न खाई होगी।"

फत्तू खीर खा रहा है और सोचता है कि सचमुच ऐसी खीर उसने पहले कभी नहीं खाई थी। छोटा भाई अलग चमचे भर-भरकर खीर खा रहा है।

सबने आज खीर ही खाई है—रेशमा के दूध की खीर!

रात के साये बढ़ रहे हैं। रेशमा और गोमा, बंतो और बचनी—चारों भैंसें बड़ी-बड़ी आँखों से फत्तू की ओर देख रही हैं। जैसे कह रही हों—तुम्हारी जीत तो हमारी जीत है।

□

रात का अंधकार गहरा हो रहा है। रेशमा का ग्राहक भी आ पहुँचता है। पिताजी खामोश हैं। चाचा खामोश हैं। फत्तू भी खामोश है।

अमावस की रात के नन्हे टिमटिमाते दीये के समान फत्तू बड़े गर्व से सिर ऊँचा किए बैठा है। क्योंकि उसे भरोसा है कि चाचा अपना वायदा नहीं भूलेंगे और रेशमा को हरगिज नहीं बेचेंगे।

उधर चाचा रेशमा के ग्राहक की ओर सरक जाते हैं और उनकी कानाफूसी और भी पेचीदा हो रही है।

फत्तू सोचता है कि रेशमा कभी नहीं बिक सकती। आखिर चाचा अपने वायदे के पक्के आदमी जो ठहरे।

हवा के जबर्दस्त झोंके को दीये की लौ की क्या परवाह? जी हाँ, रेशमा का ग्राहक भी एक बार आकर खाली कैसे जा सकता है!

साअ

प्रस्तुति : अलका सोई
५-सी/४६, नई रोहतक रोड,
नई दिल्ली-११०००५
दूरभाष : ०९८७१३३६६१६

कविता

नदी जब सूख जाती है···

● **भावना सक्सेना**

सरक जाती हैं
बस्तियाँ उसके किनारों से
नदी जब सूख जाती है,
क्या देखा है कभी ठहरकर
सूखी नदी के अवशेष में
देखना गौर से
उसके तल में बची
अंतहीन रेत को
मिली होती है उसमें भस्म
जिंदा अरमानों की
जो दबाए चलती है
वह अपने भीतर।
रिसते दर्द की लकीरें
अंकित रह जाती हैं
उन घुमावदार रास्तों पर
जिनसे गुजरते हुए
वह आगे बढ़ तो जाती है
किंतु ढोती है उनके कण
अपने वक्षस्थल पर सदा के लिए।

किनारे छोड़
सरक तो जाती हैं बस्तियाँ
पर सोचा है क्या कभी
क्यों सूख जाती है नदी?
खेत, जमीन, जीवन और
संस्कृतियों को पोसती
अचानक रिक्त हो जाती है तल तक।
बदलते मौसम सोख लेते हैं
उसके भीतर की नमी और
भर देते हैं आँचल में आग
सह नहीं पातीं
सिंधु और तीस्ता भी
जब तड़पती हैं मछलियाँ और
सूखते हैं शैवाल
बचा नहीं पाते उसके आँसू
मूक क्रंदन सुना नहीं जाता
छा जाता है वीतराग।
नदियों पर होते हैं समझौते
वह कुछ कर नहीं पाती

बँट जाती है मौन
नदी कुछ कह नहीं पाती
उसने सीखा ही नहीं बोलना
वह जानती है सिर्फ बहना
बहते रहना···
लेकिन,
नदियाँ यों ही नहीं बहा करतीं
पर्वत की कठोरता को सहती
पिघलाती हैं उसका अंतर्मन
समेटती बटोरती हैं
जाने कितनी जड़ों के रस,
मीलों मील लिये चलती है
दाय स्रोत का
बाँटती हुई निश्छल
वह देती है सागर को सदा
संचित मिठास की बूँदें।
नदी सूख जाती है
कि शायद
सागर ने बस सीखा है लेना

नदी सूख जाती है कि
सह नहीं पाती
प्रजातियों का धीरे-धीरे
लुप्त हो जाना
सागर लौटा नहीं पाता
नदी की नमी
खोए साथियों का बिछड़ना
सह नहीं पाती नदी।
फिर भी सत्य यही
नदी सूखकर भी मरती नहीं
रहती है जिंदा
कहीं किसी के भीतर
हर मौसम, हर घड़ी।

साअ

६४, पहला तल,
इंद्रप्रस्थ कॉलोनी, सेक्टर-३०-३३,
फरीदाबाद-१२१००३ (हरि.)
दूरभाष : ९५६०७१९३५३

क्या युद्ध जरूरी है

● गिरिराज शरण अग्रवाल

सुपरिचित रचनाकार। गीत, गजल, कहानी, एकांकी, निबंध, हास्य-व्यंग्य, बाल साहित्य एवं समालोचना विधाओं में विपुल लेखन। ढेरों पुरस्कार एवं सम्मानों से सम्मानित।

क्या युद्ध जरूरी है
बहुत शोर है
अंदर भी और बाहर भी
बड़ा आतंक है
अंदर दिल में बैठा हुआ
और बाहर वातावरण को बहलाता हुआ
बहुत डर है
अंदर धमनियों में बहता हुआ
और बाहर हवा में समाया हुआ।

हम जिंदगी को
यों ही चलाते रहना चाहते हैं
कौन ऐसा चाहेगा
आदमी तो इस शोर, आतंक और डर से
अंदर और भीतर से मर जाएगा।

क्या कोई चाहता है कि युद्ध हो
कौन चाहता है
गोलियों की गूँज
और बारूद की गंध से
साँस रुक जाए
और हम आतंक के साए
और डर के खौफ के सामने
झुक जाएँ।

पर चाहने से क्या होता है
होता तो वही है
जो सत्ताओं की महत्त्वाकांक्षाओं को
पूरा करने की जद्दोजहद में होता है।

सत्ताएँ चाहती हैं
सीमा का विस्तार
दूसरे के साधनों पर अधिकार
और फिर धुआँधार
बम बरसाकर
कर देना चाहती हैं नेस्तनाबूद
उन घरों को
जहाँ बच्चे रहते हैं
उन अस्पतालों को
जहाँ मासूम इनसानियत को बचाया जाता है
या स्कूलों को
जिनमें मानवता का पाठ
पढ़ाया जाता है
उन कारखानों को
जिनमें जीवन की खुशियों को
बनाया जाता है।

हम लड़ रहे हैं
युद्ध कर रहे हैं
बारूद का विस्फोट कर रहे हैं
लेकिन अपने जुनून में
सोचा है कभी
कि उसके बाद क्या रह जाएगा
साँस रहित धरती
मलबा और राख के ढेर
और देर-सवेर
जब हमारी आत्मा जागेगी
तो हम त्याग देंगे सभी कुछ
'अशोक' की तरह।

फिर महत्त्वाकांक्षा क्यों
क्यों युद्ध की विभीषिका
क्यों गोलियों का नर्तन
क्यों सैनिकों की पलटन
और उनके बूटों की आवाज

सोचो और अपनी आत्मा में झाँको
या फिर जिंदगी के विष को पियो
जैसा पश्चात्ताप किया था
'पांडवों' ने स्वयं को बर्फ में गलाकर
हम सोचें और विचारें
बस भला कर, बस भला कर।

ए-४०२, पार्क व्यू सिटी-२
सोहना रोड, गुरुग्राम-१२२०१८ (हरियाणा)
दूरभाष : ७८३८०९०७३२

स्मृतियाँ

• अश्विनीकुमार दुबे

सुपरिचित व्यंग्य-लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह), 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

वे अपने आपको एक असफल इनसान मानते हैं। अब पचहत्तर की उम्र में क्या सफलता और क्या असफलता! जीवन पूरा बीत गया। थोड़ा सा जीवन शेष बचा है। इसे किस काम में लगाएँ? इस संबंध में अभी तक वे ठीक से निर्णय नहीं कर पाए।

पत्नी साथ में हैं। उनका शुरू से यह मानना है कि औरतों को अच्छी कमाई करने वाला एक आज्ञाकारी पति मिल जाए, बस। उनका जीवन सफल है। इस कसौटी पर उनकी पत्नी का जीवन बहुत सफल है। पढ़ी-लिखी ज्यादा नहीं हैं। मैट्रिक पास हैं। उन्होंने अपने जीवन में बहुत कोशिश की कि उनकी पत्नी कम-से-कम ग्रैजुएट हो जाएँ, परंतु पढ़ाई-लिखाई में उनका मन नहीं लगा। वे पढ़-लिखकर क्या करती! उन्हें कौन सी कमाई करनी है? पति हैं तो इतने पढ़े-लिखे। कर रहे हैं अच्छी नौकरी। ला रहे हैं हर माह मोटी तनख्वाह। उन्हें अपने पति से बस इतनी शिकायत रही, जैसे दूसरे प्रोफेसर ट्यूशन करते हैं। परीक्षाओं के प्रश्नपत्र बनाते हैं। परीक्षा की कॉपियाँ जाँचते हैं और मोटी रकम लेकर साधारण छात्रों को अच्छे नंबर देकर पास कराते हैं, ऐसा कुछ उनके पति क्यों नहीं करते? उन्हें ऐसा करना चाहिए। सिर्फ तनख्वाह के पैसों से भला क्या होता है! मेरी भी इच्छा होती है कि नई डिजाइन के जेवर बनवाऊँ। वही पुराने नेकलेस पहनते-पहनते ऊब गई हूँ। दूसरे प्रोफेसरों की बीबियाँ कैसे नए-नए जेवर पहनती हैं। पत्नी ने एक-दो बार अपनी इच्छा अपने पति को बताई थी। पति ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। इसके अलावा उसे अपने पति से कोई शिकायत नहीं रही। वे घर की पूरी जिम्मेदारियाँ भलीभाँति उठा रहे हैं। अब तो उनके पति रिटायर हो गए। पेंशन में गुजारा चल रहा है।

लोग उन्हें एक सफल इनसान समझते हैं। बेटे और बेटी दोनों बाहर अच्छी नौकरी में हैं। दोनों की शादी हो गई। वे यहाँ अपने शहर में रिटायर जीवन बिता रहे हैं। वे इस पड़ाव पर आकर अकसर सोचते हैं—क्या खोया, क्या पाया? उन्हें लगता है कि उन्होंने खोया ही खोया है। जो पाया है, वह बहुत कम है। अकसर वे अपने कमरे में चुपचाप बैठे रहते हैं। खो जाते हैं अतीत की स्मृतियों में और सोचते हैं कि ऐसा नहीं, वैसा होता तो ज्यादा अच्छा था। और दुःखी हो जाते हैं इस बात को लेकर कि वैसा क्यों नहीं हुआ।

आज सुबह की चाय पीने के पश्चात् वे अपने बचपन में चले गए और पिता को दोष देने लगे। काश, उनके पिता उन्हें बचपन में कॉन्वेंट स्कूल में भर्ती करवाते तो उनकी अंग्रेजी इतनी कमजोर न होती। तब उनका भविष्य इससे ज्यादा उज्ज्वल होता। उनके पिता ने साधारण बच्चों की तरह ही उन्हें सरकारी स्कूल में धकेल दिया। बचपन में उनके लिए कोई ट्यूटर भी नहीं लगाया गया। उन्होंने अपने मन से जो कुछ पढ़ लिया सो पढ़ लिया। कोई कुछ बताने वाला नहीं, समझाने वाला नहीं। पिता भी मेरी पढ़ाई के विषय में मुझसे न पूछकर मेरे स्कूल मास्टर से पूछते। हाँ, कॉपी-किताबों की उन्होंने मुझे कोई कमी नहीं होने दी। मैं बचपन से पढ़ाई के क्षेत्र में कोई बहुत अच्छा छात्र कभी नहीं रहा। कैसे रहता? घर पर कोई मुझे ट्यूशन पढ़ाने आता होता तो कोई बात बनती। पिता तहसील ऑफिस में क्लर्क थे। तनख्वाह उनकी कम रही होगी। परंतु बच्चों का भविष्य यों नहीं बनता! उसके लिए माँ-बाप को भी बहुत त्याग करना पड़ता है। मैं किसी तरह द्वितीय श्रेणी में हाईस्कूल पास करके नौवीं कक्षा में आ गया। यहाँ लोग अपना भविष्य चुनते हैं। कोई बायोलॉजी के विषय चुनता है। कोई मैथ्स लेता है। कई लोग आर्ट के विषय लेकर आगे पढ़ाई करते हैं। पिता ने इस दिशा में ज्यादा दिलचस्पी न दिखाई। उन्होंने हमेशा की तरह मेरा भविष्य स्कूल मास्टर के ऊपर छोड़ दिया। मास्टरजी के अनुसार होशियार बच्चे बायोलॉजी और मैथ्स लेते हैं। साधारण बच्चों के लिए आर्ट्स के विषय ठीक रहते हैं। मुझे साधारण विद्यार्थी मानते हुए आर्ट्स विषयों में दाखिला दिला दिया गया। यह मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ। क्योंकि मैं मिडिल स्कूल में द्वितीय श्रेणी से पास हुआ था, इस आधार पर मुझे साधारण छात्र मानते हुए नौवीं में आर्ट्स विषयों को

पढ़ने के लिए कहा गया। उस समय मुझे ज्यादा समझ न थी। जैसा मेरे स्कूल मास्टरजी ने चाहा, मेरे साथ वैसा ही किया गया। मैं अपने स्कूल मास्टर को कभी माफ नहीं कर सकता।

खैर, मैं आर्ट्स विषयों के साथ पढ़ने लगा। उन दिनों देश में अजीब हवा चली थी—अंग्रेजी हटाओ। अंग्रेजी के खिलाफ शहर में जुलूस निकाले गए। प्रदर्शन हुए। मुझे भी यह सब अच्छा लगा कि विदेशी भाषा जरूर देश से हटाई जानी चाहिए। सरकारी आदेश से अंग्रेजी को ऐक्षिक भाषा की तरह पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। उसकी अनिवार्यता समाप्त कर दी गई। मुझे बहुत खुशी हुई। यह तो बहुत बाद में पता चला कि इसमें हमारे ही पैर कट गए। आगे हम दौड़ नहीं सकते थे, सिर्फ घिसट सकते थे। मैं भी किसी तरह घिसटते-घिसटते यहाँ तक पहुँचा।

पत्नी ने पूछा, "बहुत देर से देख रही हूँ। गुमसुम बैठे हो। क्या बात है?" उसके प्रश्न से तंद्रा टूटी। उससे क्या कहता कि मैं अभी कहाँ था। उसे क्या पता कि मैं किन-किन मोर्चों पर किस प्रकार असफल रहा। उसको तो मिल गया एक आज्ञाकारी कमाऊ पति। उसे अब क्या चाहिए। कुछ नहीं। मेरी असफलताएँ तो मुझे ही कचोटती हैं, और किसी को इससे क्या लेना-देना।

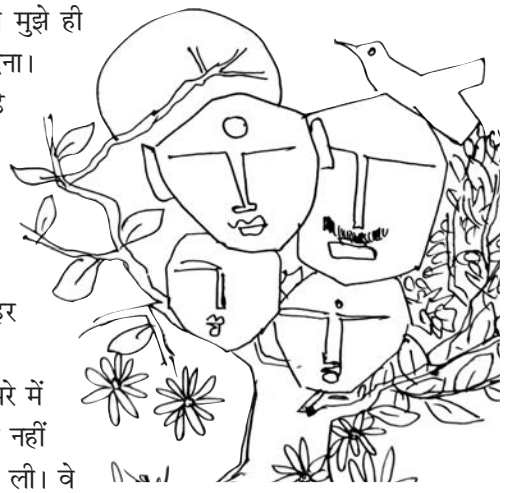

उन्होंने पत्नी से कहा, "बाथरूम में कपड़े रख दो, नहाऊँगा।" इतना कहकर वे उठे और नहाने की तैयारी करने लगे। नहाकर उन्होंने अपना नियमित पूजा-पाठ किया। कंघी करके, लुँगी लपेटे डायनिंग टेबल पर आ पहुँचे। पत्नी समझ गई कि अब इन्हें दोपहर का भोजन चाहिए।

भोजन करके वे आराम करने अपने कमरे में आ गए। प्राय: उन्हें दोपहर में सोने की आदत नहीं है। कभी-कभार एकाध झपकी ले ली तो ले ली। वे बिस्तर पर करवटें बदलने लगे।

वे अब अपने स्कूली जीवन को देख रहे थे। आर्ट्स विषयों के साथ उनकी पढ़ाई चल रही थी। उनकी पढ़ाई में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। फिर दिलचस्पी किस क्षेत्र में थी? यह प्रश्न आज भी उनके लिए बहुत बड़ा है। स्कूल के दिनों में खेलों में उनकी कभी रुचि नहीं रही। न खेलने में, न देखने में। कभी-कभार सहपाठियों के साथ कोई मैच देखने चले गए तो चले गए। परंतु क्रिकेट, फुटबाल या हॉकी के मैच देखने में उनकी कोई दीवानगी कभी नहीं रही। हाँ, फिल्में देखने और फिल्मी गाने सुनने का शौक विद्यार्थी जीवन में रहा, अब नहीं है। सहपाठियों के साथ पहले गपशप कर लिया करते थे। अब रिटायर होने के पश्चात् किसी से ज्यादा मिलना-जुलना पसंद नहीं करते। इस प्रकार वे स्वयं नहीं समझ पाते कि उनके शौक क्या हैं? साधारण छात्रों की तरह उन्होंने द्वितीय श्रेणी में हायर सेकेंडरी की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उन्हें यह सोचकर अब गुस्सा आता है कि उस समय उन्हें किसी ने क्यों नहीं बताया कि साइंस विषयों के साथ पढ़ाई करो तो बेहतर भविष्य बन सकता है।

उनके कस्बे में डिग्री कॉलेज नहीं था, इसलिए शहर में आकर उन्होंने कॉलेज में एडमीशन ले लिया। यहाँ वे हॉस्टल में रहने लगे। अपने कस्बे से बाहर निकलकर पहली बार उन्होंने दुनिया को ठीक से देखा और समझा। पहली बार शहर में उन्होंने बेरोजगारी का बीभत्स सच देखा। किसी भी विभाग में नौकरी की थोड़ी सी रिक्तियाँ निकलतीं और इंटरव्यू देने वालों की लंबी कतारें लग जातीं। अब उन्हें समझ में आने लगा कि जीवन में साधारण पढ़ाई-लिखाई से काम नहीं चलने वाला। अच्छी नौकरी पाने के लिए बड़ी डिग्री चाहिए, वह भी अच्छे नंबरों के साथ। उन्होंने अब अपनी पढ़ाई की ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान देना प्रारंभ किया। यह अफसोस उन्हें जरूर बना रहा कि काश, वे साइंस विषयों के साथ आगे पढ़ पाते। वैसे वे अंग्रेजी बोल लेते हैं, लिख लेते हैं, परंतु अंग्रेजी में बोलकर या लिखकर वे अच्छी तरह अपने विचार नहीं व्यक्त कर सकते, यह अभाव उन्हें उस समय भी कचोटता था और आज भी कचोटता रहता है। कॉलेज में उन्होंने मन लगाकर पढ़ाई की, बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास हो गए। उनके पिता बहुत प्रसन्न हुए और बेटे पर कोई नौकरी तलाश लेने के लिए जोर डालने लगे। कुछ जगहों पर नौकरी के लिए उन्होंने अप्लाई भी किया, परंतु इतनी आसानी से कहीं नौकरी मिलती है।

उन्हीं दिनों उनके कॉलेज के एक प्रोफेसर ब्रजलाल वर्मा अपनी भतीजी का रिश्ता लेकर उनके पिता के पास आए। भतीजी उनकी हायर सेकेंडरी पास थी। पास ही गाँव में उनके छोटे भाई रहते थे। उनकी दो बेटियाँ थीं। बड़ी बेटी का रिश्ता इनके लिए आया। प्रोफेसर साहब को मालूम था कि लड़का बेरोजगार है, परंतु उन्होंने लड़के को नौकरी दिलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। लड़के के पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बेटे को समझाया, इससे अच्छा रिश्ता नहीं मिल सकता। उन्होंने प्रोफेसर साहब से आगे पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। वे मान गए और शादी तय हो गई।

वे बिस्तर पर करवटें ही बदलते रहे थे कि शाम के चार बज गए। भीतर से पत्नी ने आवाज लगाई, "चाय लेकर आऊँ?"

उन्होंने जोर से "हाँ" कह दी। अब वे पत्नी के विषय में सोचने लगे। वे जब ग्रैजुएट हो गए थे, तब पत्नी हायर सेकेंडरी पास थी। सोचते थे, उसे आगे पढ़ा लेंगे। नहीं पढ़ा पाए। परंतु उसके प्रोफेसर चाचा, जो राजनीति शास्त्र के विभागाध्यक्ष थे, ने उसको जरूर खूब पढ़ाया और इस लायक बनाया कि वे आज सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

पत्नी चाय लेकर आ गईं। वे क्षण भर उसकी ओर देखते रहे मानो कृतज्ञता ज्ञापित कर रहे हों। वे बोले कुछ नहीं। उन्होंने चुपचाप चाय पी ली। शाम को वे कॉलोनी के बीचोबीच बने हुए बगीचे में घूमने जाते हैं। बगीचे में दो-तीन चक्कर लगाकर वहीं बेंच पर सुस्ताने के लिए बैठ जाते

हैं। आज भी उन्होंने वैसा ही किया। बेंच पर बैठे-बैठे वे फिर अपने कॉलेज के दिनों में चले गए।

प्रोफेसर साहब के प्रस्ताव के अनुसार शादी हो गई और उन्होंने कॉलेज में राजनीति शास्त्र के विषयों के साथ एम.ए. में एडमीशन ले लिया। उनके काका ससुर कॉलेज में उनके विषय के विभागाध्यक्ष। विश्वविद्यालय में उनका रुतबा। उनकी जान-पहचान का दायरा बहुत बड़ा। एम.ए. करने में कोई ज्यादा समय थोड़े ही लगता है। उसी समय उनकी नई-नई शादी हुई थी। वे कॉलेज में पढ़ रहे थे और परीक्षाएँ दे रहे थे। उन्हें स्वयं यह पता नहीं चला कि वे कैसे एम.ए. की परीक्षा में बहुत अच्छे नंबरों के साथ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गए। उनके काका ससुर बहुत उत्साहित हुए। उन्होंने बिना देरी किए अपने दामाद का अपने ही विभाग में पीएच-डी. के लिए रजिस्ट्रेशन करा दिया। पीएच-डी. होने में भी उन्हें ज्यादा वक्त नहीं लगा। उनके काका ससुर ने उनसे वादा जो किया था कि नौकरी दिलवाने की जिम्मेदारी उनकी है। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाई और एक दिन वे उसी कॉलेज में जहाँ पढ़ते थे, सहायक प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए।

साँझ घिर आई थी। उन्हें लगा कि अब घर चलना चाहिए। वे घर आ गए। रोज की तरह पत्नी ने पूछा, "रात के खाने में क्या खाएँगे?" उन्होंने बिना किसी उत्साह के कहा, "कुछ भी बना लो। जो तुम्हारा मन हो।" पत्नी ने भीतर जाते हुए कहा, "मूँग की दाल वाली खिचड़ी बना लेती हूँ। मेरा आज खिचड़ी खाने का मन है।"

उन्होंने अपनी सहमति जताते हुए कहा, "खिचड़ी ही बना लो। ठीक रहेगी।" वे अब बैठक में आकर सुबह के अखबार पलटने लगे। उन्हें अपने बच्चे याद हो आए। शादी के साल भर बाद ही सोनू हो गया। बचपन से बहुत जिद्दी था। वे भले ही कॉन्वेंट में नहीं पढ़ पाए, परंतु उन्होंने सोनू को कॉन्वेंट में दाखिला दिलवाया। उसकी अंग्रेजी बहुत अच्छी रहे, इस बात के लिए वे शुरू से सतर्क रहे। उन्होंने उसके लिए घर पर ट्यूटर भी लगाया। उनका सपना था कि वे अपने सोनू को आई.ए.एस. अफसर बनाएँगे। पर किसी के सपने इतनी आसानी से पूरे होते हैं क्या? सोनू के जन्म के दो साल बाद पिंकी आ गई। सीधी, सरल और शांत स्वभाव वाली पिंकी। इसे भी उन्होंने कॉन्वेंट में भर्ती करवाया। सोचा कि इसे डॉक्टर बनाएँगे। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते गए, वैसे-वैसे वे स्वतंत्र होते चले गए। माँ-बाप अपने बच्चों का भविष्य सोचते हैं और बच्चे अपना भविष्य खुद बनाते हैं। सोनू ने हायर सेकेंडरी करने के पश्चात् बी.बी.ए. जॉइन कर लिया। पिता ने बहुत समझाया कि आई.ए.एस. की तैयारी कर परंतु वह नहीं माना। एम.बी.ए. करने के पश्चात् अब बैंगलोर की एक आई.टी. कंपनी में नौकरी करता है। पिंकी ने हायर सेकेंडरी करने के पश्चात् बी.ए. में एडमीशन लिया। मेडिकल लाइन उसे कभी रास नहीं आई। संयोग से उसी समय उसके लिए एक इंजीनियर लड़के का रिश्ता आया। मेरे काका ससुर जो अब रिटायर हो गए थे। उन्होंने मुझसे कहा, "यह रिश्ता छोड़ना नहीं है।" मैंने वैसा ही किया। पिंकी की शादी धूमधाम से हुई। आज वह अपने ससुराल में है। परंतु अफसोस, वे पिंकी को डॉक्टर नहीं बना पाए। सोचते थे, बेटी डॉक्टर नहीं हो पाई तो बेटे की शादी किसी एम.बी.बी.एस. लड़की से करेंगे। उन्होंने इस दिशा में गंभीरतापूर्वक तलाश जारी की। उन्हें विश्वास था कि वे अपनी बिरादरी में एम.बी.बी.एस. लड़की ढूँढ़ लेंगे। उधर सोनू ने अपनी कंपनी की एक सहभागी लड़की से शादी का प्रस्ताव सामने रखा। वे चाहकर भी इस प्रस्ताव का विरोध नहीं कर पाए। जहाँ सोनू ने चाहा, वहीं उसकी शादी हो गई। अब, बेटे-बहू बैंगलोर में रहते हैं। न तो वे सोनू को आई.ए.एस. अफसर बना पाए और न पिंकी को डॉक्टर। हालाँकि उन्होंने दोनों की पढाई-लिखाई में बचपन से कोई कसर नहीं रखी। सोचते थे, डॉक्टर बहू घर में ले आएँगे। नहीं ला पाए। कुछ भी तो वे अपने मन का नहीं कर पाए। सचमुच कितने असफल आदमी हैं वे।

पत्नी ने टी.वी. ऑन कर दिया। समाचार आ रहे थे। प्राय: वे समाचार ही देखते-सुनते हैं। घरेलू किस्म के सीरियल उन्हें बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। पत्नी ऐसे सीरियल देखती रहती है। वे अपने कमरे में अखबार कई-कई बार पढ़ते हैं। पत्नी ने उनके लिए हॉकर को बोलकर तीन-चार अलग-अलग अखबार लगवा दिए हैं। वे चुपचाप अखबार देखते हुए अपनी ही दुनिया में खोए रहते हैं। आजकल उन्हें रह-रहकर यह बात बहुत सताती है कि वे जीवन में कुछ नहीं कर पाए। वे सोचते हैं कि वे एक असफल व्यक्ति हैं।

पत्नी ने भीतर से आवाज दी, "खाना डाइनिंग टेबल पर लगा दिया है।" वे अखबारों के ढेर को एक ओर सरका के डाइनिंग टेबल पर आ गए। खिचड़ी स्वादिष्ट बनी है। उन्हें अच्छी लगी। खाना खाने के पश्चात् वे कॉलोनी में थोड़ी देर टहलते हैं। कभी कभार तो बनियान और लुँगी में ही अपने घर के सामने की सड़क में दो-तीन चक्कर लगा लेते हैं। आज उन्होंने लुँगी के साथ कुरता पहन लिया और घर के सामने की सड़क पर टहलने लगे। सामने के बँगले में गुप्ताजी रहते हैं। बड़े उद्योगपति हैं। वे भी रात के भोजनोपरांत बँगले के सामने टहलने निकलते हैं। उनके भी दो बच्चे हैं। दोनों ने अलग-अलग अपने उद्योग स्थापित कर लिए हैं। प्राय: गुप्ताजी की प्रोफेसर साहब से भेंट हो जाती है। आज दोनों फिर आपस में मिले। गुप्ताजी ने बातों ही बातों में प्रोफेसर साहब से कहा, "आप बहुत सुखी व्यक्ति हैं, प्रोफेसर साहब और मैं बहुत दु:खी। लगता है मैं जीवन में कुछ नहीं कर पाया। एक असफल जीवन जिया मैंने।" ऐसा कहते हुए उन्होंने एक लंबी आह भरी।

प्रोफेसर साहब को कोई जबाव नहीं सूझा। क्या कहते वे? वे तो स्वयं यही सोचते रहते हैं।

रात देर तक उन्हें नींद नहीं आई। वे जिंदगी भर विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे। उनके जटिल प्रश्नों का अपनी कक्षा में उत्तर देते रहे। आज एक अनुत्तरित प्रश्न उनके सामने है—जीवन की सफलता क्या है? लेटे-लेटे वे फिर जीवन की स्मृतियों में खो जाते हैं और सोचने लगते हैं, काश! जीवन में ऐसा होता।

सा अ

३७६-बी, आर-सेक्टर, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर-४५२१० (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५१६७००३

बीती ताहि बिसार दे

● रमेश चंद्र बादल

महान् कूटनीतिज्ञ एवं राजनीतिज्ञ आचार्य चाणक्य ने बीती बातों का शोक-पछतावा एवं भविष्य की चिंता न करने के विषय में कहा है—

गतं शोको न कर्तव्यं भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तंत विचक्षणा: ॥

भावार्थ—बीती हुई बात का शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य में क्या होगा इसकी भी चिंता नहीं करना चाहिए। बुद्धिमान लोग वर्तमान काल के अनुसार ही चलते हैं (चाणक्य नीति १३/२)

नीति सम्राट् चाणक्य ने उक्त श्लोक द्वारा अमूल्य शिक्षा (सीख) दी कि हमें बीती हुई बातों को अपने मन में गाँठ बनाकर नहीं रखना चाहिए। अप्रिय, दु:ख, कटु एवं ठेस पहुँचाने वाली बातों को भूल जाना ही हितकर होता है। यदि हम बीती बातों को अपने दैनिक जीवन में बार-बार याद करते रहेंगे तो हमारी मानसिक शांति नष्ट होगी और मानसिक रूप से अशांति का प्रभाव हमारे वर्तमान जीवन पर भी बुरा पड़ सकता है। यदि हमारा वर्तमान बिगड़ता है तो उसका प्रभाव भावी जीवन पर भी पड़ सकता है। यदि हम हमेशा भविष्य की चिंता करने में ही अपना समय बरबाद करेंगे तो यह भी गलत होगा। भविष्य तो अभी आया नहीं। भविष्य में क्या होगा? कोई नहीं जान सका है और न ही जान सकता है, इसलिए भविष्य की चिंता करने में कोई लाभ नहीं होगा। भविष्य कि चिंता में अपने वर्तमान की शांति नष्ट मत करो। संसार में जो भी व्यक्ति महान् बने हैं, उन्होंने वर्तमान में ही जीना सीखा था। वर्तमान व्यक्ति की मुट्ठी में है, वह चाहे तो उसका सदुपयोग कर जीवन की ऊँचाई को छू ले या अपनी बरबादी का मूकदर्शक बना रहे। वर्तमान को स्वीकार कर ही हम श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है।

अत: आवश्यकता है वर्तमान जीवन के हरेक पल को, प्रत्येक क्षण को सहेजने, सँवारने और गढ़ने की।

प्रत्येक व्यक्ति सुख और शांति का जीवन जीने की कामना करता है और यह कामना इच्छा स्वाभाविक भी है। परंतु सुखी और शांति का जीवन जीना क्या चिंता और मानसिक घुटन के साथ रहने से संभव है? सर्वथा नहीं। मानसिक रूप से चिंतित रहने और बीती बातों पर सोचते रहने से तो जीवन में सुख और शांति का अनुभव करना संभव नहीं। लगातार घुटन का जीवन जीते रहने से व्यक्ति कई रोगों जैसे तनाव, रक्तचाप, मधुमेह आदि का शिकार हो जाएगा। इतना ही नहीं वह पारिवारिक जीवन का सुख और आनंद से भी वंचित रहेगा। स्वास्थ्य भी गिर जाएगा।

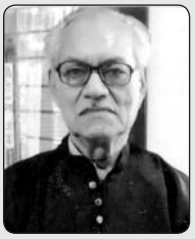

सुपरिचित लेखक। दैनिक समाचार-पत्र, मासिक पत्रिकाओं कल्याण, जाह्नवी, रचना, अंतसमणि में लेखन। अखिल भारतीय भाषा सहित भोपाल द्वारा राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित।

परिजनों, मित्रों और संबंधियों से भी संबंध खराब हो सकते हैं। तो क्या करें? चिंता और मन-ही-मन में घुटते रहने के स्वभाव को बदलिए। अपने दृष्टिकोण सोच में परिवर्तन करिए। सकारात्मक सोच को अपनाना चाहिए। कहा भी गया है कि 'चिंता चिता से बढ़कर है' चिंता तो मुर्दा को जलाती है, परंतु चिंता तो जीवित को जलाती रहती है।

कहा गया है कि 'गतं न शोचन्ति पण्डिता', अर्थात् विद्वान् बीती बातों पर शोक-चिंता नहीं करते।

मदर टेरेसा ने कहा है—कल तो चला गया, आने वाला कल अभी आया नहीं, हमारे पास केवल आज है, आइए शुरुआत करें।

अतएव वर्तमान को सँवारो, सुधार करो, आशावादी बनो, जो बीत गया उससे शिक्षा (सीख) लो और भविष्य की योजना बनाने में अपने समय का बेहतर उपयोग करो। अतीत को भूल जाओ, जो बीत गया उस पर चिंता मत करो, दु:खी मत रहो, वर्तमान का महत्त्व समझो, यदि इस पर ध्यान दिया जाए तो आपका भविष्य अपने आप ही सुखद बनेगा। स्वस्थ और सुखी जीवन जीने के लिए वर्तमान को सुधारना ही अच्छा होगा।

मनोवैज्ञानिक मैथ्यू सेक्सटान का कहना है कि हम अपने संबंधों की खटास एवं पीड़ा को अपने जेहन में जिंदा रखना चाहते हैं। इन्हें समाप्त नहीं करते, बल्कि इनको जिंदा रखने के लिए उनका पोषण करते हैं। इस संदर्भ में मनोवैज्ञानिक डेबिडसन कहते हैं कि यदि व्यक्ति किसी घटना को लगातार और लंबे समय तक याद करता रहे तो वह दीर्घकालीन स्मृति में परिवर्तित हो जाती है, अर्थात् वह अचेतन में चली जाती है और जैसे ही हम इस संदर्भ में सोचने लगते हैं तो हमारे मन-मस्तिष्क में अतीत की वह घटना उसी रूप में चलचित्र के समान चलने लगती है और हम उन भीषण घटनाओं के साथ जीने के लिए विवश हो जाते हैं।

रिचर्ड मेकनली के अनुसार कहें तो डरानेवाली, भय एवं आतंकित करने वाली बुरी यादें मस्तिष्क के एमाइगेडला नामक संवेदनशील स्थान

पर संगृहीत हो जाती हैं। मनोविज्ञानी केथरीन का कहना है कि अतीत की सारी बातें अपने आप में परेशानी खड़ी करने वाली नहीं होती हैं। परेशानी ले तब होती है, समस्या तो तब बनती है, जब ये बोझ बनकर हमारे मनोमस्तिष्क को झकझोरने लगे, हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करने लगें।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इनसान अपने अतीत की सुनहली एवं सुखद घटनाओं के स्थान पर दु:खद एवं पीड़ित करने वाले क्षणों को अधिक याद करते हैं। नकारात्मक चिंतन एवं स्मृतियों से तनाव बढ़ता है और तनाव बढ़ने से शरीर में कार्टीसोल नामक हार्मोन का स्राव बढ़ जाता है। इससे हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली क्षमता घट जाती है।

अतीत की कड़वाहट से बचने के लिए हमें वर्तमान में जीने का अभ्यास डालना चाहिए। जो वर्तमान को सँभाल लेता है, वह अतीत की भूलों का सुधार करके भविष्य को सुनहला एवं उज्ज्वल बना लेता है। (युग निर्माण योजना से उद्धृत साभार)

इस विषय में किसी महापुरुष ने बहुत अच्छा कहा है—'Never think hard about past it brings tears. Don't think more about future it brings fear.'

(बीते गए समय के लिए कभी न सोचें, वह आँसू लाता है। भविष्य के बारे में न सोचें, उससे भय लगता है। आज के क्षण को भरपूर जिएँ, वह खुशी लाता है।)

राष्ट्रसंत श्री अमरमुनिजी महाराज ने कहा है—

बीत गया गत बीत गया वह
अब उसकी चर्चा छोड़ो।
आज कर्म करो निष्ठा से,
कल के मधु सपने जोड़ो॥

अर्थात् जो बीत गया उसको भूलना ही आपके लिए हितकारी है। जो बीत गया, उसे बदला नहीं जा सकता फिर उसे याद करते रहना, घुटन अनुभव करते रहना बिल्कुल भी अच्छा नहीं है। मनुष्य पहला सुख 'नीरोगी काया' कहा गया है और नीरोग रहने के लिए यह आवश्यक है कि आप चिंता, तनाव, घुटन एवं असंतोष का जीवन छोड़कर वर्तमान को सुखी बनाने का प्रयास करें। अपने मन से उदासीनता, निराशा, क्रोध को छोड़कर वर्तमान में प्रसन्न रहने का उपाय करें और प्रसन्नता के लिए भी आवश्यक है कि पहले आप अपने आप में कुछ परिवर्तन करें, सोच को बदलें, नकारात्मक विचारों को छोड़ें, अप्रिय कटु बातों पर कोई ध्यान न दें। थोड़ा सहनशील भी बनें। हाँ, एक और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है वह 'क्षमाशील बनें'। क्षमाशीलता एक सर्वोत्तम गुण माना गया है। क्षमा प्रदान करने से दोनों को लाभ मिलता है। जो क्षमा करना है उसे आनंद खुशी और शांति मिलती है और जिसे क्षमा किया जाता है, उसे भी प्रसन्नता होती है और वह क्षमा करने वाले के प्रति हमेशा कृतज्ञ और श्रद्धाशील रहता है।

नीतिसम्राट् चाणक्य की तरह बीती बातों को भूलने के विषय में यह भी कहा गया है—

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय।
जो बन आवे सहज में, ताहि में चित देय॥

अर्थात् बीती बातों को भूलना ही अच्छा माना गया है। घाव को बार-बार खोलकर देखना-कुरेदने से घाव अच्छा नहीं होता, इसी प्रकार बीती हुई बातों को सोचते रहने से मानसिक सुख और शांति भी नष्ट होती है। गलतियाँ तो प्रत्येक मनुष्य से होती हैं। कहा भी गया है कि 'Man is made of errors' मनुष्य भूलों से बना है। और भूलों को क्षमा करना भी एक अच्छी नीति है।

बीती हुई बातों को भूलने में ही आपकी भलाई है। हमेशा याद रखें, जो हो गया अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह भी अच्छा है और जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है–'God does everything for good', इसलिए बीती हुई बातों पर अपनी मानसिक शांति नष्ट मत करो। भूलना सीखना भी आवश्यक है। इस विषय में अमेरिका के प्रमुख डॉक्टर 'मेडिकल टॉक' (Medical Talk) नामक पत्र में लिखते हैं कि वर्षों के अनुभव के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि दु:ख दूर करने के लिए 'भूल जाओ' से बढ़कर कोई दवा है ही नहीं। अपने लेख में वे लिखते हैं–यदि तुम शरीर से, मन से और आचरण से स्वस्थ होना चाहते हो तो अस्वस्थता की सारी बातें भूल जाओ। उन्हें भूला दो।

कहा गया है—'Forget and forgive is the best policy' यह कथन सुखी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। अपनी भूल के लिए क्षमा माँगना और दूसरों की भूलों को क्षमा करना भी आवश्यक होता है। कहा गया है—"जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए एक ही उपाय है कि आप एक क्षण को भी खिन्नता के वशीभूत न हों। अप्रिय परिस्थिति उत्पन्न होने पर भी प्रसन्नचित्त रहिए।"

"विरोध को विरोध के रूप में न लेकर उसे प्रेरणा के रूप में स्वीकार कीजिए। कटुता का उत्तर मधुरता से दीजिए। खिन्नता हर तरह के शोक-संतापों की जड़ है। इसको आश्रय देते ही संपूर्ण जीवन दु:खों का भंडार बन जाएगा।" (ऋषि चिंतन के सान्निध्य में से उद्धृत)

बीती हुई बातों को भूलने में ही आपकी भलाई है। हमेशा याद रखें, जो हो गया अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह भी अच्छा है और जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है—'God does everything for good', इसलिए बीती हुई बातों पर अपनी मानसिक शांति नष्ट मत करो। भूलना सीखना भी आवश्यक है। इस विषय में अमेरिका के प्रमुख डॉक्टर 'मेडिकल टॉक' (Medical Talk) नामक पत्र में लिखते हैं कि वर्षों के अनुभव के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि दु:ख दूर करने के लिए 'भूल जाओ' से बढ़कर कोई दवा है ही नहीं। अपने लेख में वे लिखते हैं—यदि तुम शरीर से, मन से और आचरण से स्वस्थ होना चाहते हो तो अस्वस्थता की सारी बातें भूल जाओ। उन्हें भुला दो।

रोज-रोज जिंदगी में छोटी-मोटी चिंताओं को लेकर झींकते मत रहो, उन्हें भूल जाओ। उन्हें पोसो मत, अपने दिल के अंदर उन्हें मत रखो, उन्हें अंदर से निकाल फेंको और भूल जाओ।

माना कि किसी 'अपने' ने तुम्हें चोट पहुँचाई है, तुम्हारा दिल दुखाया है। संभव है जान-बूझकर उसने ऐसा नहीं किया है और मान लो कि जानबूझकर ही उसने ऐसा कर डाला है तो क्या तुम उसे लेकर सूत कातते रहोगे? इससे तुम्हारे दिल का दर्द कुछ हलका होगा क्या? अरे भाई, भुला दो, भूल जाओ से लेकर चिंताओं का जाल मत बुनने लगो। भूल जाओ, उधर से चित्त हटा लो, आँखें फेर लो, मन मोड़ लो।

भूलना सीखो। यदि शरीर का स्वास्थ्य और मन की शांति अभीष्ट है तो भूलना सीखो, भूलना सीखो। (कल्याण, दिसंबर २००४, पृष्ठ १००३ से उद्धृत)

विश्वप्रसिद्ध महापुरुष, नीतिज्ञ, कवि, संत एवं लेखकों के मतानुसार यह स्पष्ट है कि बीती बातों को भूलना ही बुद्धिमत्ता है। यदि आप बीती बातों को भूलते नहीं हैं और उन अप्रिय कटु एवं ठेस पहुँचाने वाली बातों को अपने दिल और दिमाग में बनाए रखते हैं तो आप अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ लेंगे। अपनी मानसिक शांति को भी नष्ट कर देंगे। इस विषय में यदि आप स्वयं परेशानी अनुभव करते हैं तो बेहतर है कि आप अपने बुजुर्ग परिजनों (माता-पिता आदि) शुभचिंतक मित्र से भी परामर्श लें। हमेशा सकारात्मक सोच रखें। प्रत्येक परिस्थिति में संतुलित रहने की आदत डालें। अनुभवी व्यक्तियों से मार्गदर्शन एवं सलाह लेने में संकोच न करें। ऐसा करने पर आप हमेशा मानसिक रूप से शांति अनुभव करेंगे। खुश रहेंगे। स्वस्थ रहेंगे।

ई-२/१४१, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-४६२०१६ (म.प्र.)
दूरभाष : ९९१००६८३९९

महाराज की जय हो

लघुकथा

• प्रतिभा चौहान

सुसज्जित हाथी से उतरकर आलीशान राज महल के सभागार में राजा का प्रस्थान हुआ शंख ढोल तासे, नगाड़े, काँसे, बाँसुरिया, झाल करताल, तुरही, मृदंग जोर-जोर से बजने लगे। सभागार में उपस्थित पंडितों ने मंत्र पाठ किया और मित्र, मंत्री, मुँहलगे, बड़े-बूढ़े जवान, फरियादी, पंच, सेनापति, दास-दासियाँ सभी एक सुर में जय-जयकार करने लगे। अपने दाहिने हाथ में रेशमी पटका डाले बड़े-बड़े डगों से चलते हुए राजा प्रसन्न मुद्रा में स्वाभिमान के साथ सिंहासन पर विराजमान हुआ।

पुष्प अर्पण, जयकारों, स्वागत सत्कार और शोर-शराबे के साथ-साथ राजा ने बैठते-बैठते पूरी सभा पर एक दंभभरी दृष्टि डाली और अपने दोनों हाथों को ऊपर करके सभी को बैठने का इशारा किया। सभा शांत हो चुकी थी।

"सभा की काररवाई प्रारंभ की जाए"···इसी आदेश के साथ काररवाई प्रारंभ हुई। पिछले कई दिनों से एक विशेष पुरस्कार देने हेतु किसी परम विद्वान व्यक्ति को राजपुरोहित के पद से सुशोभित करने हेतु विशेष चर्चा एवं विचार-विमर्श चल रहा था। आखिरकार निर्णय का दिन आया। राजा को उस दिन दो घोषणाएँ करनी थीं, प्रथम राजपुरोहित की नियुक्ति एवं एक अन्य पुरुस्कार की घोषणा।

सभी लोग राजा के मुख की ओर नजरें गड़ाए साँस रोककर निर्णय सुनने की प्रतीक्षा में थे तभी राजा ने घोषित किया, "काफी दिनों के विचार-विमर्श एवं चर्चा के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि राजबल्लभ को राजपुरोहित का पद दिया जाए, अत: राजबल्लभ को राजपुरोहित नियुक्त किया जाता है।"

महाराज की जय हो, महाराज की जय हो, बहुत अच्छा निर्णय है। सर्वश्रेष्ठ निर्णय हेतु ही हमारे महाराज को जाना जाता है। इस तरह तरह-तरह के वाक्यों से महाराज के निर्णय को सर्वोत्तम कहा जा रहा था।

उसी दिन रात्रि में रानी ने राजा के समक्ष अपना विरोध दर्ज कराया महाराज राजबल्लभ का निर्णय मुझे बिल्कुल पसंद नहीं मेरे भतीजे में क्या बुराई थी, वह भी तो सुशिक्षित व्यक्ति है।

परंतु···परंतु कुछ नहीं, मुझे अपने भतीजे की नियुक्ति ही चाहिए। प्रिये, इस पद को सुशोभित करनेवाले व्यक्ति का चरित्र सर्वोत्तम और बेदाग होना चाहिए लेकिन तुम तो जानती ही हो, मुझे कुछ नहीं पता···बीच में ही बात काटते हुए महारानी ने कहा क्या हुआ अगर भ्रष्टाचार के मामलों में दो बार पकड़ा गया, राजनीति में ये सब चीजें चलती रहती हैं। रानी रूठी तो रतनजीत के पद पर आसीन होने के निर्णय से कम पर बिल्कुल तैयार न थी। अंतत: रातोरात निर्णय को पलटने का निश्चय कर लिया गया।

अगले दिन पुष्प अर्पण, जयकारों, स्वागत सत्कार और शोर-शराबे के साथ-साथ राजा ने बैठते-बैठते पूरी सभा पर एक दृष्टि डालते हुए दोनों हाथों को ऊपर करके सभी को बैठने का इशारा किया। सभा के शांत होने के साथ ही राजा ने कहा, "मैंने काफी विचार-विमर्श के पश्चात् कल के निर्णय को बदलने का निश्चय किया है", सभा में बैठे सभी लोग टकटकी लगाकर राजा की ओर देखने लगे कि अचानक से इस निर्णय को बदलने का क्या कारण हो सकता है, राजा ने भरी सभा में अपना निर्णय सुनाते हुए कहा राजबल्लभ से अधिक विद्वान् व्यक्ति रतनजीत है अत: रतनजीत को इस राज्य का राजपुरोहित घोषित किया जाता है।"

राजा द्वारा उद्घोषणा किए जाते ही सभा में उपस्थित सभी लोग राजा की जय-जयकार करने लगे, "महाराज की जय हो···महाराज की जय हो··· सर्वोत्तम निर्णय···हमारे महाराज अच्छे निर्णयों के लिए ही देश में जाने जाते हैं। रतनजीत का फूलों के हार और जय-जयकार से स्वागत किया गया। सभी को राजा द्वारा किए गए निर्णय पर बहुत प्रसन्नता और विश्वास था।

अपर जिला न्यायाधीश, बिहार
दूरभाष : ०८७०९७५५३७७

परोपकार

• मंजरी शुक्ला

उछलता कूदता हुआ लक्षित जब छत से उतरा तो मम्मी ने उसे देखते हुए कहा, "पहले तो छत पर जाने के नाम से तेरे हाथ पैर फूलने लगते थे अब तो जब देखो तब तू छत पर ही तितली की तरह मंडराया करता है।"

लक्षित हँसते हुए बोला, "आप सही कह रही हो। जब से आपने इतने सुंदर गुलाब के फूल, छत पर लगा दिए हैं, तब से मैं तितली ही बन गया हूँ।"

और लक्षित दोनों हाथ फैलाकर तितली की उड़ने की नकल उतारता हुआ वह घर भर में दौड़ने लगा।

मम्मी खिलखिलाकर हँस दी।

तभी दादाजी अपने कमरे से बाहर निकले और बोले, "अब मैं कॉलेज से लौटकर दो घंटे शाम को उन बच्चों को पढ़ाया करूँगा, जो फीस नहीं दे पाते हैं।"

"यह तो बहुत ही नेक काम है।" मम्मी ने खुश होते हुए कहा

हाँ, मम्मी, मैं भी उन सब बच्चों को बता दूँगा, जो पैसे के कारण ट्यूशन नहीं लगा पाते हैं। लक्षित ने तुरंत कहा।

दादाजी बोले, "नहीं तुम शायद ठीक से मेरे बात समझे नहीं हो। शाम को पाँच बजे से लेकर सात बजे तक मैं किसी भी बच्चे से कोई पैसे नहीं लूँगा, चाहे वे पैसे दे सकते हों या नहीं।"

"पर दादाजी आप ऐसा क्यों करोगे, जो बच्चे फीस दे सकते हैं उनसे तो आपको पैसे लेने चाहिए।" लक्षित ने किसी बड़े बुजुर्ग की तरह दादाजी को समझाते हुए कहा।

दादाजी बोले, "अच्छा बताओ, तुम्हें कैसे पता चलेगा कि कौन पैसे दे सकता है और कौन नहीं?"

"इस बात को तो कोई भी बता देगा आप कोई कठिन प्रश्न पूछिए।" लक्षित हँसते हुए बोला।

"सरलता जितनी कठिन होती है उतना कठिन कुछ नहीं होता।" दादाजी ने प्यार से लक्षित का हाथ पकड़ते हुए कहा।

"आपकी बात मुझे कई बार बिल्कुल भी समझ में नहीं आती है।" लक्षित में अपनी कंचे जैसी भूरी आँखें गोल-गोल घुमाते हुए कहा।

"सिर्फ इतना बता दो कि तुम्हें कैसे पता चलेगा कि कौन फीस दे सकता है या नहीं?"

"जो कहेगा कि उसके पास पैसे नहीं है, उससे आप पैसे नहीं लेना और जो यह नहीं कहे, उससे ले लेना।" लक्षित हँसते हुए बोला।

सुपरिचित लेखिका। अब तक बाल-साहित्य की पाँच पुस्तकें। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानियाँ आदि प्रकाशित। संप्रति कुरुक्षेत्र आकाशवाणी में एनाउंसर। स्वतंत्र रूप से साहित्य लेखन में रत।

"हाँ, मुझे भी तेरे दादाजी की यह बात कभी समझ में नहीं आती। जरूरतमंदों की मदद करने के साथ ही वह ऐसे लोगों की भी हमेशा मदद करते रहते हैं, जिन्हें शायद कोई मजबूरी ही नहीं है।"

"इसके लिए तो तुम दोनों को मेरे बचपन की कुछ बातें सुननी पड़ेंगी।"

"हाँ, तो सुनाइए न दादाजी, हमें भी तो पता चले कि चाहे कोई आपसे मदद माँगे या नहीं, आप सबकी मदद क्यों करते रहते हैं?"

दादा जी बोले, "जब मैं तेरी उम्र का था···"

"लक्षित ने टोका, "मतलब जब आप आठ साल के थे।"

"हाँ, जब मैं आठ साल का था तो एक दिन स्कूल से लौटने के बाद जब मैं घर आया तो मुझे मेरे बाबूजी कहीं नहीं दिखाई दिए। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। वह रोज मुझे मेरा इंतजार करते हुए बाहर दरवाजे पर ही मिलते थे। चाहे कितनी तेज धूप हो या फिर कोहरे वाली कड़कड़ाती सर्दी, बाबूजी हमेशा घर के बाहर के खड़े मेरा रास्ता देखते रहते थे, इसलिए उन्हें नहीं देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मुझे रोना आ गया। मैंने पल भर में ही न जाने कितनी सारी बातें सोच लीं और साथ ही ये भी निश्चय कर लिया कि बाबूजी जब तक मुझे मेला दिखाने नहीं ले जाएँगे मैं उनसे बात नहीं करूँगा।

मैं दौड़ता हुआ घर के अंदर गया और माँ से पूछा, "बाबूजी कहाँ हैं?"

माँ कुछ जवाब देती उससे पहले ही मैंने पीठ पर टँगा हुआ बस्ता एक कोने में फेंका और गुस्से से कहा, "वह तो दोपहर में इस समय दुकान से खाना खाने के लिए घर आते हैं, फिर आज क्यों नहीं आए?"

मेरी बात सुनकर माँ रोने लगी। यह देखकर मैं घबरा गया और मैंने डरते हुए पूछा, "माँ, क्या हो गया?"

माँ रोते हुए बोली, "तेरे बाबूजी कुछ दिन के लिए अपने दोस्त के गाँव गए हैं, क्योंकि वहाँ पर किसी की शादी है।"

माँ घरेलू महिला थी और कभी भी घर से बाहर नहीं निकलती थी और बाहर के सारे काम बाबूजी ही करते थे। मैं समझ गया था कि माँ अकेले रहने की बात सोचकर डर गई हैं, इसलिए माँ की बात सुनकर मैंने उनके आँसू पोंछते हुए कहा, "आप बिल्कुल परेशान मत हो। मैं हूँ न। मैं बाहर के सारे काम कर दूँगा वैसे बाबूजी कब तक घर आ जाएँगे?"

माँ ने सूजी हुई लाल आँखें मेरे चेहरे पर टिका दी और रुँधे गले से बोली, "कई दिन लग जाएँगे।" और आँसू पोंछते हुए वापस घर के काम में लग गईं।

मैं जैसे अचानक ही बड़ा हो गया। मैंने सोच लिया कि अब लौकी और करेला बिना नाक मुँह सिकोड़े खाऊँगा और बाहर का सारा काम भी अब मुझे ही करना है और माँ से लड़ाई तो बिल्कुल भी नहीं करनी है। माँ की सारी डाँट एक पन्ने पर लिखकर रखूँगा और बाबूजी के आने पर उन्हें दिखाऊँगा और सारी लड़ाई बाबूजी के सामने ही करूँगा।

लक्षित ने दु:खी होते हुए कहा, "पर दादाजी, पापा भी तो ऑफिस के काम से टूर पर जाते हैं, पर मम्मी तो कभी नहीं रोती।"

दादाजी बोले, "बाबूजी पहली बार गाँव से बाहर गए थे न, इसलिए माँ बहुत दु:खी थी।"

"तो फिर क्या आपने बाहर का सारा काम किया?" लक्षित ने उत्सुकता से पूछा।

दादाजी ने डबडबाई आँखों से लक्षित को देखा और बोले, "उसकी नौबत ही नहीं आई। माँ सारा दिन बच्चों की तरह मेरा हाथ पकड़े बैठी रही। दोपहर को घर में खाना ही नहीं बना। रात में माँ ने चावल और सब्जी बनाई। माँ को पता था कि मैं चावल नहीं खाता था, पर मैंने उनसे कुछ नहीं कहा, क्योंकि वह बहुत उदास थी। मैंने किसी तरह से थोड़ा सा चावल और सब्जी खाई पर माँ ने कुछ भी नहीं खाया। न तो वह कुछ बोल रही थी, न ही कोई जवाब दे रही थी। पता नहीं मैं उनको देखता हुआ कब सो गया।

अगली सुबह जब मैं सोकर उठा तो मैंने माँ से पूछा, "जब तक बाबूजी नहीं आते तब तक दुकान में कौन बैठेगा?"

"पड़ोस वाले भैया चले जाएँगे।" माँ ने कहा।

माँ का उतरा चेहरा देखकर मेरी आगे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

मैंने धीरे से माँ से कहा, "मुझे स्कूल जाना है, दूध और रोटी दे दो।"

माँ बोली, "तेरे बाबूजी तो हैं नहीं, दूध कैसे आएगा?"

मैंने कहा, "मैं ले आऊँगा। पैसे दे दो।"

"नहीं-नहीं, तुझे इतनी दूर जाने की कोई जरूरत नहीं है।" माँ ने नीची निगाहें करते हुए कहा।

मुश्किल से चार या पाँच मकान दूरी पर ही गली के कोने पर ही दूध की डेयरी थी। उतनी दूर तक तो मैं अपने दोस्तों के साथ लुका-छिपी और गिल्ली-डंडा खेला करता था।

मैंने आश्चर्य से माँ को देखा पर माँ का चेहरा ऐसा पीला पड़ गया था मानों वह महीनों से बीमार हो इसलिए मैंने कोई जिद नहीं की और थोड़ा बहुत खाकर स्कूल चला गया।

मैं सारे दिन स्कूल में सोचता रहा कि बाबूजी को शादी में नहीं जाना चाहिए था। उन्हें पता भी नहीं कि माँ पर क्या बीत रही है। जब वह आएँगे तो मैं उनके साथ खाना भी नहीं खाऊँगा और मेला देखने भी नहीं जाऊँगा। मैं माँ से नहीं लड़ूँगा अब मैं बाबूजी से लड़ूँगा और उनसे बात भी नहीं करूँगा।"

"तो फिर आप बाबूजी के लौटने पर खूब नाराज हुए होंगे।" लक्षित ने दादाजी की आँखों में झाँकते हुए पूछा।

"उसकी नौबत ही नहीं आई।" दादाजी धीरे से बोले।

"अरे वाह, मतलब आपके बाबूजी पहले ही लौटकर आ गए थे!"

"वह थे ही नहीं जो लौटकर आते।" कहते हुए दादाजी रो पड़े।

लक्षित को कुछ भी समझ नहीं आया।

उसने धीरे से पूछा, "तो क्या बाबूजी शादी वाले गाँव में ही रहने लगे थे?"

दादाजी ने चश्मा उतारा और दोनों हथेलियों से अपने आँसू पोंछते हुए बोले, "माँ को पता चल गया था कि बाबूजी नदी में डूब गए थे। वह अच्छे से तैरना नहीं जानते थे, पर उनके दोस्त उन्हें जबरदस्ती अपने संग लेकर चले गए थे। मुझे बहुत बाद में पता चला था कि माँ और लोगो के साथ पागलों की तरह बाबूजी को नदी के किनारे ढूँढ़ रही थीं। जिन्हें तैरना आता था, उन लोगों ने नदी के बीचोबीच और बहुत गहराई तक भी जाकर बाबूजी को बहुत खोजा, पर बाबूजी कहीं नहीं मिले, क्योंकि उस समय भारी बारिश आने के कारण लोगों को बिना बताए ही आगे के बाँध खोल दिए गए थे। इस वजह से बाबूजी के साथ उनके दोस्त भी पता नहीं बहकर कहाँ चले गए थे।"

"पर आपकी मम्मी ने आपको क्यों नहीं बताया?" कहते हुए लक्षित बुक्का फाड़कर रो पड़ा।

"मेरी वार्षिक परीक्षा शुरू होने वाली थी। माँ जानती थी कि बाबूजी के नहीं रहने का सदमा मैं बरदाश्त नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि मैं परछाईं की तरह बाबूजी के साथ ही लगा रहता था। स्कूल जाने के अलावा, एक पल भी उनसे दूर नहीं रहता था, इसलिए माँ ने सबसे कह दिया था कि बाबूजी के नदी में डूबने की बात मुझे नहीं पता चले। समय बीतने के साथ, धीरे-धीरे मैं समझ गया था कि बाबूजी नहीं रहे।"

"आपकी मम्मी तो बहुत हिम्मती थी।" लक्षित में रुलाई रोकते हुए कहा।

"हाँ, वह बहुत हिम्मती थी। घर में उस समय बिल्कुल पैसे नहीं थे। माँ को पता भी नहीं था कि बाबूजी पैसे कहाँ रखते थे। किसी से पता चला था कि बाबूजी ने कुछ दिन पहले ही दुकान बेचकर सारे पैसे, एक बड़ी दुकान खरीदने के लिए अपने एक दोस्त को दे दिए थे। माँ कई बार उनके दोस्त के पास पैसे माँगने गईं, पर उन्होंने साफ मना कर दिया कि उनके पास कोई पैसे नहीं हैं। माँ ने बहुत रास्ता देखा कि शायद वह कभी आकर थोड़े ही पैसे वापस कर दें, पर हमारे पास कोई भी पैसे लौटाने के लिए नहीं

आया। गाँव में तो सब लोग अपना काम खुद ही कर लेते थे, इसलिए माँ के स्वादिष्ट अचारों को भी कोई खरीदने को तैयार नहीं होता और माँ भरी दुपहरी में बड़े-बड़े डिब्बे, कंधे पर टाँगे हुए मीलों पैदल चलती रहती।

मैं और माँ एक दूसरे से छिप-छिपकर रोते। माँ एक समय खाना खाती पर उन्होंने मेरी पढ़ाई नहीं छूटने दी। माँ ने गेहूँ खरीदना बंद कर दिया। जो मोटे दानों वाला चावल पड़ोसी अपने कुत्तों और पक्षियों को खिलाने के लिए लाते थे, माँ कुछ पैसे में वह चावल उनसे ही खरीद लाती थी।

पर जब भी वह स्कूल में फीस जमा करने जाती तो उन्हें पता चलता कि मेरी फीस किसी ने पहले ही भर दी है। पूरा साल निकल गया, पर माँ से किसी ने फीस नहीं ली।

दादाजी कुछ पल ठहर कर भरे गले से बोले, "पर हम दोनों ने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। कभी किसी को नहीं बताया कि हम लोग दाने-दाने को मोहताज हो रहे हैं। एक दिन माँ स्कूल में जाकर हेड मास्टर साहब के सामने रोते हुए बोली कि एक बार मुझे उस देवता के दर्शन करा दीजिए, जो चुपचाप मेरे बेटे की फीस भर रहा है। हेड मास्टर साहब को मेरी माँ पर दया आ गई और उन्होंने हमारे मास्टरजी को बुलाया और कहा, "यह आपके बच्चे की किताबों और फीस के पैसे देते हैं।"

मेरी बेबस और मजबूर माँ तुरंत मास्टरजी के पैरों पर गिर पड़ी। सकपकाए से मास्टरजी ने न जाने कितनी देर उन्हें उठाने की कोशिश की और उन्हें चुप करते हुए खुद भी रोने लगे। मैं भी रोने लगा। मास्टरजी ने मेरा हाथ मजबूती से पकड़ते हुए मुझे अपने गले से लगा लिया। हम तीनों में से किसी ने भी एक शब्द भी नहीं कहा, पर मुझे समझ में आ गया था कि मुझे बहुत पढ़ना है, बहुत मेहनत करनी है और मास्टरजी की तरह ही बनना है। जिंदगी की आपाधापी में जब भी मैं यह बात भूल जाता हूँ तो सामने दीवार पर लगी माँ और मास्टरजी की तसवीर देख लेता हूँ और जहाँ तक बन पड़े सबकी मदद करता हूँ। आज कुछ बच्चों में मुझे मेरा बचपन दिखा, इसलिए मैंने कुछ अध्यापकों के साथ मिलकर सभी बच्चों को बिना पैसे के पढ़ाने का निश्चय किया है, क्योंकि उनमें बहुत सारे बच्चे ऐसे हैं, जो हमें आकर नहीं बताते हैं कि उन्हें हमारी सहायता चाहिए, उनका आत्मसम्मान उन्हें यह बताने नहीं देता, पर इसका मतलब यह नहीं कि हम उन्हें देखकर अपनी आँखें बंद कर लें।

दादाजी ने यह कहते हुए लक्षित का हाथ पकड़ लिया।

"मुझे माफ कर दीजिए, दादाजी।" कहते हुए लक्षित दादाजी के गले लगकर जोरों से रो पड़ा।

दादाजी मुसकरा उठे। उन्हें पता चल गया कि उनके नहीं रहने के बाद लक्षित औरों की मदद करते हुए उन्हीं की तरह बनेगा।

परदे के पीछे खड़ी लक्षित की मम्मी भी अपने आँसू पोंछते हुए मास्टरजी की तसवीर के आगे हाथ जोड़े खड़ी हुई थीं।

क्वार्टर नंबर डी-१४३३
इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड
रिफाइनरी टाउनशिप विलेज ऐंड पोस्ट-बहोली
पानीपत-१३२१४० (हरियाणा)
दूरभाष : ९६१६७९७१३८

कविता

पुत्री–सीता, जीजा, लक्ष्मीबाई

• प्रीति कच्छल

पुत्री बहन भतीजी पोती,
सब रिश्तों को निभाती है
कैसे शिक्षित संस्कारित होती,
विवाह-योग्य हो जाती है॥

नव-रिश्ते मिले, विवाह बंधन से,
अब वह पत्नी, बहू, भाभी है।
माँ बनकर वह पुष्प खिलाती,
देश को सोना उगलती है॥

पूछो उससे जीवन कैसा,
आँखों के आँसू पी जाती है।
निर्भीकता से उत्तर देती,
सबको सुख पहुँचाती है॥

सबला होकर अबला समझती,
क्या यही आधुनिक वेला है?
मानव ही मानव का दुश्मन बन,
उन्नति-रत्न-स्वप्न देख बैठा है॥

आओ, भारत की पुत्री आगे,
शक्ति अलख जगा जाओ।
सीता, जीजा, लक्ष्मीबाई बन,
सच्चरित्र दीप जला जाओ॥

निर्भीक बने, स्वाधीन बने,
बस यही एक तमन्ना आज।
शक्ति-वर्धक हे मातृ-पितृ अब,
सबला भाव जगा दो आज॥

व्यवसाय से सनदी लेखाकार (प्रैक्टिसिंग चार्टर्ड अकाउंटेंट), टैक्स गुरु पोर्टल पर कविताएँ व लेख प्रकाशित, इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया की पत्रिका में कविताएँ प्रकाशित, आकाशवाणी दिल्ली में कविता वाचक, विभिन्न विषयों पर अनायास ही लिखने वाली कविताओं की रचयिता।

२१२, विज्ञापन लोक सोसाइटी,
मयूर विहार एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९३५००४००००

तूफान की संभावना

• इंदिरा मोहन

सुपरिचित रचनाकार। अब तक 'पेड़ छनी परछाइयाँ', 'पीछे खड़ी सुहानी भोर' (गीत-संग्रह), 'कहाँ है कैलास' (मुक्त छंद-संग्रह), 'धरती रहती नहीं उदास' (गीत-संग्रह), 'योगवसिष्ठ अनुशीलन' ग्रंथ चर्चित। कई साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित-पुरस्कृत।

वक्त की जय

हालात बस में हो रहे
बदलाव ही है तय शुदा
कुछ वक्त को ही कोसते
कुछ वक्त को सच कह रहे।

तट मौन लहरें गिन रहे
कल था यहाँ जल है वहाँ
तूफान की संभावना
विश्राम का अवसर कहाँ

संयम अकेले लड़ रहा
ठहराव में ही गति छिपी
उन्माद को खुद कोसते
उन्माद को कुछ सह रहे।

अपनी व्यथा लगती भली
घर-घाट बँटने का चलन
सबकी कहानी एक सी
अनुवाद करती है पवन

सौहार्द के अंकुर उगे
मरुभूमि में बरसात हो
संवाद को कुछ कोसते
संवाद संग कुछ वह रहे।

अनुबंध कर लें धूप से
छाया सदा भाती नहीं
आकाश सबको प्रिय लगे
ऋतुराज के साथी सभी

नव चरण युग का है शुरू
गति लय-विलय सब साथ है
कुछ वक्त से नाराज हैं
कुछ वक्त की जय कह रहे।

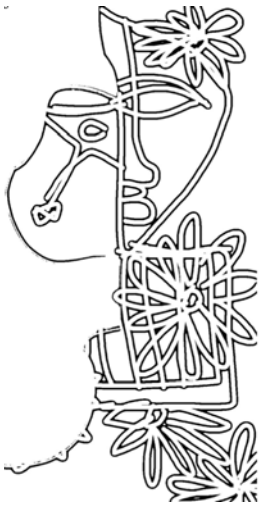

मौन रहकर बोलता है

चपल चंचल
लहर सा मन
नित नए भ्रम जाल रचता
किंतु कुछ है जो सदा ही
मौन रहकर बोलता है।

तुम सुनो या मत सुनो बस
गूँजती उसकी तरंगें
व्यवस्था है स्वार्थ जनमी
विमल है उसकी सुरंगें

बिचरते क्षण
बदलते कण
सतत गतिमय चाल अविकल
लाँघकर सीमा समय की
काल के पल तौलता है।

तुम बनाते योजनाएँ
दृश्य फल की कामनाएँ
सत्य से लेना न देना
बदलते युग धारणाएँ

जटिल छल-बल
विकल भू-तल
लोकहित संकल्प शिव का
आसुरी उन्माद हरने
भीतरी पट खोलता है।

६०९-बी, मैगनोलिया
डी.एल.एफ. फेज-५,
गुरुग्राम-१२२००९ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८११५०४३६४

उर्वीजी की लेखनी लिखती निशि-दिन राम

● **बालस्वरूप राही**

जिस प्रकार उर्दू में ग़ज़ल, अंग्रेजी में सॉनेट अत्यधिक लोकप्रिय काव्य-विधाएँ रही हैं, उसी प्रकार बलिक उससे भी कहीं अधिक, हिंदी में दोहों का बोलबाला रहा है। जहाँ तक उर्दू ग़ज़ल का सवाल है, कुछ शेर तो लोगों की बातचीत का हिस्सा बन गए। ऐसे ही कुछ शेर पेश हैं—

पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा हाल हमारा जाने है,
जाने न जाने, गुल ही न जाने, बाग तो सारा जाने है।

सिरहाने मीर के आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

जो भी आवे है तेरे पास ही आ बैठे है,
हम कहाँ तक तेरे पहलू से सरकते जाएँ!

—मीर तकी मीर

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नजर नहीं आती।

जैसे दूध में शक्कर। अनेक दोहे लोगों को कंठस्थ हो गए,

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक,
कौन जीता है तेरी जुलफ के सर होने तक?

—गालिब

इस तरह के लोकप्रिय शेरों की एक लंबी फेहरिस्त है। जहाँ तक दोहों का प्रश्न है, दोहे तो बेमिसाल बन गए, जिंदगी की मशाल बन गए। कबीर, तुलसीदास, रहीम और बिहारी के दोहे तो दिनचर्या में ऐसे घुल-मिल गए, उनके प्रेरणास्रोत बन गए। देखिए कुछ दोहे जो जन-जीवन में घुल-मिल गए—

साधु तो ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाए।
सार-सार को गहि रहै थोता देहि उड़ाए॥

जाको राखे साईंया मार सके न कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥

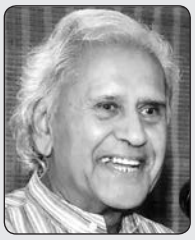

सुपरिचित बहुमुखी साहित्यकार। गीत, ग़ज़ल, मुक्तछंद लगभग सभी विधाओं में निष्णात। हिंदी के प्रथम ऑपेरा 'राग-बिराग' के रचनाकार। केंद्रीय हिंदी संस्थान के सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित।

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

—कबीर

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून॥

—रहीम

राम नाम मनि दीप धरु जीह, देहरी-द्वार।
तुलसी भीतर-बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥

—तुलसी

आज के दौर में भी अनेक कवि दोहों के प्रवाह में बह रहे हैं—

मैंने कर दी जिंदगी, अब औरों के नाम।
सुख-दुख झेलें रात-दिन, अब अपने श्रीराम॥

—डॉ. देवेंद्र आर्य

हर्ष का विषय है कि प्रतिभावान कवयित्री उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' विलक्षण दोहों का एक अद्वितीय संकलन 'मैं शबरी हूँ राम की' लेकर आई हैं, जो अपने आप में बेमिसाल है। बेमिसाल इसलिए भी, क्योंकि यह व्यक्तिविशेष पर आधृत है और इसमें एक अनन्य नारी 'शबरी' को मार्मिक रूप में पेश किया गया है। संग्रह के भूमिका लेखक डॉ. रामनिवास यादव ने उल्लेख किया है कि इस संग्रह से पहले डॉ. रतनचंद शर्मा ने शबरी पर खंडकाव्य लिखा था। परंतु 'उर्वी' का यह दोहा-संग्रह तो अपूर्व है। उन्होंने ये दोहे इतनी तन्मयता से लिखे हैं कि पाठक के

मन-मस्तिष्क पर छा जाते हैं। दोहे पढ़ते समय बार-बार ऐसा लगता है जैसे उर्वीजी शबरी पर दोहे लिखते-लिखते स्वयं शबरी बन गई हैं। एक-एक दोहा अनुभूति से इतना आप्लावित है कि शबरी पाठक के सामने आ खड़ी होती है। दोहों की एक-एक पंक्ति पाठक को झकझोर देती है। मैं तो यह कहूँगा—

शबरी से ऐसा जुड़ा उर्वी का संबंध।
हर दोहे में बस गई शबरी की ही गंध॥

शबरी की व्याकुलता से उर्वी का यह अद्‌भुत साधारणीकरण राम की असाधारण घटना है। आइए, जरा हम भी शबरी से जान-पहचान बना लें।

उषा काल में पंपासर के तट पर महर्षि मतंग ने उपदेश देते हुए कहा कि जाति-कुल की बाधा से यह धर्म सदा मुक्त है। भील जाति की एक नारी शबरी मुनि के ये वचन सुनकर अभिभूत हो गई और महर्षि मतंग के चरण चिह्नों पर लौटने लगी। उसने वृक्ष की ओट से ऋषि के समस्त उपदेश-आदेश सुन लिये थे। शबरी का मन बचपन से ही बेचैन रहता था। वह आजीविका के लिए पशु-पक्षियों का वध देखकर तड़प उठती थी। वह इस बात से बड़ी डरती थी कि पक्षियों का वध ही उसकी जाति के परिवारों का रोजगार है। उसका विवाह जिस युवक से तय हुआ, वह एक बाण से दो-दो पक्षियों को मार देता था। शबरी अवसादग्रस्त होकर घर से निकल गई और अपने जीवन अपनी तरह से जंगल में जीने लगी। उसने कसम खा ली कि मैं विवाह नहीं करूँगी और आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर प्रभु-भजन करूँगी। वह अस्पृश्या मानी जाती थी। उसने ऋषियों के आश्रम से दूर अपनी कोठरिया बना ली। वह ऋषियों की कुटियों के आस-पास पगडंडियाँ बुहारकर फूल छिड़क देती थी। मतंग ऋषि ने ही उसे बताया कि दशरथनंदन भगवान् श्रीराम यहाँ आनेवाले हैं, तू उनके दर्शन करेगी तो तेरी साधना पूरी हो जाएगी। बस, तभी से वह श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा में लीन हो गई और उनके लिए बेर चख-चखकर सँजोने लगी। उसका एक-एक क्षण राम की प्रतीक्षा में बीतने लगा। वह हर समय प्रतीक्षाकुल रहती थी। यही आकुलता 'मैं शबरी हूँ राम की' के एक-एक दोहे में व्याप्त है। उर्वीजी ने शबरी की आकुलता इन दोहों में इतनी अंतरंगता के साथ बखानी है कि लगता है, शबरी की व्याकुलता उनके रोम-रोम में बस गई है। परिणामत: इस संग्रह के सभी दोहों में ऐसी व्यग्रता समाई है कि घोर प्रतीक्षा में भावविभोर हो रही है। स्वयं उर्वी भी अपने आत्मकथ्य में लिखती हैं—"वास्तव में ये दोहे लिखना मेरे लिए तभी संभव हो पाया, जब मैंने स्वयं को एक शबरी के रूप में ढालने का प्रयास किया और अपनी दिनचर्या में शामिल किया तथा जैसे-जैसे मैं शबरी में ढलती गई, यह काव्य-यात्रा प्रारंभ हो गई और आज एक पुस्तक रूप में आपके सामने है।"

वह बताती हैं, "इसके लेखन में मैंने स्वयं भी एक शबरी के रूप में जीने का प्रयास किया और सोचा कि वह भी एक शबरी थी तो क्या मैं भी एक शबरी हूँ!"

उर्वी का शबरी से यह तादात्म्य ही 'मैं शबरी हूँ राम की' का सर्वाधिक प्रभावकारी पक्ष है। वैसे तो उर्वी एक बहुमुखी कवयित्री हैं। वह मात्र एक विलक्षण दोहा-संग्रह ही नहीं, वह अब तक एक हजार कविताओं के साथ ही पाँच सौ ग़ज़लों का सृजन कर चुकी हैं। उनकी ग़ज़लें मैंने शौक से पढ़ी हैं और पाया है कि वह ग़ज़ल लिखने में माहिर हैं। 'मैं शबरी हूँ राम की' के अनेक दोहे इतने भावुकतापूर्ण हैं कि पाठक के दिल-दिमाग पर छा सकते हैं। ये दोहे मुझे विशेष रूप से बहुत पसंद आए हैं—

साँसों के संग वह सदा, जपती रहती नाम।
हर आहट पर देखती, शायद आए राम।।

तेरे कारण रामजी, नहीं रही मैं आम।
शबरी जैसा दूसरा, नहीं मिलेगा नाम।।

काँटों से वह पूछ कर, चुनती थी हर फूल।
यही देखकर भक्ति से झुकते रहे बबूल।।

कितने अचरज से भरा, शबरी का यह काम।
बेरों पर लिखती रही, दाँतों से वह राम।।

जब से जाना राम हैं, अंदर ही मौजूद।
फूलों सा हल्का हुआ, शबरी देख वजूद।।

सर झुकने से कब मिले, हसबोले तू जान।
मन झुकता है जब कभी, मिलते भगवान।।

राधव तेरे नाम में, जाती हूँ मैं डूब।
आप खड़े वटवृक्ष से, शबरी केवल दूब।।

'मैं शबरी हूँ राम की' दोहा-संग्रह में कुछ ऐसे दोहे भी दिए गए हैं, जो इस कथा को आज की सभ्यता से भी जोड़ देते हैं। देखिए यह दोहा—

अब तो तारो रामजी, शबरी को उस पार।
मेरा चेहरा भी पढ़ो, यह ताजा अखबार।।

एक रोमांचक कल्पना देखिए—

पंछी सोता शाख पर, ढाने हैं भगवान।
काहे शबरी है लगी, चिंता फिर नादान।।

शबरी कहती है—

करती हूँ सत्संग मैं, और न दूजा काम।
उर्वी मेरी लेखनी, लिखती निशि-दिन राम।।

मुझे पूरा विश्वास है कि उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' का यह अद्‌भुत दोहा-संकलन काव्य-प्रेमियों का मन मोह लेगा और लोकप्रियता की चरम सीमा छुएगा।

साअ

डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल,
मॉडल टाउन, दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

माटी-चंदन-सोना

● विनम्र सेन सिंह

गाँव के खेतों और खलिहानों में सिर्फ झलकती वह सूरज की पहली किरण कितनी मनोहारी और आकर्षक होती यह कितनों को पता है। आजकल देश में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से नगरागमन काफी तेजी से हो रहा है, अब न तो हमारे पास संस्कृति बची न सभ्यता बची, न प्रेम बचा न परिवार, अगर कुछ शेष है तो वह कुंठा और संत्रास परिवार तेजी से विघटित हो रहे हैं। अब तो संयुक्त परिवार केवल किस्से और कहानियों में ही पाए जाते इस सूक्ष्म परिवार का यह बढ़ता प्रचलन हमें नगरों की ओर जाने को प्रेरित करता है। गाँव की खुशहाली और हरियाली को छोड़कर नगर के तनाव भरे प्रदूषित और बहुत ही कावादी अट्टालिकाओं में प्रवेश करना लोगों को इतना भा रहा है की ये लोग अब ताबीर और तसवीर को भी बदलने में हिचकिचाते नहीं।

यदि किसी कृषि प्रधान देश में उस देश के देशवासी गाँवों से शहरों में पलायित हो रहे हो वह भी तेजी से तो उस देश का भविष्य तय करना मेरे बस की बात नहीं। दिन-रात चट्टी-चौराहों पर पान और चाय की दुकानों पर सरकार को महँगाई पर कोसने वाले लोग इतनी छोटी सी बात क्यों नहीं समझ पाते पर शायद इसमें कमी सरकार की भी है। आजादी के ६५ वर्ष बाद भी इस देश की सरकार गाँव में आम आदमी की आम जरूरतों की पूर्ति करने में उनकी मौलिक आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की भी पूर्ति करने में असफल रही है। हालात दिन पर दिन बदतर होते जा रहे हैं, परंतु इसमें कमी किसकी है, क्या इस पर कभी विचार हुआ? हाँ, हुआ पर शायद निर्णय पहले हो जाता है। चिंतन का ढोंग बाद में वास्तव में सारी कठिनाइयों कि जब हम स्वयं है भारत वर्ष का व्यक्ति अति भाग्यवादी होता है उसे तनिक भी अपने कर्म और अपने पौरुष पर विश्वास नहीं है। भैया तो भगवान् भरोसे अपनी जिंदगी काट रहा है या फिर सरकार भरोसे इस देश की आधी आबादी युवकों और नौजवानों की है। वह देश अगर इस प्रकार की दृष्टि रखें तो यह अत्यंत चिंता का विषय पर क्या करें यह इस देश का सत्य है चिंता तो इस बात की है कि जो हुआ सो हुआ आगे भी देश की मानसिकता मैं बदलाव होता दिखाई नहीं पड़ रहा। वहीं सरकार को कोसने की आदत व्यवस्था पर तंज कसना दूसरों में कमियाँ झाँकना वाहर भारत कब सुधरेगा। यह देश हम भूल कैसे सकते हैं कि हम उस देश के निवासी हैं, जहाँ राम ने जन्म लिया वह राम जो राजपुत्र होते हुए भी जनता में एक आदर्श प्रस्तुत करने हेतु और समाज कल्याण की मंशा से १४ वर्ष का वनवास काटे

सुपरिचित लेखक। पत्र-पत्रिकाओं में आलोचना, कविता, ललित-निबंध एवं कहानी प्रकाशित। विगत २०१८ से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में सहायक आचार्य पद पर कार्यरत।

वह चाहते हैं तो माता कैकेयी को मनाकर अपना वनगमन टाल सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया भारत के लाख मान मनौवल के बाद भी वह नहीं रुके क्यों की उन्हें मालूम था कि अगर उन्होंने ऐसा किया तो उनका आदर्श चरित्र धूमिल होगा। हम उस महान् शंकराचार्य के वंशज हैं, जिन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष का को अपने कदमों से नापा और भारत की अखंडता का संदेश दिया हम विवेकानंद के मानने वाले हैं, जिन्होंने विश्व को ज्ञान दिया, हम अपनी उन घाटी को क्यों भूल गए, क्यों भूल गए हम गीता के श्लोकों, जिसमें श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन से की हे अर्जुन! कर्म करो, फल की इच्छा मत करो। हम आक्रमण होते जा रहे हैं और अपनी कमियों का ठीकरा सरकार और व्यवस्था पर छोड़ते हैं।

भारत भूमि कोई भौगोलिक संरचना नहीं है। भारत की उत्पत्ति का कारण भी कोई भौगोलिक और वैज्ञानिक घटना नहीं है। भारत को महान् ऋषियों ने अपने तब और जब से निर्मित किया पता विश्व भर में इसका एक विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि लाखों-करोड़ों साल पुरानी यहाँ की संस्कृति सारस्वत चली आ रही है। क्या आज वही रूम है, जो ५०० वर्षों पूर्व था, वहीं मिस्र आज भी है क्या, जो १००० वर्ष पूर्व था, सभी अपनी पुरानी संस्कृति को छोड़कर नई संस्कृति धारण कर चुके हैं इसलिए हमने कुछ तो है, जो विशेष जो हमें अब तक अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता का संरक्षण करने में सफल बनाए रखा है, पर आज जब हम २१वीं शताब्दी में जीवन जी रहे हैं तो हमारे सामने यह एक प्रमुख चुनौती है कि किस प्रकार हम अपनी संस्कृति और सभ्यता पर हो रहे। आक्रमण से खुद को बचाएँ पाश्चात्य सभ्यता मानो अफीम के नशे के सामान हमारे समाज को अपने आगोश में ले रही है और हमें अपने मूल से भटकाने की फिराक में है। हमें इससे बचना होगा हमें यह ज्ञान करना होगा कि पूरा भी उदय का केंद्र है और जो पश्चिम की ओर जाएगा, उसका वही हाल होगा कि जो सूर्य का होता जब तक वह पूर्व में रहता है तो पूज होता उदित है, परंतु ज्यों ही पश्चिम में जाता है, वह गहरे आसमान में डूब जाता। हमें यार

निर्णय करना होगा कि हम उगना चाहते हैं कि डूबना चाहते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कहा कि 'स्वर्णमयी लंका ना मे लक्ष्मण रोचते जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' हमारी तो जन्मभूमि सोने की है। जितनी उर्वरता और सहजता माँ भारती में है, उतनी शायद ही किसी देश की मिट्टी में हो इस देश की मिट्टी में जनमे ऋषियों-महर्षियों ने विश्व को अपने ज्ञान से प्रकाशित किया वीर सपूतों की जननी यह धरती महान् है। आज भी और हजारों-लाखों वर्ष पूर्व विश्व हमारी ओर लालच भरी आँखों से देखता पर हम क्या करते यह भी एक चिंता का विषय है, हम न तो अपनी धरती से मुँह है न अपनी मिट्टी से मोह है। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता से हम दिन-पे-दिन स्वार्थी होते जा रहे। विद्यार्थी पढ़ता नहीं है, शिक्षक पढ़ाता नहीं है, चिकित्सक चिकित्सा नहीं करता, अधिकारी अपने दायित्व का निर्वाह नहीं करता और नेता सेवा भाव नहीं रखता यहाँ आप कोई भी अपना काम ईमानदारी से नहीं करता और सब अपना दोष दूसरे के मत्थे पर चढ़ते चले जाते। सरकार इतने विद्यार्थियों को अध्ययन की सुविधा देती, पर जब पढ़-लिखकर तैयार होते है तो विदेश जाना पसंद करते हैं, क्योंकि उन्हें वहाँ ज्यादा मानदेय प्राप्त कोई व्यवसायी अपना व्यापार देश में जब भरपूर फैला लेता है तो विदेश जाकर वहाँ की जनता को लाभान्वित करता है, ऐसा क्यों है, क्योंकि हमें अपने देश से प्यार नहीं हम अपने देश से जो हमारा भावनात्मक लगाव था वो हम खोते जा रहे हैं। यही कारण है कि हम केवल और केवल अपने विकास के बारे में सोच रहा हूँ देश जाए भाड़ में जब हम सामान्य जनता में शुमार रहते हैं तो हमें जनता और आम आदमी की सारी कठिनाइयों की चिंता होती, क्योंकि हम भी उन्हीं में से एक है, परंतु जब ये इंक्रीज तीन प्रकरण थोड़ा विशिष्ट हो जाते हैं तो उन सारी समस्याओं को भूल जाते हैं उनके बारे में कुछ करने की हमें सुध नहीं रहती। दिन पर हम कभी रोज प्रवचन दिया करते थे, यह हमारे स्वार्थ की पराकाष्ठा ही तो है।

मैं कोई शंकराचार्य, विवेकानंद या अरस्तू और सुकरात नहीं, पर मेरी छोटी समझ से यदि इन समस्याओं की जड़ है तो हमारा हमारी मिट्टी से खत्म होता भावनात्मक रिश्ता। उसके प्रति प्रेम। जिस प्रकार मानवीय प्रेम में कुरूप-से-कुरूप स्त्री भी पुरुष को प्रेम में अप्सरा नजर आती है, कुरूप-से-कुरूप बालक भी उसकी माता को सुंदर प्रतीत होता है, उसी प्रकार यदि हमें अपनी मिट्टी से प्रेम हो तो हमें वह भी सुंदर दिखेगी और हमारा देश तो पहले से ही इतना सुंदर है। जिस देश के माथे पर हिमालय का धवल मुकुट, ललाट पर कश्मीर के कुमकुम-केसर का तिलक, सागर जिसके चरण पखारता हो, ऐसे देश की विविधता और भव्यता का क्या कहना! इसलिए जरूरी है कि हम अपनी मिट्टी से प्रेम करें अपने देश को प्रेम करें, तब जाकर इसकी मिट्टी में हमें चंदन की सुगंध महसूस होगी और सोने सा आकर्षण दिखाई देगा।

साअ
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
दूरभाष : ९४५५९३५५५५
drvinamrasensingh@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

हिंदी विश्व के कुशल चितेरे सरस्वती साधक : रामदरश मिश्र

● ओम निश्चल

यह संयोग भर नहीं है कि के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा भारतीय भाषाओं के लिए दिया जाने वाला २०२१ का 'सरस्वती सम्मान' हिंदी के जाने-माने कवि, कथाकार, उपन्यासकार, गद्यकार, आलोचक प्रो. रामदरश मिश्र को उनकी काव्य कृति 'मैं तो यहाँ हूँ' पर दिया गया है। वे बीते सात दशकों से भी अधिक समय से साहित्य की सारस्वत साधना में लगे हुए हैं, जिनके हर रचना की पहली पाठिका उनकी सहधर्मिणी सरस्वतीजी होती हैं। अब जब उनकी झोली में साहित्य का सर्वोच्च 'सरस्वती सम्मान' आ गिरा है, वे दो-दो सरस्वतियों के साधक बन गए हैं। याद रहे १०९२ से स्थापित सरस्वती सम्मान पाने वाले हरिवंश राय बच्चन व गोविंद मिश्र के बाद वे तीसरे साहित्यकार हैं। बीते सालों में पुरस्कार को लेकर जो दुरभिसंधियाँ और मुहिम रची जाती रही हैं, उसके कारण कई योग्य साहित्यकार प्रतिष्ठित पुरस्कारों से वंचित रहे और एक या एकाधिक कृतियाँ लिखने वाले पुरस्कार ले जाते रहे। यह और बात है कि दुनिया भर की भाषाओं में अनेक साहित्यकार ऐसे हुए हैं, जिन्होंने जीवन की एक तिहाई उम्र में ही अपना सर्वश्रेष्ठ रच दिया, जिसका लोहा आज पूरी दुनिया मानती है, किंतु साहित्य साधना एक लंबा जीवन माँगती है और रामदरशजी ने लगभग एक सदी का जीवन साहित्य रचना को दिया है।

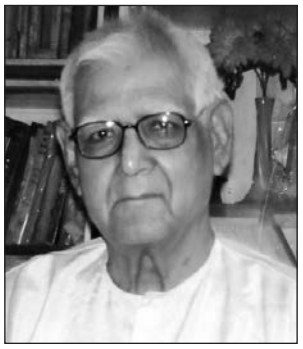

व्यक्तित्व : उदात्त और समावेशी

कोई कितना बड़ा साहित्यकार हो पर उसका स्वभाव और व्यक्तित्व यदि उदात्त और समावेशी नही है तो वह समाज में समादृत नहीं हो सकता। हिंदी के विराट परिमंडल में कितने ऐसे साहित्यकार हैं, जिनके लेखन के साथ उनकी सादगी, उनके चरित्र, उनके व्यक्तित्व की खूबियों की आज भी चर्चा होती है। सोचिए, हिंदी के निर्माता लेखकों में कैसे रहे होंगे भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमघन, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, शिवपूजन सहाय, बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शिव प्रसाद सिंह, विष्णु प्रभाकर, विद्यानिवास मिश्र व ठाकुर प्रसाद सिंह जैसे लेखक, जिनकी चर्चा होते ही हमारे मन में एक सात्त्विक सी छवि उभर उठती है। ऐसी ही विरल विभूतियों में रामदरश मिश्र का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे इसलिए एक बड़े लेखक नहीं हैं कि उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, गद्य विधाओं में लगभग अस्सी से ज्यादा कृतियाँ लिखी हैं, बल्कि इसलिए बड़े हैं कि बड़े लेखक होकर भी उनके साथ कोई लेखक अपने को छोटा नहीं महसूस करता। अभी हाल ही में हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री विभूति मिश्र ने सम्मेलन की ओर से रामदरश मिश्रजी को सम्मानित किया। स्वास्थ्य की शिथिलतावश रामदरशजी सम्मेलन के द्वारा निर्धारित कार्यक्रम में शामिल नहीं हो सके तो वे सम्मेलन के प्रतिनिधियों के साथ स्वयं रामदरशजी के घर पधारे और उन्हें शॉल-श्रीफल एवं सम्मान राशि से सम्मानित किया।

रामदरश मिश्र को देखकर हर बार लगता है कि हम गांधी के देश के किसी बड़े लेखक से मिल रहे हैं, जिसका खुद का जीवन गांधीवादी है, समाजवादी है। उनसे मेरा कितनी ही बार मिलना हुआ है। पास रहने के कारण जब तब उनके साथ बैठकी संपन्न हो जाती है, पर हर बार उनसे मुलाकात में यही लगता है उनसे पहली बार मिला हूँ। वही ताजगी, वही उत्साह, वही मेहमाननवाजी। वे और उनकी धर्मपत्नी सरस्वती मिश्र दोनों मिलकर सान्निध्य को बहुत ही आत्मीय बना देते हैं। रामदरशजी के पास जरा सी देर बैठिए तो संस्मरण के लच्छे-दर-लच्छे निकलते चले जाएँगे। जिसने लगभग जीवन के आठ दशक सक्रिय साहित्यचर्या में बिताए हों, जो अरसे तक गुजरात, बनारस व दिल्ली रहा हो, जो देश-विदेश तमाम जगहों पर साहित्य के अनेक समारोहों में आता-जाता रहा हो, उसके पास अनुभवों की एक बड़ी विरासत होगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

कहते हैं, सारे सम्मान मिल जाएँ, पर किसी लेखक को साहित्य अकादमी का पुरस्कार न मिले तो शायद कहीं कुछ अधूरापन सा रहता है। विडंबना देखिए कि हिंदी के विराट् संसार में इतने सारे लेखक हर साल पुरस्कार के लिए योग्यता रखते हैं, पर मिलता किसी एक को है। दूसरी तरफ कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिनके पास पर्याप्त लेखक ही नहीं हैं; जो हैं भी, वे उस स्तर के नहीं हैं कि उन्हें हम हिंदी के कमलेश्वर, नामवर सिंह या रामदरश मिश्र के सम्मुख रख सकें। तो भी वे पुरस्कृत होते हैं। इन्हीं कारणों से आज भी हिंदी में तमाम ऐसे लेखक हैं, जिन्हें बहुत पहले यह पुरस्कार मिल जाना चाहिए था, पर वे अभी तक इससे वंचित हैं। रामदरश मिश्रजी को यह पुरस्कार ९२ साल की अवस्था में मिला। इसे ही गुणीजन 'देर आयद दुरुस्त आयद' कहा करते हैं। पर यहाँ यह मुहावरा भी फिट नहीं होता। पुरस्कार संस्थानों में विचारधाराओं का दबाव इतना ज्यादा रहा

है कि साहित्य के श्रेष्ठ मूल्यों वाले रचनाकारों की तरफ निगाह ही नहीं जाती। फलत: किसी खास विचारधारा के अनुगामी साहित्यकार को यदि पुरस्कार मिलता भी है तो यह बात जगजाहिर हो उठती है। जहाँ साहित्य अकादमी पुरस्कार रामदरश मिश्र से आधी से भी कम उम्र के लेखक को दिया गया हो, किसी को केवल पहली या दूसरी ही कृति के लिए ही यह पुरस्कार मिल गया हो तो लगता है, साहित्य किसी साधना की फलश्रुति नहीं, यह पुरस्कारों की सिद्धि पर आधारित है। इस संबंध में यही हुआ है कि अपने बड़े समकालीन रचनाकारों के बीच समादृत और बहुप्रशंसित होते हुए भी रामदरश मिश्र को अकादमी पुरस्कार के लिए बरसों प्रतीक्षा करनी पड़ी और यह प्रतीक्षा तब करनी पड़ी जब चयन मंडल में उनके ही सुधी मित्र लेखक कवि आलोचक रहे हैं।

सरलता उनके व्यक्तित्व की कुंजी है। उनकी खिली-खुली मुसकराहट उनके भीतर के जीवंत रचनाकार का विज्ञापन लगती है। उन्हें देखकर लगता है कि लेखक को कैसा होना चाहिए। दिल्ली में सुदूर उत्तम नगर आना कोई सहज नहीं; पर यह रामदरशजी की उदारता व स्नेह है, इसीलिए उनसे मिलने दूर-दराज से आज भी लोग आते रहते हैं। वे हर मुलाकात में पुस्तक के किसी नए अध्याय की तरह खुलते हैं। स्मृति के नए वातायन से झाँकते हुए। लेखकों की एक बड़ी दुनिया से गुजरकर पाया कि जो जितना बड़ा लेखक है, वह उतना ही विनयी और संस्कारी है। लखनऊ में सूचना विभाग में ठाकुरप्रसाद सिंह को देखा, उनके साथ काम किया। कैसे-कैसे गीत, कैसा भावुक लिरिकल मन। वहीं गिरधर गोपाल थे, 'चाँदनी और चूनर' उपन्यास वाले। कितने ललित गीत लिखा करते थे।

इतने पास अपने

मेरा सौभाग्य कि इतने निकट वे रहते हैं तो उनसे क्यों न बार-बार मिलना हो। पिछले ही दिनों एक शाम उनसे मुख्तसर सी भेंट हुई। चर्चा चली तो उन्होंने पूछा 'आजकल' का अंक देखा क्या आपने ओमजी? मैंने कहा, नहीं तो। उन्होंने कहा उसका केदारनाथ सिंह पर अंक आया है, अच्छा है और दिखाने लगे उसे। देखा, राकेश रेणु ने बहुत करीने से अंक निकाला है और अनेक विद्वान् लेखकों से उनका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करवाया है। केदारजी पर बात चली तो मैंने कहा केदारजी को लेकर गाँव की चर्चा होती है, पर उनकी कविता में गाँव उनके अपने क्राफ्ट और कला की शर्तों पर ही आता है। बिंबों के रूप में। वह गाँव प्रेमचंद, नागार्जुन, विवेकी राय जैसा यथार्थवादी गाँव नहीं है। एक झीना कलावाद भी वहाँ दिखता है। पर हम उनकी कविताओं—माँझी का पुल, टमाटर बेचने वाली बुढ़िया व झुम्मन मियाँ, नूर मियाँ और कुछ किरदारों को लेकर लिखी कविताओं की आधुनिक संवेदना में गाँव व वहाँ के लोगों के प्रति उनकी आत्मीयता से प्रतिकृत होते हैं। हालाँकि यह गाँव उनकी आधुनिकता से मुठभेड़ करता हुआ लगता है। मैंने पाया कि केदारजी को लेकर रामदरशजी बहुत आत्मीय हो उठे हैं। उन्होंने याद करते हुए बताया कि केदारजी को मेरा संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' बहुत प्रिय था। कहने लगे, "बहुत दिनों बाद ऐसी ताजगी कविता में देखने में आई है, मैं लिखूँगा इस पर।" पर वे लिख नहीं पाए। मैं रामदरशजी के बड़प्पन पर निछावर था कि कहकर भी न लिख पाने वाले केदारजी के प्रति आज उनमें कोई कटुता नहीं है। लिखा तो नामवरजी ने भी उन पर कभी नहीं; हालाँकि

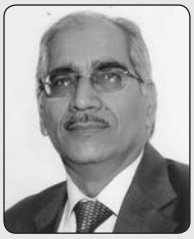

हिंदी के सुपरिचित कवि, आलोचक एवं भाषाविद्। शब्द सक्रिय हैं (कविता-संग्रह), खुली हथेली और तुलसीगंध (संस्मरण) व कविता का स्थापत्य, कविता की अष्टाध्यायी एवं शब्दों से गपशप सहित समीक्षा व आलोचना की कई पुस्तकें। कई ख्यात कवियों की कृतियों का संपादन। तत्सम् शब्दकोश के सहयोगी संपादक एवं बैंकिंग वाङ्मय सीरीज (पाँच खंड) के रचयिता। उ.प्र. हिंदी संस्थान से 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार' सहित अन्य सम्मानों से विभूषित।

रामदरशजी के मन में उनके प्रति आज भी वही पुरानी प्रीति है। वे बाहर से जब कभी यहाँ आते तो उनसे मिलकर बनारस के नाते वही अपनापा महसूस करते। नामवरजी पर कुछ साल पहले आए 'बहुवचन' के अंक में रामदरशजी ने आलेख लिखा है। कहने लगे, 'पानी के प्राचीर' उपन्यास आया तो उसे पढ़कर नामवरजी ने कहा था, "ताज्जुब है कि आपने इसमें इतने गहरे स्ट्रोक्स दिए हैं—ब्राह्मण किरदारों को लेकर। मैं शायद ऐसा न कर पाता।" पर कभी वह समय नहीं आया कि नामवरजी रामदरशजी पर कुछ लिखते—फिर भी उनके चित्त में नामवरजी के लिए आज भी वही प्रीतिकर भाव है, जो बनारस के साहचर्य के दिनों में रहा है।

दिनचर्या में कवित्व

रामदरश मिश्र को ईश्वर ने न केवल लंबा जीवन दिया, बल्कि उन्होंने इस जीवन का बेहतरीन सदुपयोग रचना में किया। पथ के गीत से आरंभ कर उन्होंने अपने जीवन के बेहतरीन गीत लिखे तो पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत, आदिम राग, बिना दरवाजे का मकान, दूसरा घर जैसे नामचीन उपन्यास लिखे और अपनी किस्सागोई से पाठकों को वशीभूत किया। सैकड़ों कहानियों के रचयिता रामदरश मिश्र ने इस बीच ग़ज़लें भी आजमाईं और कई संग्रह गजलों को लेकर आए। कविता का तो कहना ही क्या। गीत की राह बीच में ही कहीं छूट गया, पर लय और रिद्म का साथ नहीं छूटा। जब भी मन करता वे गीत और ग़ज़लें लिखते रहे आज भी लिखते रहते हैं और मिलने पर सुनाते भी हैं। गद्य की अन्य विधाओं संस्मरण, आत्मकथा, डायरी, ललित निबंध हर विधा में उनकी दशाधिक पुस्तकें और अनेक चयन संचयन आ चुके हैं। उनका जीवन गए सात दशकों से जैसे रचना को जीता रहा है। किसी उठापटक में पड़े बिना उनकी साहित्य साधना किसी एकाग्रचित्त साधक की साधना जैसी लगती है।

जहाँ तक पुरस्कारों का ताल्लुक है, उन्हें दयावती मोदी सम्मान, भारत भारती सम्मान, हिंदी अकादमी शलाका सम्मान, व्यास सम्मान और हिंदी संस्थान के अनेक कृति-आधारित पुरस्कारों सहित साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है तथा अब वे सरस्वती सम्मान से समादृत होने जा रहे हैं, यह हिंदी समाज के लिए गौरव की बात है। वे अपनी लंबी साहित्य साधना के कारण भारतीय ज्ञानपीठ की विचारणीय सूची में भी हैं। लेकिन विडंबना यह कि कथा के क्षेत्र में उनके कई उपन्यासों ने प्रतिमान रचने वाली अंतर्वस्तु दी है तथा कुछ बड़े पुरस्कार उन्हें जीवन

के मध्य में ही मिल जाने चाहिए थे, किंतु वह उन्हें जीवन के नौवें दशक में मिला। संयोग यह भी कि प्रभूत औपन्यासिक संसार के बावजूद उन्हें दोनों सर्वोच्च पुरस्कार साहित्य अकादेमी और सरस्वती सम्मान कविता संग्रहों पर मिले हैं। शायद सम्मान में यह देरी उनके कवि को कचोटती रही हो, तभी उन्होंने अपनी एक ग़ज़ल में मस्ती से स्वीकार भी किया है कि "जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर/वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।" यह ग़ज़ल उनके जीवन स्वभाव का आईना भी है। यह आत्मस्वीकार का परिचायक भी है।

पुरस्कार से बेपरवाह

पुरस्कार के इतने प्रसंग हैं कि उनकी चर्चा की जाए तो पुरस्कारों से विरक्ति हो जाए। जोड़-तोड़ के इस संसार से कोई बच न सका। जो तटस्थ रहे उन्हें वर्षों प्रतीक्षाएँ करनी पड़ीं या किसी नगण्य सी कृति पर पुरस्कार पाकर संतोष करना पड़ा। कवियों के अपने आत्मसंघर्ष होते हैं। आज तो बड़ी नौकरियों वाले अनेक लोग बड़े कवि हैं। जीवन और जीविका का कोई संकट नहीं है उनके पास। किंतु आज ऐसी भी अच्छी खासी संख्या है लेखकों की, जिन्हें न उचित रॉयल्टी मिलती है, न वाजिब पुरस्कार, न उनके रचनात्मक श्रम का उचित प्रतिफल। रामदरश मिश्र का भी अपने जीवन में खासा संघर्ष रहा है। वे अपनी डायरी 'मेरा कमरा' में लिखते हैं कि गाँव से लेकर दिल्ली आने तक न जाने कितने कमरों में रहा। ऐसे ही पराए घरों और कमरों में उन्होंने सृजन के सपने देखे, रचनाएँ लिखीं और लोगों से सुख-दु:ख का रिश्ता कायम किया। उन्हें पुरस्कार मिलें न मिलें, इसकी कभी परवाह नहीं की। बस लिखते जाना ही एकमात्र ध्येय रहा।

जीवन और साहित्य की राह

१९२४ में गोरखपुर के डुमरी गाँव में जनमे रामदरशजी १९४७ में मैट्रिक के लिए वाराणसी आए। यहाँ बीएचयू के छात्र बने। छात्रावास में रहे। साहित्यिक गहमागहमी के दिनों को वे आज भी याद करते हैं, जहाँ शंभुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, नामवर सिंह, बच्चन सिंह, शिवप्रसाद सिंह, त्रिलोचन जैसे कवियों लेखकों का एक सुपरिचित समवाय था। पी-एचडी. करते हुए आर्थिक संकट भी झेला, भाई रामअवध मिश्र नौकरी से अलग हो चुके थे सो उन पर भार क्या बनना। स्वावलंबन की राह अपनाते हुए वे वहाँ सस्ते किराए के मकान में रहे। प्रत्याशा तो बीएचयू में ही नौकरी करने की रही पर बनारस तो प्रतिभाओं को नकारने वाला शहर रहा है। अनेक प्रतिभा पुत्रों को बनारस से बाहर जाना पड़ा, नामवर सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह और बाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी तक को। लिहाजा, नौकरी के निमित्त उन्हें बनारस छोड़कर बिराने शहरों बड़ौदा, अहमदाबाद और नवसारी आदि की शरण लेनी पड़ी। किंतु गुजरात में अनेक मित्रों के साथ कविवर रघुवीर चौधरी का संग साथ उनके जीवन की एक सुखद उपलब्धि रही। गुजरात रहते हुए उपन्यास पानी के प्राचीर छप चुका था, जल टूटता हुआ लिखा जा रहा था तथा वे कथायात्रा में निरंतर डूबते जा रहे थे। साथ ही, कविता भी साथ न छोड़ती थी। गीतों के बाद आया संग्रह बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ नई कविता के क्षेत्र में उन्हें स्थापित करने के लिए पर्याप्त था, पर यह यात्रा अनवरत चलती रही।

१९६४ में वे दिल्ली आए तो यहीं के होकर रह गए। मॉडल टाउन तब अनेक लेखकों का अड्डा था। वहीं रिहाइश रखते हुए रामदरशजी धीरे-धीरे दिल्ली के साहित्य समाज के केंद्र में आते गए और राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें पहचान मिलने लगी। मॉडल टाउन रहते हुए उन्होंने जल टूटता हुआ, पक गई है धूप, खाली घर, फिर वही लोग, समय देवता आदि रचनाएँ पूरी कीं। यहीं रहते हुए सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर और आकाश की छत जैसे बड़े उपन्यास लिखे गए और अनेक समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित हुए। १९८० में वे दिल्ली की पश्चिमी इलाके की कालोनी उत्तम नगर में आ गए, जहाँ उसके बाद फिर उनकी सर्जनात्मकता को पंख लग गए। हर साल कविता कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा इत्यादि विधाओं में रचनाएँ आती रहीं। दसियों उपन्यास यहीं लिखे गए। सुख-दु:ख के अनेक प्रसंग आते और जाते रहे। हेमंत जैसे बड़े कलाकार पुत्र का असमय अवसान भी उन्हें देखना पड़ा, जिसे उन्होंने अपने एक उपन्यास एक था कलाकार में याद किया तो अपनी पत्नी सरस्वती पर एक बचपन यह भी लिखकर जैसे पत्नी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

कवि लेखक तो प्राय: सरस्वती के साधक होते ही हैं। जब तक सरस्वती सिद्ध न हों, कोई बड़ा लेखक नहीं बनता, यह धारणा आज भी पुरानी नहीं पड़ी है। किंतु रामदरशजी तो बी.ए. करते हुए ही सरस्वती साधक बन चुके थे। उनका सरस्वतीजी से ब्याह हो चुका था। बड़े से बड़ा कौन सा लेखक है, जिसने सरस्वतीजी का आतिथ्य न ग्रहण किया होगा। आज भी आतिथ्य परायण सरस्वतीजी रामदरशजी से मिलने आए लेखकों-कवियों का पूरा खयाल रखती हैं तथा कवि की शाश्वत सहचरी होने का बोध कराती हैं। अब जब इस परिपक्व वय में सरस्वती सम्मान भी मिल रहा है, मैं पीछे कह ही चुका हूँ कि वे दो-दो सरस्वतियों के साधक बन चुके हैं और उनका घर तीर्थतुल्य आकर्षण में बदल चुका है। अतीत में केदारनाथ अग्रवाल के दांपत्य प्रेम से भीगी कविताओं की चर्चा होती रही है। 'हे मेरी तुम' जैसी अनेक कविताएँ उन्होंने पत्नी पर लिखकर शोहरत पाई है। रामदरशजी ने यों तो स्त्री रूप में अनेक कविताओं में पत्नी सरस्वती की छवि को रचा है, पर एक बचपन यह भी में उन्होंने उनकी जीवन यात्रा को बखूबी समेटा है। इस उपन्यास के समर्पण में ही उन्होंने लिख दिया है कि 'सरस्वतीजी को, जिनकी छवि चेतना में व्याप्त है।' इस उपन्यास की नायिका चेतना में पत्नी सरस्वती के जीवन की आभा है तो प्रसून में स्वयं रामदरश मिश्र की छवि। इस तरह उत्तर जीवन की यह कृतज्ञता दांपत्य के गुर भी सिखाती है।

कवि-मन की उड़ान

रामदरशजी एक सिद्ध कवि हैं। उनके गीतों का चुंबकीय आकर्षण किससे भला छिपा है। धरती और पथ के गीत की कविताएँ लगभग एक धुरी पर एक सी कवि मन की उपज लगती है तो यह उनका गँवई जीवन से सान्निधय का ही प्रतिफल है। वे प्रकृति को आज भी अपने भीतर बसाए हुए होते हैं। उसकी स्मृतियों मे खोए से रहते हैं। यही वजह है कि उनकी कविताओं में मौसम को लेकर कितनी ही कविताएँ मिलेंगी। पेड़ों, वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, किसानी जीवन से लेकर मानवीय संवेदना का हर पहलू उनकी कविताओं में प्रकट हुआ है। अब तक दो दर्जन से ज्यादा संग्रहों

के कवि रामदरशजी ने कविताओं में बेबाकी से अपनी व्यंजना की ताकत का परिचय तो दिया ही है, संवेदना की एक तार वाली चासनी भी मिलती है।

मैं तो यहाँ हूँ : पुरस्कृत काव्यकृति

यही कृति है जिस पर सरस्वती सम्मान घोषित हुआ है। कवि की लाडली कृतियाँ तो सभी होती हैं, पर जो पुरस्कृत हो जाए, उस पर उसके साथ पूरी दुनिया की निगाह पड़ती है। नई कविता का मुहावरा तो रामदरशजी ने 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में ही पा लिया था, तथापि उसके बाद 'पक गई है धूप', 'दिन एक नदी बन गया', 'जूलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे', 'आम के पत्ते', 'रात सपने में' आदि संग्रहों में एक से बढ़कर एक कविताएँ हैं। विचार कविता और लंबी कविता का आंदोलन चला तो रामदरशजी उसके सहभागी भी रहे तथा अनेक लंबी कविताएँ भी लिखीं। समांतर कहानी, सचेतन कहानी आदि के आंदोलन चले तो उसमें भी शामिल रहे, किंतु आंदोलन तो आते-जाते रहते हैं। भले ही वे अज्ञेय की सप्तक शृंखला के कवि नहीं रहे, किसी संगठन के कवि विशेष नहीं रहे, किंतु उनकी कविताओं की आँच धीरे-धीरे लोगों की चेतना पर पड़ती रही है। यह भी संयोग है कि व्यास सम्मान, साहित्य अकादमी सम्मान और सरस्वती सम्मान, सभी कविता संग्रहों पर दिए गए हैं। इसका अर्थ है कि रामदरशजी का काव्यावदान अपने कवि समय का प्रतिनिधित्व करता है।

चौहत्तर कविताओं का यह संग्रह इंद्रप्रस्थ प्रकाशन से २०१५ में प्रकाशित हुआ था। इसी साल पंद्रह अगस्त को वे इक्यानबे वर्ष के होने वाले थे। वय की थकान और रचना के उद्वेगों को देखते हुए उन्होंने एक कविता ही लिख दी, जिसमें कहा—

मन कहता है अभी जवां सा ये चहिए औ वो चहिए
तन कहता है बहुत पा चुके अब तो चुप बैठे रहिए।

पर वे जानते हैं कि चुप होकर बैठने वाले लेखक नहीं हैं। साहित्य का एक युग जिया है उन्होंने। वे हिंदी विश्व के जाने माने हस्ताक्षर हैं। इस संग्रह में उन्होंने स्वीकार किया कि कविता का बंद द्वार जब खुलता है तो खुलता ही चला जाता है और भीतर से एक के बाद एक कविता निकलती जाती है। दूसरे यह कि कविता में केवल सजीव संसार की उपस्थिति नहीं है, अनेक निर्जीव तत्त्व कवि चिंतन से संपृक्त होकर एक नया अर्थ पा जाते हैं और एक नई प्रतीति से भर देते हैं। यह आज की कविता का स्वभाव भी है। न केवल रामदरशजी, बल्कि अनेक समकालीनों में निर्जीवता में सजीवता का अहसास कराने वाली कविताएँ लिखी हैं।

इस संग्रह की पहली ही कविता ईश्वर पर है, जिसकी अंतिम पंक्ति है कि वे ईश्वर को ईश्वर से मारकर ईश्वर को प्यार करते हैं। यह आज के धार्मिक प्रहारों की कचोट है, जो कवि महूसस करता है। अपनी ही कालोनी वाणी विहार, जिसे उनके ही एक अध्यापक मित्र ने बसाया, अध्यापकों को प्लाट दिलवाए तथा ऐसी कालोनी को वाणी के वरद पुत्रों के नाम पर वाणी विहार का नाम दिया, पर धीरे-धीरे बाजार हावी होता गया तथा यह देखते-देखते वणिक पुत्रों की कालोनी बनती गई। यह कचोट वाणी विहार शीर्षक कविता में व्यक्त हुई है।

रामदरश मिश्र अपने पूरे काव्य में सांस्कृतिक आभा के कवि हैं। उनकी कविताओं में भारतीय जन जीवन की छवियाँ मिलती हैं। गाँव को जीता हुआ एक जिद्दी कवि मिलता है। राजनीति से उसका वास्ता वैसा नहीं जैसा रघुवीर सहाय जैसे कवियों का रहा है, पर वह दलों की दलीय राजनीति और तूतू मैंमैं वाली कुरूपताओं को शुभ नहीं मानता। केवल गर्जन-तर्जन रह गया है, अब राजनीतिक दलों के बीच। जन सेवा निहित स्वार्थों के बीच उद्देश्यहीन हो चुकी है। सही रास्ता भी उन लोगों पर तंज है, जो अपने हितों के लिए किसी का भी दामन थाम लेते हैं।

कवि को इस अवधि में पुत्र शोक से भी गुजरना पड़ा, जिसकी परिणति उनकी दो कविताओं में हुई है—'दरवाजा बंद है' और 'वह चला गया चुपचाप'। एक कलाकार पुत्र का दुखद अंत था यह, जिसकी याद में बाद में चलकर उन्होंने एक अलग उपन्यास ही लिखा और इसे एक शोकांतिका जैसी किस्सागोई में विन्यस्त किया।

रामदरश मिश्र ने सदा प्रगतिशीलता की बाँह गही। कहीं धार्मिकता को प्रश्रय नहीं दिया। उन्हें मालूम है कि प्रभु मूर्तियों में नहीं, प्रकृति के जर्रे-जर्रे में विराजते हैं। यही कारण है कि मैं तो यहीं हूँ कविता में कवि मंदिर से बाहर निकलकर देखता है तो पाता है कि जैसे प्रकृति लहलहा रही है, हवाएँ खुशबुओं में महमहा रही हैं, सब कुछ चेतना में स्पंदित हो रहा है, धरती और आकाश संवाद कर रहे हैं, और एक आवाज जैसे कहती हुई लग रही है—अरे मैं तो यहाँ हूँ, यहाँ हूँ, यहाँ हूँ। यह किसी भी ईश्वरीय सत्ता के विरुद्ध कवि का कुदरत के प्रति अटूट विश्वास है, जो उसे प्रकृत कवि के रूप में स्थापित करता है।

कुल मिलाकर रामदरश मिश्र का जीवन एक साधु रचनाकार का जीवन है। अपने एकांत में साधनारत। किसी भी उखाड़-पछाड़ से अलग मनुष्य के उच्चादर्शों को अपने जीवन में उतारता हुआ यह कवि वाणी विहार में सतत सरस्वती की साधना में रत दिखता है। दूर-दूर से मिलने आए लेखकों से बातचीत कर वे तोष का अनुभव करते हैं। यद्यपि गए दो वर्षों के कोरोना काल में वे घर में ही सिमटे रहे, तथापि एक ऑनलाइन काव्यपाठ 'कविता के रंग रामदरश मिश्र के संग' की शृंखला में वे नियमित आते रहे हैं तथा अपने सान्निध्य में काव्य पाठ करने वाले कवियों को चाव से सुनते रहे और अपनी रचनाएँ भी सुनाते हैं।

धीरे-धीरे ९९वीं वर्षगाँठ की ओर बढ़ रहे रामदरश मिश्र हिंदी साहित्य की लीजेंड शख्सियत हैं । देश-विदेश में लाखों पाठकों के लेखक उनकी कविताओं, गीतों, ग़ज़लों, उपन्यासों, कहानियों और संस्मरणों में दिलचस्पी रखते हैं तथा एक अनुमान के मुताबिक साहित्य के इस शती पुरुष पर अब तक तमाम लेखों के अलावा कोई तीन सौ शोधग्रंथ लिखे जा चुके हैं। वे संप्रति हिंदी-जगत् के सबसे वयोवृद्ध लेखक भी हैं, कहीं बाहर आते-जाते नहीं, पर उन्होंने अभी छड़ी का आश्रय ग्रहण नहीं किया। अपनी हस्तलिपि में रचनाएँ लिखते हैं, जिनके अक्षर स्पष्ट और सुलिखित होते हैं। २०२१ का के.के. बिड़ला फाउंडेशन का 'सरस्वती सम्मान' उन्हें दिया जाना इस बात का भी परिचायक है कि अभी पुरस्कार निर्णायक मंडल की मति मंद नहीं पड़ी है और अपनी-अपनी भाषाओं के गौरवशाली लेखकों के कृतित्व पर उसकी सजग निगाह है।

जी-१/५०६ ए, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ९८१००४२७७०

राम झरोखे बैठ के

महानता के मुगालते का नया मानसिक मर्ज

● गोपाल चतुर्वेदी

जैसे-तैसे मेडिकल साइंस तरक्की कर रही है, रोज नई चुनौतियाँ भी प्रगति पर हैं। भला किसने सोचा होगा कि बैठे-ठाले कोरोना की महामारी दुनिया को घेर लेगी? कुछ विशेषज्ञों का मत था कि इसकी उत्पत्ति में चमगादड़ का योगदान है। हमारे मोहल्ले ने इस मत को गंभीरता से ले लिया। नतीजतन, चमगादड़ उन्मूलन अभियान शुरू हो गया। इसका रोचक पहलू है कि कोरोना-बचाव के कदमों से अधिक जोर चमगादड़-उन्मूलन पर दिया गया। मोहल्ले वासियों को लगा कि रोग के विस्तार को रोकने से अधिक महत्त्वपूर्ण है, उसका जड़ से विनाश करना। इस सोच के चलते मास्क और समुचित दूरी के स्थान पर लोग सामान्य रूप से सिद्ध करने लगे कि भारत में जनसंख्या के नियंत्रण की दरकार है। शहर के बाजार में भीड़ का उमड़ना, एक-दूसरे को जबरन स्पर्श सुख देने की घटनाओं में दिनोदिन वृद्धि नजर आने लगी। 'कोरोना-प्रोटोकॉल' के बढ़ते उलंघन से रोग-ग्रस्त लोगों की संख्या भी बढ़ने लगी। बीमारों की तादाद के चलते, अस्पतालों की सुविधाएँ कम पड़ने लगीं। कुछ उपचार के अभाव में चल बसे तो कुछ भर्ती हुए, मगर ऑक्सीजन के उपलब्ध न होने से।

इस दौरान कुछ लोगों ने मास्क न लगाकर नकाबपोश बनने से इनकार के एक नए कारण का आविष्कार भी किया। वह अपनी 'नियति-निर्भरता' सिद्ध करते, कहते पाए गए कि "जीवन-मृत्यु सब ऊपर वाले की इच्छा पर निर्भर है। कुछ मास्कधारी और घर-घुस्सू भी इस मर्ज के शिकार बने हैं, यहाँ तक कि कुछ वैक्सीन लगवाने के बावजूद भी। लिहाजा हमने तो खुद को उसी की कृपा पर छोड़ दिया है।"

ऊपर वाले की कृपा तक तो गनीमत है, कुछ सियासी विरोधियों ने देश में निर्मित वैक्सीन को शासकीय दल की नीतियों से 'प्रदूषित' बताकर उसका राजनैतिक विरोध किया और घोषणा की कि वह फलाने दल की वैक्सीन नहीं लगवाएँगे। यह उद्घोष जनता के सन्मुख, विशेषकर अपने समर्थकों के लिए था। बाद में उन्होंने नेता के खास चारित्रिक गुण यानी 'कथनी' और 'करनी' को उजागर करते सबसे छिपकर चुपचाप वैक्सीन लगवा ली। इससे यह भी साबित होता है कि सियासी विरोध में नेता विरोध का या शासक दल का, कुछ भी अंट-शंट बकने को स्वतंत्र है। उसे ब्रह्म-वाक्य न समझने में ही समझदारी है। कुछ ज्ञानी इसे जीवन-मूल्यों के बढ़ते अवमूल्यन से भी जोड़ते हैं। जब सारे जीवन-मूल्यों में गिरावट नजर आ रही है तो नेतृत्व के स्तर में क्यों न आए? उसमें भी पतन के लक्षण दिखना लाजमी है।

इस प्रचलित महामारी का व्यापक शारीरिक प्रभाव ही नहीं है, इसका मानसिक असर भी है। अवसाद या डिप्रेशन एक नए मनोरोग के रूप में उभरा है। कुछ की मान्यता है कि कोरोना भी लाइलाज है और अवसाद भी। ऐसे मानसिक मरीजों के विशेषज्ञ डॉक्टर इस आकलन से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार, समय भले लगे, पर मानसिक मर्जी का कारगर इलाज संभव है। चूँकि हम इसके भुक्तभोगी नहीं हैं, इसलिए अधिकृत तौर पर कुछ भी कहने में असमर्थ हैं। फिर भी हमें लगता है जीवन की अवधि यों ही काफी कम है, इसमें भी कुछ वर्ष अवसाद-ग्रस्त होकर व्यर्थ गँवाना श्रेयष्कर नहीं है। कुछ डॉक्टरों की जीविका मानसिक रोगों के अस्तित्व पर ही निर्भर है। जाहिर है कि वे ऐसे निष्कर्षों से मत-भिन्नता रखते हों। स्वाभाविक भी है। पर मानसिक मर्जों के प्रभाव को कम आँकना भी कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि मनोरोगों से इनसान के जीवन की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। डॉक्टर कोई भी राग आलापें, इस तथ्य से इनकार करना कठिन है कि मानसिक मर्ज के इलाज की दिशा में अभी काफी प्रगति बाकी है। कौन कहे, इसका समुचित इलाज कब मुमकिन हो? ऐसे अवसाद के शिकार आधे-अधूरे इनसान मनोचिकित्सकों की देन हैं। अवसाद इन्हें गुणवत्ता की जिंदगी जीने नहीं देते और डॉक्टर इन्हें मरने नहीं देते। वह जानते हैं कि इनको पूर्णरूपेण सामान्य होने की संभावना सीमित है पर दुधारू गाय भला किसे बुरी लगती है? उसे पालना सबको स्वीकार है, पर सूखी गाय और साँड़ कोई शायद पागल ही पालता हो?

इधर देखने में आया है कि एक नया मानसिक मर्ज 'महानता का मुगालता', संक्रामक रूप से दो पायों पर आक्रामक है। गौरतलब है कि यह जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है। अफसर, बाबू, कवि, लेखक, साहित्यकार, कलाकार, डॉक्टर, बीमार जैसा कोई भी वर्ग इस संक्रमण की चोट से अछूता नहीं है। हो न हो, समाज का हर वर्ग इस मानसिक रोग से ग्रस्त है। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा। इसका श्वेत पक्ष यह है कि यदि किसी को यह मानसिक मर्ज हो तो अगर वह नाटा है तो स्वयं को नेपोलियन समझता है। दीगर है कि उसके जीवन में कभी कोई 'वाटरलू' नहीं होता है। यदि हो भी जाए तो उस पर कोई असर नहीं पड़ता है। वह

अपने मुगालते की दुनिया में पहले की तरह महत्त्वपूर्ण बना रहता है।

हमारे दर के पास एक डॉक्टर साहब की क्लीनिक है। उनकी मरीज देखने की फीस शहर में सबसे सस्ती है। वह मात्र एम.बी.बी.एस. हैं। यानी उनकी विशेषज्ञता रोगों की किसी विधा में नहीं है। भारत में न रोगियों की संख्या कम है, न सस्ता इलाज करवाने वालों की। कुछ बिना डिग्री के स्वयं-भू स्थापित झोला डॉक्टर तक हैं। गनीमत है कि यह डिग्रीधारी हैं। लिहाजा उनके क्लीनिक में हर समय भीड़ जुटी रहती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हमारे देश में हर किस्म के रोगियों की भरमार भी है और विविध रोगों की भी। डॉक्टर पधारे नहीं कि अपना इलाज का धंधा शुरू कर देते हैं, अर्थात् प्रवेश शुल्क जमा करवाने वालों की क्रमानुसार जाँच।

मरीज के दाखिल होते ही वह स्वयं पूरी संवेदनशीलता और अपनेपन के नाटक से उसका हालचाल दर्याफ्त करते हैं। इसके बाद एक्सरे से लेकर खून की जाँच आदि का नंबर आता है। उन्होंने अपने पेशे की जाँच का गुर बहुत ही लगन और तन्मयता से सीखा है। हर प्रमुख 'लैब' में उनके परिचित हैं। रोगियों को बहुधा वह हर जाँच के लिए उन्हीं लैब का नाम बताते हैं।

यों डॉक्टरों का हर 'लैब' से कमीशन का रिश्ता है। हर जाँच पर उनका पंद्रह-बीस प्रतिशत का कमीशन कहीं नहीं गया है। वह उनके खाते में बिना शोर और आहट के आ ही जाता है। आयकर के डर के मारे कुछ चैक के बजाय इसका नगद भुगतान ही लेते हैं। वह आयकर विभाग 'तू डाल-डाल, मैं पात-पात' का रोचक खेल खेलने के अभ्यासी हैं। इस विभाग के अधिकारियों-कमचारियों के लिए उनकी फीस भी रियायती क्या सिर्फ सांकेतिक है। महज एक रुपया। यह भी इसलिए कि जिससे विभाग के लिए उनके हार्दिक स्नेह को कोई भुलाए न भूले। पैसे से ऐसा लगाव है कि एक रुपया भी जेब से जाए तो याद रहता है।

सस्ते इलाज की लोकप्रियता और विनम्रता के मुखौटे से आमदनी के लिहाज से वह शहर में टॉप पर हैं। कई बार उनके कई मरीज लगातार होती जाँचों के दौरान ही टें बोल जाते हैं, पर इसमें दोष डॉक्टर को कोई नहीं देता है। उसका इलाज तो शुरू भी नहीं हो सका कि मरीज की आत्मा शरीर का पिंजड़ा तोड़कर फुर्र हो ली। रोगी का परिवार आश्वस्त है कि उसने मरीज की प्राणरक्षा के लिए हरसंभव प्रयास किया, रुपया खर्च किया, हर लिखी जाँच करवाई, पर यह प्रक्रिया ही पूरी होते-होते यमदूत पधार गया। इसमें बेचारा डॉक्टर क्या करता?

डॉक्टर भी विवश है। निजी हित में मरीजों-तीमारदारों को क्या पता? अधिक-से-अधिक जाँचें करवाने में मरीज का भला भले न हो, पर डॉक्टर का खुद का निहित स्वार्थ है। उसकी क्लीनिक की फीस भले कम हो, पर जाँचों के कमीशन की राशि उसकी भलीभाँति भरपाई कर देती है। उसका महानता का मुगालता मरीजों की जेब पर जाँचों के आधिक्य से भारी तो पड़ता, पर वह प्रवेश-शुल्क के सस्ते आकर्षण में सब खिंचे चले आते। वह भी मित्रों से शान बघारता—"कहने को हम सिर्फ एम.बी.बी.एस. हैं, पर आमदनी और अनुभव में कोई विशेषज्ञ हमसे मुकाबला करके तो देखे। जब तक क्लीनिक खुली रहती है, दम मारने की फुसरत नहीं होती है।"

महानता के मुगालते के उसके मनोरोग का भार मरीजों पर ही भारी पड़ता या दूसरे डॉक्टरों पर। उसका खुद का अपना जीवन सुखमय और संतोषदायक रहता। दीगर है कि वहीं लेखक और कवियों को यह मनोरोग रचनात्मक रूप से पंगु बना देता है। हमारे शहर में कुछ ही कवि हैं, अधिकतर तुक्कड़। हालात इतने संकटप्रद हैं कि कोई कहीं से भी पत्थर उछाले तो कवि या तुक्कड़ ही इसका शिकार हो। किसी ने दस कविताएँ लिखी हैं या दस तुक्कड़ियाँ, वह अपने को अतीत का कालिदास या आधुनिक युग का निराला समझने से बाज नहीं आता है। दूसरों को बताने या अज्ञानियों पर शान बघारने में जाता ही क्या है? शहर का दूसरा कवि सुने तो उसका भड़क उठता है—"कंबख्त खुद को कालिदास कहता है, पर है केवल गुमनामी का दास। स्थानीय पोखर का मेढक है। वहाँ भले कितनी भी टर्र-टर्र कर ले, बाहर तो कोई उसे जानता तक नहीं है।"

बाहर के अधिकतर पोखरों की यही दुर्दशा है कि बरसात के बाद वह ज्यादातर सूखे ही पाए जाते हैं। कइयों को तो पाटकर बिल्डर उन पर बहुमंजिला इमारतें खड़ी कर चुके हैं। उनके नक्शे तक संबद्ध सरकारी विभाग द्वारा स्वीकृत है। शासन की कल्याणकारी है कि गरीब-से-गरीब बेदर न रहे। इस अल्पकालीन पोखर में टर्र-टर्र करना कवि या तुक्कड़ का जन्मसिद्ध अधिकार है। दिक्कत यह है कि अपने शहर तक में अधिकतर लोग उनकी काव्य-उपलब्धि से परिचित नहीं हैं। वह भले हर हफ्ते छपें, कविता देखते ही अधिकतर पन्ना पलट देते हैं। पाठक अपने मतलब की खबर पढ़ते हैं, साहित्य के पन्ने नामक जटिल और 'बोर' विषय से उनका ताल्लुक ही क्या है? इतना अवश्य है कि वह पन्ने को सँजोकर रखते हैं, रद्दी की रकम का सवाल जो ठहरा। उनका साहित्य के पन्ने का आकर्षण सिर्फ यही रकम है। पर उसे पढ़ने की उन्हें फुरसत क्यों हो? भला क्यों वह अपना कीमती वक्त उसमें जाया करें? समय के इतने उपयोग हैं। दोस्तों के साथ गप्पें लड़ानी हैं, मुफ्त की चाय का जुगाड़ करना है। यदि उसके साथ कुछ समोसे-पकौड़े भी मिल जाएँ तो क्या बुरा है?

यों चुनाव के दिनों में रैली की भीड़ बनना भी एक कमाऊ और लाभप्रद धंधा है। नेता की शान में कुछ नारे ही तो लगाने हैं। जब तक ले जाने को वाहन, खाने को आलू-पूड़ी और मिलने को दिहाड़ी का प्रबंध है, उन्हें किसी भी दल की रैली का कच्चा माल बनने से क्यों परहेज हो? इस कमाऊ पर्यटन की तुलना करें तो साहित्य में क्या धरा है? रोने-धोने की कहानी, तुक मिलाने की कविता तक पढ़ने को कौन फ्री है? अखबार या पत्रिका पड़ोसी की नजर बचाकर उठाइए, नहीं तो उसे जेब की रकम खर्च कर खरीदिए। आत्मा का सुख या मानसिक-बौद्धिक उत्कर्ष वगैरह सिर्फ कहने की बातें हैं। सब के सब जेब का पैसा वसूलने के बहाने हैं।

छोटे शहरों में या देश की राजधानियों तक में, महानता के मुगालते के, ऐसे मरीज अकसर पाए जाते हैं। डॉक्टर इनका इलाज क्या करें? पैसा-कौड़ी खर्च करने में ऐसे रोगी असमर्थ हैं। उलटे उन्हें अपेक्षा है कि डॉक्टर उन्हें इलाज करवाने के पैसे दे। वह भी तो धन्य हो गया कि ऐसी महान् साहित्यिक विभूति उसके पास इलाज के लिए पधारी! डॉक्टर स्वयं महानता के मुगालते से ग्रस्त है। उसे तो हर पल पैसा कमाना है। उसके

पास इतनी फुरसत ही कहाँ है कि वह कवि या तुक्कड़ की अपनी रची मुफ्त की कविताएँ पढ़ने या सुनने में कमाऊ समय नष्ट करे? जब दो ऐसे महानता के मुगालते टकराते हैं तो नतीजा बहुधा सिफर होता है। डॉक्टर और मरीज दोनों अपने-अपने मुगालते में मगन हैं।

सेवानिवृत्त अफसर, छुटभइए नेता, तथाकथित समाज-सेवक सब अपनी-अपनी महानता के मुगालते की कारा में कैद हैं। चूँकि यह नया और अनूठा मानसिक मर्ज है और डॉक्टर भी स्वयं इससे पीड़ित हैं, निकट भविष्य में इसका निदान नजर नहीं आता है; उलटे, कुछ नेता और साहित्यकार अपने इस मानसिक अवसाद के मुगालते से ऐसे पीड़ित हैं कि सार्वजनिक रूप से इसे प्रकट करने से भी नहीं हिचकते हैं। कुछ जीते जी अपनी मूर्तियाँ लगवाते हैं। पता नहीं भविष्य में कोई उन्हें इस योग्य समझे कि नहीं? दूसरा जीते जी अपने नाम के पुरस्कार स्थापित कर उनका वितरण करता है। पुरस्कार की राशि वह क्यों दे? उसने अपना अनमोल नाम जो दे दिया, यही क्या कम है? लिहाजा पुरस्कार की राशि चंदे से आती है। जन-कल्याण के काम सरकार भी जनता के पैसे से ही करती है, ढोल अपना पीटती है। जैसे उसी का निजी पैसा हो। इसी प्रकार साहित्यकार भी अपने नाम के पुरस्कार की राशि साहित्यिक छुटभइयों के चंदे से वसूल करके, स्वयं की अमरता का मुगालता प्रदर्शित करते हैं।

इसीलिए कुछ विद्वानों का विचार है कि जीवन का है, मुगालतों का कोई अंत नहीं है। सब अपनी महानता के मुगालते में ऐसे मगन हैं कि जैसे उन्होंने सिर्फ अपनी उपस्थिति की उपलब्धि से धरती को धन्य कर रखा है। कौन कहे, इस जटिल मर्ज का अंत कभी हो कि नहीं? या यह मानोचिकित्सकों का पैसे कमाने का स्थायी साधन ही बना रहे?

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविता

ताल

● नरेश नाज़

सुपरिचित कवि। छह कविता-संग्रह 'गुजारिश', 'एक गीत का वादा', 'राम भरोसे', 'ताल', 'सत्यमेव जयते' एवं 'आईना' पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से काव्य पाठ प्रसारित।

मेरे प्यारे देशवासियो! सुनो देश का हाल
लगे अगर मैं सच कहता हूँ तुम भी देना ताल

सोच रहे हैं आज विपक्षी कैसे बचे सियासत
जमींदार सोचे हैं कैसे अपनी बचे रियासत
किंकर्तव्यविमूढ़ हुए निर्धन माटी के लाल।

हर आरंभ पंजाब अकेले हिंदुस्तान नहीं है
और प्रांतों के किसान क्या कहो किसान हैं
नहीं चाहता है कोई भी धरना और हड़ताल।

अगर अदालत के रुख में इतनी ठंडक ना होती
बार-बार फिर बेचारी दिल्ली ना बंधक होती
दिल्ली की जनता का जीना होता नहीं मुहाल।

जनता का जो जीवन दूभर कर दें जिले-जिले तक
और पहुँच जाएँ जो हिंसा करने लाल किले तक
प्रतिबंधित हों ऐसे धरने सड़क-जाम हड़ताल।

चंद किसानों के आगे झुक गया देश का राजा
भीड़तंत्र ने बजा दिया है प्रजातंत्र का बाजा
और विपक्षी नेताओं की सफल हो गई चाल।

बिन गलती के क्षमा-याचना पी.एम. की थी काफी
अब किसान संयुक्त मोर्चा भी तो माँगे माफी
रोड जाम ने जनता का जीना था किया मुहाल।

अगर नहीं होता दिल्ली में गुजराती संन्यासी
एक बार दोहराया जाता इक्कीस में चौरासी
राम ही जाने फिर क्या होता अपने देश का हाल।

इससे पहले प्रधानमंत्री किसी राज्य में जाएँ
पुलिस वहाँ की केंद्रीय सरकार के तहत आए
वरना राम भरोसे रह न जाए सुरक्षा ढाल।

लेकर नाम किसानों का जो आंदोलन करते थे
नहीं सियासत है मकसद जो हर पल दम भरते थे
पर चुनाव लड़ रहे चढ़ूनी टिकैत राजेवाल।

नहीं अन्नदाता कोई न मकान कपड़ा पाता
जो है जिसकी रोजी-रोटी उसमें जकड़ा जाता
जीवन-यापन को सब बेचें अपना-अपना माल।

३२ए/१, हीरा नगर,
पटियाला-१४७००१ (पंजाब)
दूरभाष : ९८७२३३६०७०

बदला लिया मैंने : अनंत कान्हेरे

• विद्या केशव चिटको

पञ्चवटयां पञ्च रत्नानि सदा सुख प्रदायिनी,
गोदावरी कपालेशो रामो वायुस्तपोवने।

नासिक में ऐसी क्या समृद्धि है कि दर्शनार्थ आया प्रत्येक जन इस स्थान पर बस जाने के लिए आतुर हो उठता है। तो इसका उत्तर है पंचवटी क्षेत्र पंच रत्न सुख-शांति-समृद्धि दाता है। गोदावरी, कपालेश्वर, प्रभु राम, हवामान और तपोवन।

समर्थ रामदास स्वामी ने यहाँ बारह वर्ष पुरश्चरण तप साधना की थी। जनस्थान गोदा तट परम पावनी पंचवटी जेथे पडली कृपादृष्टि रघुराम की।

नासिक की भूमि मंत्र भूमि, देव भूमि, धर्म भूमि, कर्म भूमि, योद्धाओं की शौर्य भूमि और मोक्ष भूमि है। यह जनक स्थान साधकों का सिद्ध स्थान है तो भगवान् शिव शंकर और प्रभु रामचंद्र के चरण स्पर्श से पुनीत यह तपोभूमि है। शैव, वैष्णव, शाक्त, योगमार्गी, वैदिक धर्मानुयायी और भागवत धर्मियों का आश्रय स्थान ब्राह्मण, बौद्ध, जैन विविध संस्कृतियों की संगम स्थली यह भूमि है।

महाराष्ट्र प्रदेश को स्वतंत्र करने के लिए ईस्वी सन् पूर्व प्रथम शतक से लढवय्या गौतमी सातकर्णी से शुरू कर भारत को आजादी दिलाने तक का एक लंबा इतिहास है। देश की आजादी के इतिहास का एक पृष्ठ भी स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर की राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रहित, राष्ट्र कल्याण विचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किए बिना लिखा ही नहीं जा सकता है। ऐसी नासिक नगरी पंचवटी और गोदा मैय्या की महिमा का बखान ऋषि-मुनियों ने किया है।

धन्य-धन्य मानवा लोके कुतस्तेषां तु दुष्कृत्यम्,
दृष्टा यै गौतमी गङ्गा सिंहस्थ सुर मंत्रिणी।

गौतम ऋषि की तपश्चर्या का फल है गोदावरी। इस गोदावरी को शत-शत नमन करते हुए रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय आचार्य राजदरबारी कवि केशव दास कहते हैं, "पाप संहारिणी, लीला मनोहारिणी, देवेष शोभा धारिणी विषमय यह गोदावरी अमृतन के फल देती केशव जीवन हार को दुख अशेष हर लेती।" इस गोदा तट पर १९ अप्रैल, १९१८ को ब्रिटिश अधिकारी सिविल कमिश्नर ब्रिग्जस का नासिक के शासन की बागडोर सँभालने के लिए आगमन हुआ। अत्यंत नृशंस व्यक्ति। भारतीयों को अपना गुलाम अपने पैर की जूती समझ उसने नासिक वासियों पर अनन्वित अत्याचार करने शुरू कर दिए थे। अबाल-वृद्ध, स्त्री, पुरुष, धनी, निर्धन, सवर्ण, अवर्ण, छोटा, बड़ा, सबल, निर्बल, लूला-लंगड़ा, अपाहिज किसी को उसने नहीं बख्शा था। उसने नगरवासियों की नींद हराम कर दी थी। नासिक नगरवासी उससे त्रस्त पीड़ित थे। दशहरे का दिन। सर्वत्र आनंद उल्लास उमंग का वातावरण था। राम की विजययात्रा का जुलूस निकाला गया था। जिसका प्रतिनिधित्व बाबाराव सावरकर कर रहे थे। 'वंदे मातरम्' के घोष से आकाश निनादित था। कमिश्नर ब्रिग्जस की आज्ञा से अंग्रेज पुलिस ने जुलूस को आगे बढ़ने से रोका। उसे पीछे लौटाने के लिए लाठी प्रहार करना शुरू किया। बाबा सावरकर ने गुस्से में आकर कुछ सिपाहियों पर लात-घूसे जमाए। उनके कान, नाक से खून बहने लगा था। बाबा सावरकर को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर हत्या का आरोप लगा। मुकदमा चला। यह मुकदमा 'वंदे मातरम्' के नाम से जाना जाता है। उनकी वकालत की सनद रद्द कर दी गई। घर की तलाशी ली गई। अंग्रेज पुलिस ने सिर्फ घर की तलाशी ही नहीं ली, बल्कि मूल्यवान सामान और चाँदी के बरतन -भांडे भी लूटकर ले गए। सभी क्षुब्ध थे। सर्वत्र असंतोष का वातावरण था। कमिश्नर ब्रिग्स को सर्वत्र धिक्कारा जा रहा था। सन् १९०६ में एक नर केसरी दहाड़ा था, "स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर ही रहूँगा"। इस दहाड़ से आसेतु-हिमालय भारत सोते से हड़बड़ाकर जाग उठा। ब्रिटिश सत्ता की चूलें हिल गईं। लार्ड कर्जन

द्वारा किया गया बंग विभाजन एक नीच कृत्य पाप था, जिसका तीव्र निषेध पूरे हिंदुस्तान ने किया। नासिक उससे अछूता नहीं रहा। बाबा खरे नामक एक राष्ट्र प्रेमी के नेतृत्व में बंग-भंग के निषेध में सभा बैठके नारे लगाना वंदे मातरम् की घन गर्जन घोषणा स्वदेशी का प्रचार विदेशी का बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार, मद्य निरोधन के निदर्शन में सभा बैठकें प्रभात फेरी गोदातट पर खुली जगह मैदान गली-चौराहा पर लोग जमा होते। अंग्रेज शासन का खुल्लमखुल्ला विरोध किया जाता। सर्वत्र असंतोष का वातावरण पनप रहा था। कमिश्नर ब्रिग्जस ने बाबा खरे को जहाल में भाषण न करने की ताकीद दी। पर वह चित्तपावनी ब्राह्मण लाल मुँह के अंग्रेज की बंदर घुड़की से कहाँ डरने वाला था? अब वह पहले से भी ज्यादा दोगुने जोश में भाषण देता। सभाएँ-बैठकें लेता, भारी संख्या में लोग इकट्ठे होते। बाबा खरे को गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी बेदम पिटाई की गई। नासिकवासियों का असंतोष उग्र रूप धारण कर चुका था। राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति अपने देश के लिए आत्मार्पण की विचार-अग्नि धधक रही थी। सशस्त्र क्रांति द्वारा ही देश को आजाद किया जा सकता है, यह विचार जड़ पकड़ रहा था। देशप्रेम देशभक्ति भावपूरित कविता गोविंदाग्रज ने लिखी, वीर रस ओजपूर्ण कविता सहस्त्र कंठ स्वर से गाई जाती।

इसी समय लाला लाजपत राय की गिरफ्तारी और उन पर किए गए लाठी प्रहार से उनकी मृत्यु ने भड़कती अग्नि में घृत उड़ेलने का काम किया। बाबा सावरकर ने 'अभिनव पद्यमाला' छोटी सी पुस्तिका छापकर युवाओं में वितरित की। यह पुस्तिका क्रांतिकारी विचारों की पृष्ठभूमि तैयार करती सिद्ध कर बाबा राव को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें कालापानी की सजा दी गई। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति और अत्याचार दिन पर दिन बढ़ते ही जा रहे थे। नासिकवासियों के असंतोष और विद्रोह की धार भी तेज होती जा रही थी। अंग्रेजों से बदला लेना ही है। इसी समय नासिक में नए कलेक्टर जैक्सन की नियुक्ति हुई। यह व्यक्ति क्रूरकर्मा तो था ही, साथ ही उद्दाम भी था। कलेक्टर के पद पर आने पर उसने 'वंदे मातरम्' कहने पर रोक लगा दी। यदि कोई वंदे मातरम् कहता तो उस पर कोड़े बरसाए जाते। एक बार एक कीर्तनकार को अपने प्रवचन में देशभक्ति भाव का वाक्य बोलने पर उसे पकड़कर जेल में बंद कर दिया गया। उसे बेदम पीटा गया। एक वकील प्रवचन सुनने के लिए गए थे। वह उनका अपराध। उनकी वकालत की सनद जप्त कर ली गई। गोल्फ मैदान में विलियम नाम का एक अफसर गोल्फ खेल रहा था। उसकी गेंद मैदान के बाहर रास्ते पर चली गई थी।

एक किसान अपनी बैलगाड़ी हाँक रहा था। गेंद बैलगाड़ी के नीचे आ गई थी। उसने वह गेंद उठाकर उस अंग्रेज अफसर के हाथ में नहीं दी। यह उसका अपराध। किसान को इतना पीटा गया, इतना पीटा गया कि उसने खून की उल्टी कर अपने प्राण त्याग दिए। विलियम पर हत्या का आरोप लगाया गया। मुकदमा चला, पर कलेक्टर जैक्सन ने उसे

सुपरिचित लेखिका। पुणे विद्यापीठी, पुणे तथा यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ एवं एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी, मुंबई की शोध निदेशक। राष्ट्रीय हिंदी अकादमी, कोलकाता की प्रवर समिति की सदस्या। साहित्य सरित हिंदी मंच, नासिक की उपाध्यक्षा एवं समरसता साहित्य परिषद् नासिक विभाग की अध्यक्षा।

निर्दोष साबित कर दिया। इस प्रकार की एक नहीं, दो नहीं, हजारों घटनाएँ हुईं। परिणामस्वरूप नासिकवासी उसपर गालियों की बौछार करते और चाहते थे कि उसे खत्म कर दिया जाए। अंग्रेज अधिकारियों को सबक तो सिखाना ही है। कृष्णाजी गोपाल कर्वे और विनायक नारायण देशपांडे ने कलेक्टर जैक्सन की हत्या की योजना बनाई। साहसी अनंत कान्हेरे युवक इस कार्य के लिए आगे आया। नासिक की क्रांतिकारियों की गुप्त सभा-बैठकों में वह शामिल होने लगा। इन्हीं बैठकों में जैक्सन की हत्या का षड्यंत्र रचा गया। हत्या का दिन, तारीख, समय, स्थान निश्चित हुआ। अनंत कान्हेरे ने कलेक्टर कचहरी के पास एक-दो बार खड़े होकर उसे भली भाँति देख लिया था। तब उसने निश्चय किया कि उसपर गोली दागी जाए। उसने एक-दो बार कोशिश भी की, पर कार्यसिद्ध में उसे सफलता हासिल नहीं हुई। कान्हेरे अवसर की ताक में था। एक दिन वह मौका हाथ आ ही गया। उसे कहीं से खबर मिली थी कि कलेक्टर जैक्सन साहब विजयानंद थियेटर में 'शारदा' नाटक देखने के लिए पधारने वाले हैं। इस सुनहरे मौके को वह हाथ से कैसे जाने देता?

२१ दिसंबर, १९०८। नासिक के नाट्य रसिक विजयानंद थियेटर की ओर चले जा रहे थे। नाट्य प्रेमी जनों का सैलाब उमड़ा था। गली-गली से स्त्री-पुरुष सज-धजकर विजयानंद की ओर बढ़े जा रहे थे। थियेटर में कीमती इत्र बेला-चमेली की गंध से वातावरण गंधित हो उठा था। सर्वत्र एक उल्लसित वातावरण था। हॉल खचाखच भरा हुआ था। सामने कत्थई रंग का परदा झूल रहा था। सभी की आँखें परदे पर टिकी थीं कि कब नाटक शुरू होता है। पर इन तीन युवकों की नजर तो प्रेक्षागृह के द्वार की ओर लगी थी।

नौ बजे। परदा ऊपर की ओर सरकने लगा था। उसी समय नाट्य गृह के बाहर एक मोटरगाड़ी आकर रुकी। उस मोटर में से छह फीट ऊँचा कोट-पतलून-टाई पहने एक रुआबदार गोरा शख्स अपनी पत्नी के साथ गाड़ी से उतरा। थियेटर के वरिष्ठ अधिकारियों ने दौड़कर उसका स्वागत किया। कमर तक झुककर उसका अभिवादन किया और बड़े अदब के साथ प्रेक्षागृह में लाकर सबसे आगे की कुरसी पर उसे बैठाया। उसे कुरसी पर आसनस्थ देख इन दो युवकों ने अपने कोट की जेब पर हाथ रख कुछ टटोला और फुरती से कोट की जेब से भरी पिस्तौल निकालकर उस व्यक्ति पर निशाना साध फट से दो गोलियाँ दाग दीं। पर उस व्यक्ति ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा दिए थे, इस कारण गोली ऊपर से निकल गई। युवक ने फिर बड़ी फुरती से तीन-चार बार पिस्तौल

झाड़ी। गोली लगी और वह जमीन पर लुढक गया। खून से लथपथ। उसकी प्राण-ज्योत बुझ गई थी। शारदा नाटक शुरू होने के पूर्व यह खून का नाटक खेला गया। भगदड़ मच गई। सभी अपने प्राण मुट्ठी में लेकर भागे जा रहे थे। नासिक के एक अत्याचारी क्रूर नृशंस अंग्रेज अधिकारी को यम सदन भेज दिया गया था। इस बर्बर शासक अधिकारी पर गोलियाँ चलानेवाला भारत की आजादी की बलिवेदी पर अपने प्राण उत्सर्ग करनेवाला साहसी निर्भय पराक्रमी नौजवान था—अनंत कान्हेरे। पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया था। सत्रह-अट्ठारह साल का यह नौजवान रत्नागिरी का रहनेवाला था, उसकी स्कूली शिक्षा औरंगाबाद में हुई थी। बचपन से ही वह निर्भीक और साहसी था। डर तो उसे पता नहीं था। व्यायाम-कसरत कर उसने शरीर कमाया था। खेल में भी वह सब समय आगे-आगे रहता था। बंग विभाजन के परिणामस्वरूप पूरे देश में असंतोष की ज्वाला भड़क उठी थी। अंग्रेजों के अत्याचारों से सामान्य जनता क्षुब्ध हो उठी थी। अनंत कान्हेरे इन मोटी-मोटी बातों से बहुत प्रभावित हुआ था। उसने बदला लिया था। कान्हेरे पकड़ा गया। उसके दो साथियों विनायक देशपांडे और अण्णा कर्वे को पुलिस द्वारा खूब पीटा गया अनेक प्रकार की शारीरिक यातनाएँ दी गईं। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। तीनों को फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी की सजा सुनकर ये वीर देशप्रेमी तनिक भी विचलित नहीं हुए। अनंत ने तो फाँसी के तख्त पर चढ़ने के पूर्व अपने कुरते की जेब में एक कागज पर लिख रखा था—"मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया है। जनता दरबार का नियम है कि जो जनता के साथ विश्वासघात करता है, उसे देह दंड मिलना ही चाहिए। उस नृशंस को देहांत दंड देने की जिम्मेदारी मुझ पर सौंपी गई थी। मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया है। भारत माता की जय! वंदे मातरम!"

१९ अप्रैल, १९१० को प्रातः ब्राह्म वेला में तीनों देशवीरों ने स्नान किया। हाथ में भगवद्गीता पकड़ी। हृदय से चिपका ली और शांत भाव से तीनों क्रांतिवीर वध-स्तंभ की ओर चले। उनके मुख पर अपार शांति थी। कर्तव्यपूर्ति के भाव से मुख कांतिमान था।

बँगला नं. ८, अक्षर सोसाइटी
समर्थ नगर, नासिक-४२२००५ (महा.)
दूरभाष : ९५२७३१३३८७

कल का छोकरा

लघुकथा

• सविता इंद्र गुप्ता

आज विनय को साल के सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी की शील्ड दी जानी थी।

पाँच दिन में ही तीस से अधिक यात्रा भत्ता बिल और पचास मेडिकल बिल बनाने थे। जब बड़े बाबू ने ऐन मौके पर हाथ खड़े कर दिए, तब मैनेजर ने दो माह पहले भरती हुए विनय को यह दायित्व सौंपा था। विनय ने असंभव सा दिखने वाले काम को ऑडिट से पहले पूरा कर दिया था। सभी ने विनय के लिए जोरदार तालियाँ बजाईं।

विनय ने रोज दो-दो घंटे एक्स्ट्रा रुक कर अथक परिश्रम किया था। उसे बीच-बीच में बड़े बाबू का उपहास और व्यंग्य सुनाई देता रहता था—"ये कल का आया छोकरा, क्या खा कर निपटाएगा इतना काम? इस जैसे दस भी लग जाएँ तो भी यह पहाड़ सा काम समय पर होना असंभव है।" और फिर रावणी अट्टहास। विनय को हर बार इस व्यंग्य से बल मिलता और वह और भी अधिक मनोयोग से कंप्यूटर पर जुट जाता था।आखिर उसने जंग जीत ली और चार दिनों में ही रिपोर्ट मैनेजर को सौंप दी थी।

मैनेजर ने सभी को चाय पार्टी पर एकत्र किया। सब के सामने विनय को पास बुलाया—"वैल डन विनय, तुम्हारे काम, लगन और आत्मविश्वास से डायरेक्टर साहब बहुत खुश हुए। पुरस्कार स्वरूप सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी को दी जाने वाली जेपी शील्ड तुम्हें भेंट की जाती है।" सभी ने तालियों से खुशी जाहिर की।

"अब मैं चाहूँगा कि विनय अपने इस जादुई करिश्मे के बारे में दो शब्द कहेंगे।"

"नमस्कार। मैं इस ऑफिस में नया और सब से छोटा हूँ। आप सब के सहयोग और मार्ग-दर्शन का आभारी हूँ। इस शील्ड को मैं बड़े बाबू को समर्पित करता हूँ, जिन्होंने इस बीच लगातार मेरा उत्साह वर्धन किया। बिना उनके यह संभव नहीं था। मेरी प्रार्थना है, बड़े बाबू मेरी यह शील्ड स्वीकार कर, मुझे आशीर्वाद देंगे।"

इतना कहते हुए उसने बड़े बाबू के चरण स्पर्श कर लिए। बड़े बाबू ने भीगी आँखों से विनय को गले लगा लिया और रो पड़े।

बी-३१, ग्राउंड फ्लोर,
साउथ एंड फ्लोर्स, सेक्टर-४९,
गुरुग्राम-१२२०१८ (हरियाणा)
दूरभाष : ८८००१०१७६९
savitainder@gmail.com

जिंदा होने का सर्टिफिकेट

● राजेश कुमार

ज्ञानीजी का निधन हो गया था, लेकिन पेंशन का धन उनके खाते में बदस्तूर आता जा रहा था। बताते हैं कि आखिरी बार उन्हें अकाउंटेंट के पास सिर झुकाए हुए बैठे देखा गया था।

वे कुछ दिन पहले आए थे। उन्होंने डिप्टी डायरेक्टर से अपने जिंदा होने का सर्टिफिकेट प्रमाणित करवाकर अकाउंटेंट के पास जमा करवा दिया था। वे सर्टिफिकेट पर खुद साइन करके उसे अकाउंटेंट के पास लेकर गए थे, पर उसने उनके जिंदा होने का सर्टिफिकेट खुद उनसे लेने से यह करते हुए मना कर दिया था कि नियम के अनुसार कोई व्यक्ति खुद अपने जिंदा होने का सर्टिफिकेट नहीं दे सकता। उसे किसी दूसरे अधिकारी से सत्यापित करवाना होता है कि वह जिंदा है।

वे रिटायर हो चुके थे और उनकी पेंशन जारी होने के लिए जरूरी था कि वे अपने जिंदा होने का सर्टिफिकेट हर साल नवंबर में जमा करवाते रहें। इस काम के लिए जिंदा रहना जरूरी नहीं था, बस सर्टिफिकेट जमा कराना जरूरी था। पिछले दिनों जब उनकी पेंशन रुक गई थी, तो वे उसके बारे में पूछताछ करने के लिए आए थे और उन्हें बताया गया था, क्योंकि उनका जिंदा होने का सर्टिफिकेट नहीं है, इसलिए उन्हें पेंशन नहीं मिल सकती। उन्होंने बहुत तर्क देकर कहा था कि मैं आपके सामने जिंदा खड़ा हूँ, तो फिर सर्टिफिकेट की क्या जरूरत है! उन्हें प्रशासनिक अधिकारी ने बताया था कि आप जिंदा हो या नहीं, हमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, हमारे लिए सर्टिफिकेट की अहमियत है। वह तो यह भी कहना चाहता था कि हमारे लिए आदमी की अहमियत नहीं है, बस फाइल पूरी होनी चाहिए, लेकिन बुजुर्ग आदमी की इज्जत करने की परंपरा के चलते उसने खुद को रोक लिया था। उसने अलबत्ता यह जरूर कहा कि अगर कोई व्यक्ति जिंदा न हो, और वह किसी तरह अपना सर्टिफिकेट जमा करवाता रहे, तो भी उन्हें उसकी पेंशन देने में कोई परेशानी नहीं होगी।

अच्छे-भले स्वस्थ थे और अपना काम बहुत मुस्तैदी से करते थे, लेकिन एक दिन उन्हें समारोहपूर्वक बताया गया कि उनकी उम्र हो गई है और आज से वे अपने काम से मुक्त कर दिए गए हैं। वे अपने आप आसपास देखते थे कि जिन लोगों की उम्र नहीं हुई थी, लेकिन वे काम नहीं करते थे, लेकिन फिर भी वे काम पर बने हुए थे। उन्होंने यह भी

सुपरिचित लेखक। व्यंग्य, कथा साहित्य, बाल साहित्य, भाषा एवं आलोचना की अनेक पुस्तकें प्रकाशित। उत्तर प्रदेश साहित्य अकादमी, टेलीग्राफ, श्रीरामजी वोरा सेवा समिति से सम्मानित। भारत सरकार के संस्थान राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षण संस्थान के निदेशक (शैक्षिक व व्यावसायिक शिक्षा) से सेवा-निवृत्त।

देखा था कि जिन लोगों की उम्र हो गई थी, वे काम तो नहीं करते थे, लेकिन दूसरी तरह के काम में माहिर थे, इसलिए उन्होंने अपना कोई न कोई जुगाड़ बिठाकर रिटायर होने के बाद भी अपने काम करने के अधिकार की एक्सटेंशन ले ली थी। उन्होंने यह भी देखा था कि कुछ लोग रिटायर होने पर इतने मायूस हो गए थे और उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि उनका घर अब कैसे चलेगा, इसलिए उन्होंने कम वेतन पर मामूली नौकरी भी स्वीकार कर ली थी और इस तरह से दूसरी जगह काम जारी रखा था, अपना शोषण होने दिया था, ताकि वे अपना आगे का जीवन ठीक से बिता सकें। ज्ञानीजी को इस तरह की कोई समस्या नहीं थी, पर उन्हें लगा कि यह भी तो दूसरी तरह के भेदभाव की तरह ही है। उन्होंने रिटायर होने की स्थिति को सहज रूप से स्वीकार कर लिया था, सबसे विदा लेकर अपने घर आ गए थे।

ज्ञानीजी ने इस बार का सर्टिफिकेट जमा करवा दिया था, आज वे अकाउंटेंट से उस सर्टिफिकेट को वापस करने के लिए कह रहे थे।

अकाउंटेंट को उनकी बात समझ में नहीं आ रही थी। वह वैसे भी अपने कामों में बहुत उलझा हुआ था, और उसके पास ज्ञानीजी के लिए कोई समय नहीं था, इसलिए उसने झल्लाकर पूछा, "आखिर आप हमें बार-बार परेशान करने के लिए करने के लिए क्यों चले आते हैं? आपका सर्टिफिकेट ठीक है, उसे स्वीकार कर लिया गया है, अब आपको वह वापस क्यों चाहिए?"

ज्ञानीजी उसे समझाने की कोशिश करते हुए कहा, "देखो भाई, मुझे नहीं लगता कि वह सर्टिफिकेट सही है।"

"क्यों, ऐसी क्या कमी रह गई है उसमें?" अकाउंटेंट ने चौंककर पूछा कि कहीं उससे कोई गलती न हो गई हो।

"अब जरा इस बात को देखो।" ज्ञानीजी ने खुलासा किया, "हमारी आँखों के सामने ही लड़कियों और महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार होता है, लोग सरेआम उन्हें छेड़ते रहते हैं, रोज किसी महिला के साथ बलात्कार होता है। हर समय किसी महिला का अपमान किया जाता है। और यह जानते हुए भी मैं कुछ नहीं कर पाता, तो मुझे क्या हक है कि मैं कहूँ कि मैं जिंदा हूँ!"

अकाउंटेंट उन्हें भकुवे की तरह देखता रहा, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ज्ञानीजी आखिर क्या कह रहे हैं।

"लोग बिना इलाज के मर जाते हैं, अस्पतालों में मरे हुए लोगों का इलाज करके मोटी फीस वसूल की जाती है, लोगों के सिर पर छत नहीं है, और उन्हें खुले में रहना पड़ता है। लोगों को गंदे नालों के पास ऐसी हालत में रहना पड़ता है, जहाँ शायद पशु भी रहना पसंद नहीं करते। छोटे-छोटे काम के लिए लोगों को दर-दर भटकना पड़ता है। दफ्तरों में लोग काम नहीं करते, स्कूलों में अध्यापक पढ़ाने के बजाय ट्यूशन लेने पर ज्यादा ध्यान देते हैं, कॉलेज में विद्यार्थी पढ़ने के बजाय मटरगश्ती करने पर ज्यादा जोर देते हैं। यह सब मेरी आँखों के सामने होता रहता है, और मैं कुछ नहीं कर पाता। तो मुझे क्या हक है कि मैं कहूँ कि मैं जिंदा हूँ!"

अकाउंटेंट कहना चाहता था कि हमें इन सब चीजों से कोई लेना-देना नहीं और अगर आपका जिंदा होने का सर्टिफिकेट हमारी फाइल में है, तो सब ठीक है, क्योंकि दफ्तर में फाइल का पेट भरना जरूरी होता है, फिर चाहे काम ठीक हो या न हो।

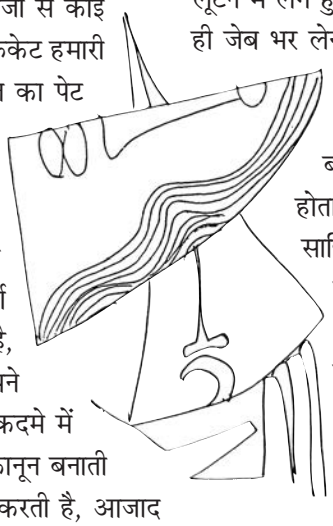

लेकिन ज्ञानीजी अपनी बात को और ज्यादा स्पष्ट करते हुए बता रहे थे, "लोगों की सरकार लोगों के ही खिलाफ काम करती है, वह लोगों का टैक्स बढ़ा देती है और अपने उद्योगपति मित्रों का करोड़ों रुपए का कर्जा माफ कर देती है, लोगों का महँगाई भत्ता रोक देती है, लेकिन अपने ऐशोआराम में कोई कमी नहीं लाती। अपने खिलाफ बात करने वाले लोगों को वह राजद्रोह के मुकदमे में फँसाकर जेल में डाल देती हैं, वह लोगों के खिलाफ कानून बनाती है, सरकारी एजेंसियों का लोगों के खिलाफ इस्तेमाल करती है, आजाद देश में लोगों की आजादी का हनन करती है, और मैं यह सब होते हुए देखता रहता हूँ। मैं इसके खिलाफ एक भी शब्द नहीं बोल पाता, क्योंकि मैं डरता हूँ कि कहीं मेरे खिलाफ ही कुछ गड़बड़ न हो जाए। ऐसे में मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैं जिंदा हूँ!"

अकाउंटेंट अब तक पक चुका था और कहना चाहता था कि भाई मेरा पीछा छोड़ो, मुझे और भी बहुत काम है।

लेकिन ज्ञानीजी ने तो शायद कसम खाई हुई थी कि अपने मन की सारी बातें आज उसके सामने रख देंगे। उन्होंने आगे कहा, "लोग जाति और संप्रदाय में बँटे हुए हैं। आपस में लड़ते हैं, एक-दूसरे को नीचा दिखाते हैं, जब इसे थक जाते हैं तो अपने ही लोगों के खिलाफ हो जाते हैं, हर तरफ भाई-भतीजावाद का दौर-दौरा है, लोग अंधविश्वासों में पड़कर अपनी और दूसरों की जिंदगी बरबाद करते हैं, मंदिरों में पूजा-पाठ के नाम पर लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ होता है, व्यापारी ग्राहकों को लूटने में लगे हुए हैं, हर तरफ भ्रष्टाचार दिखाई देता है, लोग बस अपनी ही जेब भर लेना चाहते हैं, योग्यता का मानदंड सिर्फ जान-पहचान रह गया है या फिर रिश्वत, लोग छोटी-छोटी रकम पर बिक जाते हैं, पैसा देकर अदालत में फैसले पलटवाए जाते हैं, बच्चों की जिंदगी बरबाद करके सरेआम ड्रग्स का व्यापार होता है, फिल्मों में नंगापन और मारकाट ही दिखाई देती है, साहित्यकार एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में साहित्य को पीछे छोड़ रहे हैं, पुलिस चोरों के साथ मिली हुई है, सरकारें गुंडों को भेजकर दंगे करवाती हैं, अपनी बात पर उँगली उठाने वालों पर गोली बरसाती है और यह सब मैं देखता रहता हूँ, एक शब्द तक इसके खिलाफ नहीं बोलता, तो मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैं जिंदा हूँ!"

अकाउंटेंट का धैर्य जवाब दे चुका था। उसने ज्ञानीजी की फाइल मँगवाई, और उसमें से उनका जिंदा होने का सर्टिफिकेट नोंचकर निकाल लिया और उसे ज्ञानीजी के मुँह पर दे मारा।

बताया जाता है कि ज्ञानीजी ने उस सर्टिफिकेट की चोट से आहत होकर दम तोड़ दिया। कहने वाले यह भी कहते हैं कि अकाउंटेंट ने उन्हें सर्टिफिकेट नहीं, बल्कि झल्लाहट में फाइल ही दे मारी थी। बात चाहे कुछ भी रही हो, पर अब ज्ञानीजी को जिंदा रहे का सर्टिफिकेट देने की आवश्यकता नहीं रह गई थी, लेकिन चूँकि उनके जिंदा रहने का सर्टिफिकेट उनकी फाइल में लगा हुआ था, इसलिए उन्हें पेंशन बराबर मिल रही थी।

सी-२०५, सुपरटेक इको सिटी
सेक्टर-१३४, नोएडा-२०१३०५ (उ.प्र.)
drajeshk@yahoo.com

इस अंक के चित्रकार

सिद्धेश्वर

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। 'बूँद-बूँद सागर' (लघुकथा-संग्रह); 'इतिहास झूठ बोलता है' (कविता-संग्रह); 'ढलता सूरज-ढलती शाम' (कहानी-संग्रह); 'दहशतजदा' (उपन्यास-अंश) प्रकाशित। इसके अतिरिक्त कई पुस्तकों का संपादन किया। कई सम्मान व पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति वरीय टिकट परीक्षक (पूर्व मध्य रेलवे)।

सिद्धेश सदन
किड्स कार्मल स्कूल के बाएँ
द्वारकापुरी, रोड नं.-२, हनुमाननगर,
कंकड़बाग, पटना-८०००२०
दूरभाष : ९२३४७६०३६५

प्रभात

नए प्रकाशन

- **परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति** एस. जयशंकर 600.00
- **जोखिम भरे हस्तक्षेप** हरदीप सिंह पुरी 500.00
- **पदचिह्न बुलाते हैं** देवेंद्र स्वरूप 600.00
- **नेपाल का संवैधानिक विकास** डॉ. राकेश कुमार मीणा 600.00
- **मेरा रंग दे बसंती चोला** मलविंदर जीत सिंह वड़ैच 600.00
- **कांग्रेस मुक्त भारत** अमित बगड़िया 600.00
- **नेहरू की 125 ऐतिहासिक गलतियाँ** रजनीकांत पुराणिक 900.00
- **स्वामी विवेकानंद का युवा जागरण** किशोर मकवाणा 600.00
- **गांधी और इस्लाम** अब्दुलनबी अलशोला 500.00
- **POK भारत में वापस** अमित बगड़िया 400.00
- **हिंदू धर्म की धरोहर : भारतीय संस्कृति** संजय राय 'शेरपुरिया' 500.00
- **आधी रात कोई दस्तक दे रहा है** के.आर. मल्कानी 300.00
- **भारतीय संविधान : अनकही कहानी** रामबहादुर राय 1100.00
- **नक्सलियों के बीच मेरे बीते दिनों की रोमांचक गाथा** अल्पा शाह 700.00
- **खालिस्तान षड्यंत्र की इनसाइड स्टोरी** जी.बी.एस. सिद्धू 500.00
- **वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु के महान् विचार** सावन कुमार बाग/मेहेर वान 300.00
- **आपका सबसे अच्छा दिन आज ही है** अनुपम खेर 500.00
- **माइंड मास्टर** विश्वनाथन आनंद, सूज़न नैनन 700.00
- **लोकतंत्र, राजनीति और धर्म** ए. सूर्य प्रकाश 400.00
- **मोपला कांड** विनायक दामोदर सावरकर 250.00
- **नेपोलियन हिल के महान् भाषण** नेपोलियन हिल 250.00
- **ध्येय यात्रा (2 खंड)** सं. मनोजकांत/प्रदीप राव/उमेंद्र दत्त 999.00
- **चलते-चलते** सुरेश चव्हाणके 600.00
- **मनु की दृष्टि से हिंदू समाज** चित्रा अवस्थी 300.00
- **भारत-चीन रिश्ते : ड्रैगन ने हाथी को क्यों डसा** रंजीत कुमार 500.00
- **नेहरू की 127 ऐतिहासिक गलतियाँ** रजनीकांत पुराणिक 750.00
- **काले पानी की कलंक कथा** एस.के. नारंग 300.00
- **विनाशपर्व** प्रशांत पोल 250.00
- **अग्निपथ से न्यायपथ** देवकी नंदन गौतम 500.00

- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारतीयता का पुनरुत्थान** सं. अतुल कोठारी 400.00
- **नए भारत की नींव : राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020** अवनीश कुमार सिंह 450.00
- **आचार्य चतुरसेन की लोकप्रिय कहानियाँ** आचार्य चतुरसेन 400.00
- **जैनेंद्र कुमार की लोकप्रिय कहानियाँ** जैनेंद्र कुमार 400.00
- **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लोकप्रिय कहानियाँ** पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' 400.00
- **सुभद्रा कुमारी चौहान की लोकप्रिय कहानियाँ** सुभद्रा कुमारी चौहान 400.00
- **कमलेश्वर की लोकप्रिय कहानियाँ** कमलेश्वर 400.00
- **मन्नू भंडारी की लोकप्रिय कहानियाँ** मन्नू भंडारी 400.00
- **शिवप्रसाद सिंह की लोकप्रिय कहानियाँ** शिवप्रसाद सिंह 400.00
- **शैलेश मटियानी की लोकप्रिय कहानियाँ** शैलेश मटियानी 400.00
- **रूपसिंह चंदेल की लोकप्रिय कहानियाँ** रूपसिंह चंदेल 400.00
- **कोंकणी की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. ज्योती कुंकलकार 400.00
- **उर्दू की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. शैख अकील अहमद 400.00
- **असमीया की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. महेंद्र नाथ दुबे 400.00
- **बांग्ला की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. महेंद्र नाथ दुबे 400.00
- **सिंधी की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. रविप्रकाश टेकचंदानी 400.00
- **शेरलॉक होम्स की डिटेक्टिव स्टोरीज** सर आर्थर कॉनन डायल 400.00
- **शेरलॉक होम्स की बेस्टसेलर कहानियाँ** सर आर्थर कॉनन डायल 400.00
- **ब्योमकेश बक्शी की रोमांचकारी कहानियाँ** सारदेंदु बंद्योपाध्याय 400.00
- **ब्योमकेश बक्शी की जासूसी कहानियाँ** सारदेंदु बंद्योपाध्याय 500.00
- **लोकप्रिय जासूसी कहानियाँ** सं. भविष्य कुमार सिन्हा 400.00
- **21 अनमोल कहानियाँ** प्रेमचंद 400.00
- **31 अमर कहानियाँ** प्रेमचंद 400.00
- **एक रोमांचक कहानी कोरोनाकाल की** अजय मोहन जैन 200.00
- **जादुई बाल कहानियाँ** सत्यजित रे 300.00
- **काले पानी की कलंक कथा** एस.के. नारंग 300.00
- **आजादी @ 75 : क्रांतिकारियों की शौर्यगाथा** विवेक मिश्र 500.00
- **ऑपरेशन योद्धा** सुशांत सैनी 500.00
- **पुलवामा अटैक** विकास त्रिवेदी/स्मिता अग्रवाल 350.00
- **भारत-चीन LAC टकराव** मुकेश कौशिक 300.00
- **भारत के जाँबाज** लेफ्टिनेंट जनरल सतीश दुआ (सेवानिवृत्त) 500.00
- **ऑपरेशन खुकरी** मेजर जनरल राजपाल पूनिया/दामिनी पूनिया 600.00
- **कारगिल गर्ल** फ्लाइट लेफ्टिनेंट गुंजन सक्सेना 500.00
- **कुछ अनसुनी फौजी कहानियाँ** रचना बिष्ट रावत 400.00
- **कारगिल : एक यात्री की जुबानी** ऋषि राज 300.00
- **भारत-इजराइल संबंध** परशुराम गुप्त 400.00
- **कलियुग सर्वश्रेष्ठ है** महायोगी स्वामी बुद्ध पुरी 250.00
- **त्रिशूलधारी** सत्यम् 500.00

पुस्तक	लेखक	मूल्य
मूर्ति-भंजन	क्षमा कौल	500.00
कोविड-19, जिंदगी-20	मृदुला सिन्हा	400.00
अथ श्रीमहाभारत कथा	शुभांगी भडभडे	500.00
अरण्य आदिम	तरुणकांति मिश्र	400.00
हसनपुर के राम	डॉ. परशुराम गुप्त	400.00
फिर जीते श्रीराम	बलबीरसिंह 'करुण'	350.00
लॉकडाउन की रिपोर्टर	इंदीवर	500.00
लव इन लखनऊ	पार्थ सारथी सेन शर्मा	250.00
वेदांत व जीवन प्रबंधन	विक्रांत सिंह तोमर	250.00
S.I.P. के चमत्कार से Financial Freedom कैसे पाएँ?	महेश चंद्र कौशिक	300.00
धरती-पुत्र भैरों सिंह शेखावत	बहादुर सिंह राठौड़	300.00
राष्ट्रनायक नरेंद्र मोदी : राष्ट्रवाद से समाजवाद की ओर	उषा विद्यार्थी	400.00
महापराक्रमी महाराणा प्रताप	आचार्य मायाराम 'पतंग'	300.00
बैड मैन : एक आत्मकथा	गुलशन ग्रोवर/रोशमिला भट्टाचार्या	450.00
पाप और प्रायश्चित	संजय भारती	250.00
मैं शबरी हूँ राम की	उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'	300.00
आधुनिक भारत के दिवंगत गणितज्ञ	वीरेंद्र कुमार	750.00
सदियों का सयानापन	सं. संजीव शाह	300.00
जीवन की भेंट	सं. संजीव शाह	350.00
बिहार के 25 महानायक	अशोक कुमार सिन्हा	400.00
म्यूचुअल फंड में Investment द्वारा मुनाफा कैसे कमाएँ	डॉ. योगेश शर्मा	300.00
अभिशप्त	डॉ. किसलय पांडेय	250.00
स्माइल	संदीप कुमार यादव	250.00
जेम्स वाट	गोपीकृष्ण कुँवर	250.00
रामायण से स्टार्टअप सूत्र	प्राची गर्ग	250.00
पक्षद्रोह	प्रदीप पांडेय	250.00
रवींद्र गीता	रवींद्र जैन	200.00
कोविड रामायण	माधव जोशी	750.00
चाणक्यमेंट	चद्रेंश मकवाणा	400.00
चाणक्य से सीखें सफलता के सीक्रेट्स	ए.के. गांधी	250.00
क्लासरूम में चाणक्य	महेश दत्त शर्मा	300.00
कैलास-मानसरोवर	राजीव गुप्ता	500.00
अर्थात् राष्ट्रवाद	नीरजा माधव	400.00
फिर से जिंदगी	धीरा खंडेलवाल	200.00
रहिमन पानी राखिए	मृदुला सिन्हा	400.00
प्रियतमा	फनी महांति	200.00
सबके राम	डॉ. प्रवेश कुमार/राजीव गुप्ता	300.00
महाभारत रिसता है	डॉ. सत्यभामा	300.00
शेयर Investment हैंडबुक	सी.ए. विक्रम नरसरिया	400.00
शेयर मार्केट में रु. 10,000 की इन्वेस्टमेंट से रु. 100 करोड़ कैसे कमाएँ	श्याम सुंदर गोयल	250.00
इन्वेस्टोनॉमी : अमीर बनने की स्टॉक मार्केट गाइड	प्रांजल कामरा	300.00
ऑप्शन ट्रेडिंग से पैसों का पेड़ कैसे लगाएँ	महेश चंद्र कौशिक	250.00
लिमिटलेस	जिम क्विक	500.00
इकीगाई	राज गोस्वामी	400.00
नौकरी नहीं, Business आइडिया ढूँढ़ो	एन. रघुरामन	200.00
बिजनेस में Success की चाबी है Technology	एन. रघुरामन	200.00
स्टार्टअप हो तो ऐसा हो	एन. रघुरामन	200.00
गुड वाइब्स, गुड लाइफ	वेक्स किंग	600.00
एलन मस्क के सक्सेस सीक्रेट्स	रैंडी किर्क	400.00
बिल गेट्स के मैनेजमेंट सूत्र	प्रदीप ठाकुर	250.00
वॉरेन बफे के इन्वेस्टमेंट लेसंस	प्रदीप ठाकुर	250.00
10 महान् व्यक्तियों के 100 महान् विचार	स्वाति गौतम	350.00
25 टॉप Motivators के Inspiring विचार	स्वाति गौतम	600.00
व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास	स्वामी विवेकानंद	300.00
पर्यावरण बचाने के लिए 31 अच्छी-अच्छी आदतें	रोहित मेहरा, IRS	250.00
एक IAS Aspirant की रोमांचक सक्सेस स्टोरी	पीयूष रोहनकर	300.00
द पावर ऑफ योर सब्कॉन्शस माइंड	जोसेफ मर्फी	250.00
द पावर ऑफ पॉजिटिव थिंकिंग	नार्मन विंसेंट पील	350.00
सफल और अमीर बनने के 16 सीक्रेट्स	नेपोलियन हिल	250.00
क्या आप अमीर बनना चाहते हैं?	नेपोलियन हिल	250.00
Mastermind और सफलता	नेपोलियन हिल	250.00
वैदिक गौ विज्ञान	सुबोध कुमार	400.00
शादी का लड्डू	चैताली हातीसकर	400.00
यायावर शब्दशिल्पी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी	सं. आशुतोष चतुर्वेदी	350.00
टोक्यो ओलंपिक के खिलाड़ियों की प्रेरक कहानियाँ	दिलीप कुमार	250.00
मानस में लौकिक ज्ञान	एस.के. गुप्ता	400.00

बिना पूर्व-सूचना के मूल्यों में परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रभात प्रकाशन
नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23257555
इ-मेल : prabhatbooks@gmail.com
हेल्पलाइन नं. ✆7827007777

व्यंग्य

लॉकडाउन, भ्रष्टाचार और उसके साथी

● हरदेव सिंह धीमान

भ्रष्टाचार एक लंबी अवधि से अपनी कोठरी में दुबका पड़ा था। लॉकडाउन के कारण स्कूल, कॉलेज, बाजार, दुकानें, सरकारी कार्यालय, गाड़ी मोटर, लोगों का आना-जाना, लेन-देन, विवाह-शादी, मिलना-जुलना आदि सब कुछ ही बंद थे, जिसके कारण छोटे-बड़े हर प्रकार के कारोबार भी बंद थे। रोज कमाकर खानेवालों का तो पूछो ही मत। बाजार, दुकानें, कारोबार बंद तो उसके लिए कौन सा कारोबार खुलता? छुटपुट बचत जब तक थी खाते रहे, जब वह भी समाप्त हो गई तो हवा पानी के ही भरोसे। आखिर यह भी कब तक चलता? भूखे पेट के लिए कुछ-न-कुछ भोजन तो चाहिए ही। बेचारा भ्रष्टाचार भी कब तक अपनी कोठरी में भूखा-प्यासा दुबका रहता? आखिर उसे भी तो जीवित रहना है? सोचता है कि आज नहीं तो कल लॉकडाउन हट जाएगा और कोई-न-कोई सरकारी दफ्तर खुल ही जाएगा, लोग आएँगे-जाएँगे, चहल-पहल होगी तभी कुछ काम-धंधा चलेगा पर यह लॉकडाउन तो दिन-प्रति-दिन आगे ही बढ़ रहा है सुरसा के मुँह की तरह। सोचा कुछ व्यापारिक प्रतिष्ठान खुल जाएँगे, पर वे भी वह भी जस-की-तस ही रहे।

बड़े-बड़े व्यापारी तथा कारोबारी सरकार से बाजार इत्यादि खोलने की माँग करने की तैयारी में हैं, भ्रष्टाचार ने सोचा शायद इनके साथ चलने से कुछ बात बन जाए कहीं रुपया-पैसा ले-देकर सरकार में उसके साथी मान जाएँ पर यह क्या? लॉकडाउन के चलते उसके सभी साथी उसका साथ छोड़ते नजर आ रहे हैं। बाजार दुकानें आदि समय कुछ समय के लिए जो खोली तो जाती रही, परंतु कारोबारियों के कारोबार पर सरकारी अधिकारियों की नजर तो थी ही। कहीं-कहीं सी.सी. कैमरे लगे होने से भी उसका काम बनता नजर नहीं आया। सरकार के कुछ कर्मचारी, अधिकारी उसके मित्र तो थे, परंतु वे आजकल उसके मौसेरे भाई कामचोर के ज्यादा नजदीक हो गए थे, इसलिए उसकी इनके साथ दाल न गली।

कामचोर को यदि वैसे देखें तो वह अपने सरकारी मित्रों के साथ हमेशा चिपका रहता था जहाँ वह यदा-कदा अपने मित्रों को अफसरों की डाँट खाते देखता रहता था, परंतु इस बार तो मजे हो गए। कामकाज कुछ नहीं सारा दिन मौज-मस्ती करो और महीने के बाद पूरी तनख्वाह। जब लॉकडाउन है तो लोग नहीं, लोग नहीं तो काम नहीं, काम नहीं तो दाम काहे के? यानी भ्रष्टाचार बेचारा गुमसुम सबकुछ भूखे-प्यासे देखता रहता, सहता रहता तथा मन ही मन 'करोना' को गाली देता। परंतु कामचोर के मजे-ही-मजे। मन-ही-मन कभी 'कोरोना' को धन्यवाद करता तो कभी सरकार को, कभी-कभी तो अपने भाग्य को कि इस बार

सुपरिचित लेखक। लेखन क्षेत्र में बाल-साहित्य के साथ बाल-कहानियाँ, रचनाएँ निरंतर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। माँ की सीख, आदमी से रक्षा, जंगल में दीवाली आदि अनेक कहानियाँ प्रकाशित।

उसे बिना माँगे ही मोती मिल रहे हैं। न अफसरों का डर है, न समय की पाबंदी। यानी कि हींग लगे, न फिटकरी रंग चोखा-का-चोखा।

कामचोर की तूती बोलती देख भ्रष्टाचार उससे चिढ़ने लग गया। एक महीना, दो महीना, तीन महीना चार महीना, लॉकडाउन लगातार बढ़ता ही गया। सरकारी दफ्तर, स्कूल, कॉलेज, इत्यादि या तो पूरी तरह बंद या आंशिक रूप से खुले, पर लॉकडाउन के नाम पर बोलबाला तो कामचोर का ही चल रहा था। बेचारा भ्रष्टाचार कामचोर का बोलबाला देखकर अपना मन मसोसकर रह जाता, क्योंकि इस बार कामचोर को खुली छूट जो मिली थी। यानि कि सरकारी मान्यता। भ्रष्टाचार कभी-कभार कामचोर के निकट जाने की कोशिश करता, परंतु वहाँ उसकी सुननेवाला ही कोई नहीं था क्योंकि दफ्तर में केवल छुटपुट कर्मचारी और आम लोग कोई नहीं। चूँकि भ्रष्टाचार का तो संबंध ही आम लोगों व सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों के आपसी तालमेल में रहता है, मगर वहाँ तो बड़ी ईमानदारी के साथ कामचोर का काम हो रहा था। ऐसे दोनों बिरादरी के कारोबारियों में ईर्ष्या या डाह होना तो स्वाभाविक ही था।

भुभुक्षु किं न करोति पापम् की युक्ति को चरितार्थ करते हुए एक दिन भ्रष्टाचार ने कामचोर से कह ही दिया, 'देखो पहले हम दोनों साथ-साथ ही चलते थे, परंतु लॉकडाउन के कारण अब तुम्हारा काम तो चल रहा है परंतु मेरी तो भूख-प्यास से हाल ही खराब है। मुझे लगता है कि मैं तो ऐसे में कहीं दम ही न तोड़ दूँ? क्यों न हम दोनों मिलकर ही करोबार करें?'

कामचोर ने कहा, 'चल-चल बड़ा आया उपदेश देनेवाला, कभी-कभी तो ऐसा मौका मिलता है और उसमें भी मैं तुम्हें भागीदार बनाऊँ, यानि अपने पेट में खुद लात मारूँ? ईमानदारी के साथ कारोबार करने का मौका मिला है उसमें भी भागीदारी? न बाबा न? न जाने अब ऐसा मौका फिर कब आएगा?'

भ्रष्टाचार बोला, 'अरे बड़ा स्वार्थी है? जब मेरा कारोबार अच्छा चल रहा था तो तू भी साथ होता था, पर अब जब मेरा कारोबार मंदा पड़

गया और मुझे भूखे मरने की बारी आई तो अब तू बड़ा बना फिरता है, देखना यह लॉकडाउन ज्यादा दिन नहीं रहेगा, तब तो हर जगह मेरा ही बोलबाला रहेगा और तेरे को कोई नहीं पूछेगा?'

'अच्छा, कोई नहीं पूछेगा? चल-चल दूर हो जा मेरी नजरों से।' कामचोर ने ऐसा कहते हुए भ्रष्टाचार को इतने जोर से धक्का मारा कि वह दूर जा छिटका।

इससे पहले कि भ्रष्टाचार जमीन पर गिर पड़ता मक्कारी ने हँसते-हँसते भ्रष्टाचार को सँभाल लिया।

दोनों को समझाते हुए मक्कारी कहने लगी, 'अरे मूर्खो! कभी-कभी तो ऐसा मौका मिलता है और तुम दोनों आदमियों की तरह आपस में ही लड़ रहे हो? समय हमेशा एक जैसा नहीं रहता, नीति कहती है कि बुरे वक्त में अपने कट्टर शत्रु से भी मित्रता करनी पड़ती है, नहीं तो न एक रहेगा न दूसरा? क्या तुम्हें पता नहीं है कि देश के सभी नेता एक-दूसरे का सिर फोड़ने के बाद भी अपने स्वार्थ के लिए आपस में मिल जाते हैं? पर हम सब तो नेता नहीं है और हमें एक-दूसरे के सिर फोड़ने की जरूरत भी नहीं है। हमें तो बस मिल-जुलकर अपना काम करना है, सिर तो खुद के खुद फट जाएँगे। इसलिए हमें अभी ही प्रण कर लेना है कि हम तीनों मिलकर अपना कारोबार करेंगे नहीं तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।'

मक्कारी का यह उपदेश सुन तीनों आपस में गले मिल गए और तीनों ने मिलकर काम करने की कसम खाई।

धीमान गृहम बरोली
पत्रालय दनावली, तहसील ननखरी
जिला शिमला-१७२०२१ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९८१७२१६३५५

ग़ज़ल

• राजेंद्र कलकल

हास्य कवि, ग़ज़लकार एवं कार्टूनिस्ट। 'मुँड़ेरों पर चराग' ग़ज़ल-संग्रह सहित अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़ल प्रकाशित।

वह सवालात मुझ पर उछाले गए
चाहकर भी न जो मुझसे टाले गए

था ये रोशन जहाँ, रोशनी उनसे थी
वो गए, साथ उनके उजाले गए

खत तो यों सैकड़ों मैंने उनको लिखे
जो भी दिल से लिखे, वो सँभाले गए

खार राहों में गैरों ने डाले मगर
दोस्तों के इशारों पे डाले गए

जग ने तारीफ जितनी भी मेरी सुनी
दोष उतने ही मुझमें निकाले गए

काम जब रखने लगा मैं काम से
जिंदगी कटने लगी आराम से

कल सभी वो जान जाएँगे जरूर
आज जो अनजान मेरे नाम से

बोलते हैं मुसकराकर झूठ जो
डरते हैं हम उनके हर इल्जाम से

छल-कपट फिर से वही करने लगा
जो अभी लौटा है चारों धाम से

ख्वाब में फिर वो मिलेंगे रात को
है चमक आँखों में 'कलकल' शाम से

ख्वाब में वो मुझे यूँ सताते रहे
दूर जाते रहे, पास आते रहे

इक सलीका अदाओं में उनकी रहा
पेश हम भी शराफत से आते रहे

थी कयामत की होंठों पे उनके हँसी
कह सके हम न दिल की, हँसाते रहे

इश्क में घर उजड़ते तो देखे बहुत
बावजूद इसके हम दिल लगाते रहे

जो लतीफों पे हँसते रहे गैर के
वह मेरी बात पर मुँह बनाते रहे

जब मुँड़ेरों पर चराग अपना जलाकर जाऊँगा
ऐ हवा, औकात तेरी मैं बताकर जाऊँगा

मेरी कीमत क्या है, मुझको ये पता भी तो चले
दाँव पर इस बार मैं खुद को लगाकर जाऊँगा

तोड़ ही डालेंगे फिर तो ये कफस को एक दिन
आस्माँ जब इन परिंदों को दिखाकर जाऊँगा

संग-दिल समझे न मुझको ये जमाना, इसलिए
मैं जहाँ में दिल किसी से तो लगाकर जाऊँगा

सिर्फ मेरे नाम से ही घर पहुँच जाएँगे खत
शहरतें दुनिया में 'कलकल' इतनी पाकर जाऊँगा।

१९४, पुलिस कॉलोनी, हौज खास
नई दिल्ली-११००१६

ब्रेख्त के नाट्य सिद्धांत का सामाजिक सरोकार

• प्रदीप त्रिपाठी

बर्टोल्ट ब्रेख्त रंगमंच की दुनिया के ऐसे सिद्धहस्त कलाकार हैं, जिन्होंने अपने चिंतन एवं नए प्रयोगों के जरिए लगभग ढाई हजार से चले आ रहे पारंपरिक रंगमंच के सफर पर कई सवाल खड़े कर दिए। पहले यह माना जाता था कि नाटक में दर्शक की समरसता से उसे एक तन्मयता एवं आनंदावस्था प्राप्त होती है। दर्शक को सह-अनुभव से गुजारकर कुरसी से चिपकाने की, उसे एक भ्रामक दुनिया में पहुँचाना कला-सौंदर्य के रस में डुबकियाँ लगवाने की कोशिश की जाती थी। ब्रेख्त ने इस प्रवृत्ति का विरोध किया। उनका मानना था कि सामाजिक जीवन के पारस्परिक मानव संबंधों को नाटक का विषय बनाना चाहिए साथ ही रंगमंचीय कला की दिशा में जटिल मानव समस्याओं के वर्गीय स्वरूप की पहचान करना, वर्गीय चेतना जगाना तथा उसके आधार पर नए जवाब एवं नए संकल्प सुझाने की तरफ होना चाहिए। गौरतलब है कि रंगमंच की दुनिया में जो स्थान ब्रेख्त का है या ब्रेख्त की चर्चा जिस रूप में होनी चाहिए, अब तक नहीं हुई है। ब्रेख्त के प्रतिरोध करने की शैली का अपना अलग अंदाज है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ब्रेख्त को नए सिरे से समझने एवं पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

बदलते यथार्थ के साथ-साथ ब्रेख्त ने अपनी कला के जरिए रंगमंच की ढाँचीय बुनावट की नब्ज को पकड़ा। ब्रेख्त का मानना था कि जीवन संघर्ष का मजबूती से खुलकर सामना करना एवं समस्याओं को हल करने की दिशा में सोचने से ही सच्ची कला का सृजन होता है। उदाहरण के लिए ब्रेख्त का प्रसिद्ध नाटक 'खड़िया का घेरा' उल्लेखनीय है। ब्रेख्त ने वस्तुत: यूरोपियन रंगमंच को यथार्थवाद के आगे का रास्ता दिखाया। उन्होंने रंगमंच को प्रतिरोध की नई ताकत मानते हुए हिस्ट्रीफिकेशन, एलिनेशन एवं इपिक थिएटर जैसे कई नए सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। ब्रेख्त नाटक को हमेशा प्रदर्शन की तरह देखना चाहते थे, यथार्थ की तरह नहीं। वे चाहते थे अभिनेता, अभिनेता की तरह लगे, चरित्र की तरह नहीं। इसी धारणा के आलोक में ब्रेख्त ने अभिनय के एलिनेशन सिद्धांत पर जोर दिया, जिसमें अभिनेता अपने चरित्र से दूर रहकर अभिनय करता था, वह एक साथ चरित्र भी था, उसका आलोचक या व्याख्याकार भी। चरित्र से अलग रहकर अभिनय करने से चरित्र के अंतर्विरोध उजागर होते थे, इसीलिए उन्होंने अभिनेता को चरित्र के मनोवैज्ञानिक व्यवहार की जगह सामाजिक व्यवहार खोजने की हिदायत दी। एक प्रकार से देखें तो ब्रेख्त अपने आप में रंगमंच की एक प्रयोगशाला थे। ब्रेख्त ने भारतीय रंगमंच के समक्ष ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की जो अब तक के रंगमंच से सबसे अलग एवं नया प्रयोग था। वह अन्य रंगमंच से अलग इसलिए भी दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि उनके नाटकों में पहली बार वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप दिखाई दिया। ब्रेख्त का उद्देश्य एक ऐसे अलग रंगमंच की स्थापना का था, जो राजनीतिक, निर्णायक एवं वर्णनात्मक हो। वर्णनात्मक से उनका तात्पर्य ऐसे नाटक से है, जो पारंपरिक एवं सुगठित नाटकों से सर्वथा भिन्न हो। वह एक ऐसा उदाहरणयुक्त भाषण हो, जिसका विषय राजनीतिक एवं सामाजिक हो। ब्रेख्त के रंगमंच की यह उपलब्धि रही कि उन्होंने शोषित एवं दमित वर्ग को अपने रंगमंच अथवा कथ्य का मुख्य विषय बनाया।

युवा कवि एवं सिक्किम से प्रकाशित हिंदी की पहली साहित्यिक पत्रिका 'कंचनजंघा' के संपादक। पूर्वोत्तर भारत की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के उन्नयन हेतु उल्लेखनीय योगदान। ८० के करीब राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में सहभागिता।

ब्रेख्त के शब्दों में कहें तो मनोरंजन के उद्देश्य के तहत यथार्थ या कल्पित घटनाओं के बीच मनुष्य के परस्पर संबंधों का चित्रण ही नाटक कहलाता है। गौरतलब है ब्रेख्त के समय में जर्मन रंगकर्म आत्ममुग्ध एवं बुर्जुआ प्रवृत्तियों का पक्षधर था, उस समय नाटकों में मानवीयता, महानता और उदात्तता की भावुक प्रवृत्तियों का ढोंग रचा जा रहा था। ऐसे समय में ब्रेख्त की स्वीकारोक्ति थी कि नाटक का उद्देश्य मूलतया दर्शकों को आनंद प्रदान करना अथवा उनका मनोरंजन करना ही होता है, परंतु वे बाद में जाकर इसकी पृष्ठभूमि में पुन: विचार करते हैं कि "नाटकों का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन मात्र नहीं, बल्कि वर्तमान समय और समाज से परिचय करवाना भी है। रंगमंच का काम दर्शकों के सामने सच्ची घटनाओं का भ्रम फैलाना है। इस कला में जो जितना सफल होता है वह उतना ही बड़ा रचनाकार होता है।" ब्रेख्त ने अपने नाटकों के लिए जो विचारधारा प्रतिपादित की उसे इपिक थिएटर का नाम दिया। जागरूक अभिनय, भावहीन तटस्थ वृत्ति, आस-पास की नई और जटिल सामाजिक गतिविधियों का वर्णन और दुनिया को बदलने की इच्छा इन चार सूत्रों

के आधार पर ब्रेख्त के नाटक संबंधी विचार विकसित हुए। ब्रेख्त ने इस थिएटर को 'थिएटर ऑफ सोशल एक्शन' के लिए बनाया। ब्रेख्त ने अपने थिएटर को पारंपरिक थिएटर से अलग करने के लिए इपिक थिएटर का इस्तेमाल किया, दूसरे शब्दों में कहें तो ड्रामेटिक थिएटर के रूप के विरुद्ध ब्रेख्त के थिएटर ने बगावत की। उनका मानना था कि 'ड्रामेटिक फॉर्म ऑफ थिएटर' दर्शक को एक ऐसी भूमिका निभाने लिए मजबूर कर देता है, जो दर्शक को कार्यान्वित (क्रियान्वित) करने के बजाय एक निष्क्रिय इकाई बनाकर छोड़ देता है। ब्रेख्त ने अपनी इस अवधारणा के जरिए ऐतिहासिक विषयों को समकालीन संदर्भों से जोड़कर नई दृष्टि विकसित करने की कोशिश की। इस रंगमंच के द्वारा दर्शकों को यह समझाने की कोशिश थी कि अगर चीजें ऐसे घटित हुई तो वह घटनाक्रम गलत था और वैसा नहीं होना चाहिए था, जबकि पारंपरिक थिएटर में वही प्रयोग इस प्रकार से होता था कि चीजें ऐसे ही चली आ रही हैं और यह घटनाक्रम भी गलत था, अर्थात् घटना भी सही नहीं है। पारंपरिक यथार्थवादी थिएटर अपनी प्रवृत्तियों में एक्शन को इस प्रकार की स्थिरता प्रदान करता है कि दर्शक को यह आभास होने लगता है कि नाटक जैसी परिस्थितियाँ वास्तव में बदली नहीं जा सकती।

ब्रेख्त ने अपनी इस अवधारणा के जरिए ऐतिहासिक विषयों को समकालीन संदर्भों से जोड़कर नई दृष्टि विकसित करने की कोशिश की। इस रंगमंच के द्वारा दर्शकों को यह समझाने की कोशिश थी कि अगर चीजें ऐसे घटित हुई तो वह घटनाक्रम गलत था और वैसा नहीं होना चाहिए था, जबकि पारंपरिक थिएटर में वही प्रयोग इस प्रकार से होता था कि चीजें ऐसे ही चली आ रही हैं और यह घटनाक्रम भी गलत था, अर्थात् घटना भी सही नहीं है।

ब्रेख्त ने अपने रंगमंच का आधार कथनात्मक अथवा अनाटकीय ही माना। इपिक थिएटर का आधार ब्रेख्त ने अलगाव और पृथकीकरण से जोड़ा। उन्होंने अपने रंगमंच के जरिए यह समझने का प्रयास किया कि दर्शकों को मंच पर यथार्थ को भ्रम के रूप में न दिखाकर मानव स्वभाव के एक नमूने के तौर पर पेश किया जा रहा है, जो सिर्फ काल्पनिक यथार्थ है। उक्त संदर्भों के आलोक में वाल्टर बेंजामिन ने ब्रेख्त के इपिक थिएटर पर टिप्पणी करते हुए कहा, "वह एक साथ दो तरह के प्रभाव छोड़ते हैं, ब्रेख्त जहाँ नाटकीय तत्त्वों को ध्वस्त करते हैं वहीं वह दर्शक को सोचने के लिए मजबूर करने के साथ-साथ एक अलग किस्म का हास्य पैदा करके तनाव मुक्त भी करते हैं।" ब्रेख्त के अनुसार जिस प्रकार दर्शक और नाटक में किसी प्रकार का तादात्मीकरण वांछनीय है ठीक उसी प्रकार कलाकार और पात्र में भी तादात्मीकरण नहीं होना चाहिए। जैसे गॉडो की भूमिका करने वाला अभिनेता यह सुनने के लिए बड़ा इच्छुक होता है कि 'तुम गॉडो का अभिनय नहीं कर रहे थे, तुम गॉडो ही लग रहे थे।' इस प्रकार की भावना वर्णनात्मक रंगमंच के लिए घातक है। अभिनेता को चाहिए कि वह पात्र से अपना तादात्मीकरण न होने दे। उसका तादात्म्य होते ही दर्शक का तादात्म्य उससे हो जाएगा। ब्रेख्त के रंगमंच के संदर्भ में हबीब तनवीर की यह उक्ति बहुत ही सटीक प्रतीत होती है—"ब्रेख्त आपको अपनी अस्मिता बनाए रखना सिखाते हैं, इसीलिए अगर भारतीय नाटककार एक वास्तविक देशज रंगमंच विकसित करते हैं तो वह साथ ही साथ सचमुच ब्रेख्तियन थिएटर भी होगा। दूसरे शब्दों में वह ऐसा रंगमंच होगा, जो न केवल भारत की शास्त्रीय और लोक परंपरा को आत्मसात करने वाला हो जिसके मंचन में संगीत और नृत्य समाहित होंगे, बल्कि वह साथ-साथ सार्वदेशिक भी होगा।" ब्रेख्त ने अपने समय के रंगमंच को वास्तविकता के धरातल पर न सिर्फ चुनौती दी, बल्कि रंगमंच की संरचना को तोड़ते हुए एक नई दृष्टि भी विकसित की।

लोक नाटकों में पहले से जो गीतों की परंपरा चली आ रही थी, वह ब्रेख्त के यहाँ जीवित मिलती है। ब्रेख्त को इससे एक फायदा और मिला कि वह अपने नाटकों में सूत्रधार के माध्यम से कहानी को संक्षिप्त कर लिए। गौरतलब है, ब्रेख्त के गीतों की एक-एक पंक्तियाँ अपने आप में व्यापक अर्थ-बोध लिये हुए होती हैं। मिसाल के तौर पर 'खड़िया का घेरा' की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—"गायक : एक समय की बात बताऊँ/ बहुत पुरानी/दिन थे भीषण मारकाट के/रक्तपात के !/ बात पुरानी तब की/जब यह शहर/अभागों की बस्ती माना जाता था/इसमें एक गवर्नर भी था/नाम जार्जी आबाशविली था/बात पुरानी बतलाता हूँ।" ब्रेख्त ने अपने नाटकों में काव्यात्मक पक्ष पर अधिक जोर दिया, इसलिए उन्होंने अपने नाटकों में समूहगान का भरपूर इस्तेमाल किया। ब्रेख्त इस बात से कभी सहमत नहीं थे कि रचनाओं में साहित्यिक मूल्यों की बलि दी जाए। उन्होंने नाटक के भीतर एक काल्पनिक नाटक खेलने की प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया।

इसमें ब्रेख्त ने अंधशक्तियों, पराशक्तियों, प्रतिबद्धता के नमूने, रंग-प्रयोग, रंग-संकेत एवं मुहावरों आदि का प्रयोग बड़े ही सजग ढंग से किया है। ब्रेख्त के अनुसार दर्शक की भावनाएँ प्रेरित न करके इसे सोचने के लिए विवश करना चाहिए। ब्रेख्त के विचार से नए रंगमंच को वाह्य यथार्थ के सत्यभास को प्रस्तुत करने की भावना को समाप्त कर देना है। दर्शकों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वे नाटक में अपनी आँखों के समक्ष उसी क्षण घटने वाली जीवन की कुछ घटनाओं को ही नहीं देख रहे हैं, बल्कि वे एक रंगशाला में बैठे हुए हैं और वृत्तांत को सुन रहे हैं साथ ही उन घटनाओं को देख रहे हैं, जो अतीत में किसी एक स्थान पर घटित हुई हैं।

हिस्टरीफिकेशन (ऐतिहासिकता का बोध) ब्रेख्तियन रंगमंच के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। इसका आशय यह था कि रंगमंच में जो भी नाट्य-सामग्री इस्तेमाल की जाए, वह वर्तमान से न होकर किसी अन्य समय अथवा स्थल से ली जाए। इस तरह के प्रयोग से दर्शक एवं मंच के बीच एक निश्चित दूरी बनाई जा सकती है, जिससे दर्शक में विश्लेषण की शक्ति जाग सके। ब्रेख्त का मानना था कि नाटककार का यह दायित्व होना चाहिए कि घटनाक्रम के अतीत पर जोर देकर वर्तमान से दूरी कायम करते हुए दर्शक के लिए उस एक्शन में शामिल होने की संभावना को खत्म कर दे। अगर रंगमंच के माध्यम से यह संभव है तो ब्रेख्त के अनुसार तब यह

भी संभव है कि वर्तमान में भी सामाजिक स्तर पर उपयुक्त परिवर्तन लाए जा सकते हैं। ब्रेख्त का रंगमंच सच्चे अर्थों में ऐतिहासिकता का रंगमंच है। वह हमेशा दर्शकों को इस बात का एहसास करवाता है कि वे सिर्फ अतीत की घटनाओं का एक वृत्तांत प्राप्त कर रहे हैं।

ब्रेख्त का रंगमंच बहिर्मुखी है। ब्रेख्त ने अपने नाटकों में पात्रों के आंतरिक जीवन से हटकर उनके पारस्परिक व्यवहारों एवं संबंधों पर जोर दिया। 'खड़िया का घेरा' नाटक की पात्र ग्रूशा इस बात की सशक्त गवाह है। ब्रेख्त ने अपनी रंगमंचीय युक्तियों के जरिए रंगमंच में ऐसे परिवर्तन लाए कि वर्तमान रंगमंच एक आदर्श रंगमंच के रूप में उभरे। रंगमंच की दुनिया में ब्रेख्त के तमाम प्रयोगों में एलिनेशन (अलगाव) का सिद्धांत काफी चर्चा में रहा। ब्रेख्त ने अपने रंगमंच में काल्पनिक पक्षों का इस्तेमाल सीमित रूप में इसलिए किया, क्योंकि काल्पनिक स्थितियाँ दर्शक को जल्दी आकर्षित करती हैं। ब्रेख्त ने पाने नाटकों में गीतों, नेरेशन एवं फिल्मी क्लिप्स का प्रयोग करना शुरू कर दिया, जिससे नाटकों में घटनाक्रम यथार्थ के साथ कभी दिग्भ्रमित न किए जाएँ। उन्होंने उपयोगिता के आधार पर सेट, शीन एवं डिजाइन की संरचना को तोड़ा, जिससे दर्शक अपने आधार पर उस सारी व्यवस्था को समझे और अभिनेता पर सेट का अधिक दबाव न रहे।

ब्रेख्त एक तटस्थ दृष्टि रखने वाले जागरूक कलाकार एवं नाट्य-सर्जक थे। रंगमंच के जरिए ब्रेख्त ने दर्शक के अंदर ऐसी दृष्टि विकसित करने की कोशिश की, जिससे दर्शक नाटक देखने के उपरांत दर्शक सोचे और सवाल किए बगैर न रहे, साथ ही दर्शक ने मंच पर जो देखा, उस पर अपना निर्णय दे। ब्रेख्त ने स्पष्ट किया कि कला का महत्त्व तभी तक है, जब तक कि मनुष्य जाति का अस्तित्व है। मनुष्य का अस्तित्व यदि समाप्त हो जाता है तो कला भी स्वयं नष्ट हो जाएगी। ब्रेख्त की यही रचनात्मक संवेदना उन्हें रंगमंच की दुनिया में अन्य नाटककारों एवं कलाकारों से अलग करती है।

सा.अ.
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
काजीरोड, गंगटोक-७३७१०१ (सिक्किम)
दूरभाष : ६२९४९१३९००

लघुकथा

व्यापार

• **प्रतिभा चौहान**

वह कुछ दिनों से ही काम पर लगी थी। हालाँकि और घरों में बहुत पहले से वह झाड़ू-पोंछा का काम कर रही थी। दिसंबर की हाड़ कँपा देनेवाली सर्दी में वह हमेशा एक साड़ी में कँपकँपाती हुई फ्लैट के मेन गेट का दरवाजा खटखटाती थी। कुछ दिनों तक देखने के बाद जब सरिता से न रहा गया, तो एक दिन पूछ ही लिया, 'यह बता, तुझे सर्दी नहीं लगती?'

'क्या करूँ मैडमजी, गरीब हूँ, पति शराबी है, मैं चार घर काम करती हूँ तो सिर्फ खाने भर का कमा पाती हूँ।'

उसने सोचा, क्यों न अपने घर में रखे कुछ पुराने कपड़े दे दूँ। इन कपड़ों का अच्छा इस्तेमाल भी हो जाएगा और एक गरीब की मदद भी हो जाएगी। इसी बीच उसने कुछ-कुछ गरम कपड़े निकालकर काजल को देने चाहे। स्वेटर निकालते वक्त थोड़ा ठिठकी, कितने प्यार से यह स्वेटर उसकी माँ ने उसे दिया था। माँ की निशानी देने का मन बिल्कुल ही नहीं था, पर चलो कोई बात नहीं, किसी गरीब का भला होगा, यह सोचते हुए उसने दो स्वेटर, एक शॉल, दो जोड़ी मोजे उसे देकर मन को बहुत तसल्ली दी, जैसे आज कोई बहुत बड़ा पुण्य का काम किया है, मन-ही-मन बहुत सुकून का एहसास हुआ। एक सप्ताह तक काजल उन्हीं कपड़ों को पहनकर काम पर आती। जितनी बार सरिता उसे देखती, एक तसल्ली दिल को मिलती। परंतु यह क्या एक सप्ताह के बाद काजल के वही रंग-ढंग देखकर मूड़ खराब हो गया और बड़ी भी निराशा हुई। जब रहा न गया तो सरिता एक दिन खीजकर पूछ ही बैठी, "कपड़े पहनकर क्यों नहीं आती, स्वेटर, शॉल अच्छे नहीं लगे?"

"नहीं मैडमजी, ऐसी बात नहीं है, शॉल ओढ़कर जल्दी-जल्दी काम नहीं हो पाता है।"

"मोजे भी नहीं पहने तूने, क्यों नहीं पहने?"

"पोंछा लगाते समय मोजे भीग जाते हैं।"

"और स्वेटर, वे भी तो दिए थे?"

काजल ने अब जवाब देना बंद कर दिया तो मन को बहुत ठेस लगी। बहुत अफसोस हुआ और बुरा भी लगा, सोचा स्वेटर तो मेरी शादी में माँ ने मुझे दिया था बेकार ने दिया इससे अच्छा तो मैं इसको न देती मन में बड़ी कोफ्त हुई।

धीरे-धीरे उसे पता चला कि काजल को कॉलोनी के हर घर से कपड़े मिले हैं, परंतु हर बार गरीबी का बहाना बनाकर और अपने आपको मजबूर और लाचार प्रस्तुत करके सबसे कपड़े माँगती और बाद में बाजार जाकर भेज देती। अपनी गरीबी को हथियार बनाकर उसने व्यापार शुरू कर दिया था। सच में इस बार मन को बहुत ही कष्ट हुआ, वह क्या समझेगी रिश्तों की अटूट श्रद्धा को! माँ के द्वारा दिए गए स्वेटर में जो अपनेपन और प्यार दुलार की गरमाहट थी, जिसे महसूस करनेवाला कोई न था।

सा.अ.
अपर जिला न्यायाधीश, बिहार
दूरभाष : ०८७०९७५५३७७

गोपाल कृष्ण गोखले

महात्मा गांधी को लोग 'राष्ट्रपिता' और 'अहिंसा का पुजारी' कहते हैं। उन्होंने देश-विदेश के असंख्य लोगों के जीवन को प्रभावित किया, किंतु वे स्वयं किससे प्रभावित थे—यह बहुत से लोग नहीं जानते हैं। वह थे—गोपाल कृष्ण गोखले। गोखले को महात्मा गांधी अपना गुरु व प्रेरणास्रोत मानते थे।

गोखले का जन्म ९ मई, १८६६ को पूर्व बंबई प्रेसीडेंसी के रत्नागिरि जिले के कोतलुक गाँव के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री कृष्णराव कोल्हापुर रियासत के कागल नामक एक छोटे सामंती रजवाड़े में क्लर्क थे। बाद में वह पुलिस सब-इंस्पेक्टर बन गए। उनकी माँ कोतलुक गाँव के ओक परिवार से संबंध रखती थीं। वह पढ़ी-लिखी नहीं थीं, फिर भी उन्हें 'रामायण', 'महाभारत' की अनेक कथाएँ-उपकथाएँ याद थीं। बालक गोपाल को वे कथाएँ तथा संतों के भजन सुनाया करती थीं। गोपाल कृष्ण गोखले के बड़े भाई का नाम गोविंद और छोटे भाई का गोपाल था। उनकी चार छोटी बहनें भी थीं।

गोखले ने प्रारंभिक शिक्षा एक स्थानीय विद्यालय में पाई थी। सन् १८७४-७५ में गोखले आगे की शिक्षा पाने के लिए अपने बड़े भाई के साथ कोल्हापुर गए। वहाँ वह पूरी तरह पढ़ाई में निमग्न हो गए। सन् १८७९ में उनके पिता का देहांत हो गया, जिससे परिवार के पोषण की समस्या खड़ी हो गई।

सन् १८८० में गोखले का विवाह कर दिया गया। उनकी पत्नी श्वेत कुष्ठ से पीड़ित थीं। अत: उनके भाई-भाभी ने दूसरा विवाह करने के लिए उन पर दबाव डाला। उन्होंने अपनी पहली पत्नी की सहमति लेकर न चाहते हुए भी दूसरा विवाह कर लिया। उनकी दूसरी पत्नी ने एक पुत्र व दो पुत्रियों को जन्म दिया। उनके पुत्र का निधन छोटी आयु में ही हो गया। इसके बाद सन् १९०० में उनकी दूसरी पत्नी स्वर्ग सिधार गईं। गोखले ने अपनी दोनों पुत्रियों—काशीबाई व गोदूबाई को अच्छी शिक्षा दी।

न्यू इंग्लिश स्कूल में शिक्षण-कार्य के दौरान गोखले का परिचय अंकगणित के प्रसिद्ध अध्यापक एन.जे. बापट से हुआ। उनके साथ मिलकर गोखले ने गणित की एक पाठ्य-पुस्तक तैयार की। तिलक को वह पुस्तक बहुत पसंद आई। उन्होंने उस पुस्तक को प्रकाशित कराने का परामर्श दिया। प्रकाशित होने पर वह पुस्तक देश के कई स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल कर ली गई। पुस्तक की बिक्री से गोखले को रॉयल्टी के १,५०० रुपए मिले। बाद में अन्य भाषाओं में भी उस पुस्तक का अनुवाद करवाया गया।

गोखले सन् १८८६ में 'दक्कन एजुकेशन' सोसाइटी के आजीवन सदस्य बने। यद्यपि गोखले ने पत्रकारिता को पूरी तरह जीविका के रूप में नहीं अपनाया था, किंतु उन्होंने 'मराठा' पत्र के लिए कुछ लेख भी लिखे और 'केसरी' के लिए समाचारों के संग्रह व सार-संक्षेपण का कार्य भी किया। इसी दौरान आगरकर ने 'सुधारक' नामक पत्रिका निकाली, जिसके अंग्रेजी भाग का कार्यभार सन् १८८८ में उन्हें सौंपा गया।

गोखले की देशभक्ति और लेखनी ने उन्हें कई पत्र-पत्रिकाओं से जोड़ा। उनके लेखों की बहुत प्रशंसा हुई। इससे पहले सन् १८८६-८७ में ही 'जनरल वार इन यूरोप' शीर्षक से उन्होंने एक लेखमाला भी लिखी। इसी शृंखला में उन्होंने बंबई के गवर्नर वार्ड रेई के पक्ष में 'शेम, शेम, बाई लॉर्ड, शेम' शीर्षक से एक लेख लिखा। उस गवर्नर को वह लेख इतना पसंद आया कि वह पत्रिका का ग्राहक ही बन गया।

सन् १८८७ से गोखले का निजी जीवन धीरे-धीरे उनके सार्वजनिक जीवन का ही अंग बनने लगा था। सन् १८८७-८९ में गोखले ने खेलों में भी अपना कौशल दिखाया। वह क्रिकेट, बिलियर्ड्स, शतरंज, ताश आदि खेलों में भी रुचि रखते थे। एक बार इंग्लैंड से स्वदेश लौटते समय उन्होंने एक अंग्रेज को बिलियर्ड में हराया था। इन खेलों से वह जीवन भर जुड़े रहे।

रानाडे को अपना गुरु माननेवाले गोखले ने सन् १८८९ में कांग्रेस में कदम रखा। लोकमान्य तिलक भी इसी वर्ष कांग्रेस में शामिल हुए। यद्यपि तिलक की भाँति गोखले कभी गरम दलीय नेता नहीं बन सके, किंतु उनके विद्रोही स्वर सदैव मुखरित होते रहे। देश में उस समय ऐसी कई संस्थाएँ काम कर रही थीं, जो लोगों की शिकायतों को प्रकाश में लाती थीं। सन् १८८८ में गोखले को ऐसी ही एक संस्था 'पूना एसोसिएशन' का अवैतनिक मंत्री बनाया गया। इस सभा से ही गोखले की देश-सेवा की शुरुआत हुई।

इस पद के साथ उन्हें एक अन्य कार्यभार भी सौंपा गया। सभा द्वारा एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाता था। उसके संपादन का दायित्व भी गोखले के कंधों पर डाल दिया गया। उनके संपादन में पत्रिका के छब्बीस अंक प्रकाशित हुए। उन सभी में प्रकाशित उनचास लेखों में गोखले ने केवल आठ-नौ लेख ही लिखे थे। यद्यपि

उनके मार्ग में कई कठिनाइयाँ आईं, किंतु वह विचलित हुए बिना अपना कर्तव्य निभाते रहे।

बंबई विश्वविद्यालय के विकास में भी श्री गोखले का बहुत योगदान रहा। वह कई वर्ष तक उसके सीनेट के सदस्य बने रहे। उन्होंने इतिहास को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में जगह दिलाने के लिए काफी कोशिश की। इसी कारण से उन्हें सन् १८९५ में बंबई विश्वविद्यालय का फेलो बना दिया गया। इसी वर्ष उन्होंने 'राष्ट्रसभा समाचार' के संपादक के पद पर भी कार्य किया। साथ ही वह तिलक के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सहसचिव के रूप में भी सेवाएँ देते रहे।

सन् १८९७ में गोखले को पहली बार इंग्लैंड की यात्रा करने का अवसर मिला। उस वर्ष मार्च से जुलाई तक वे इंग्लैंड में रहे। इंग्लैंड जाते समय वह कैले में प्रतीक्षालय में गिर पड़े, जिससे उनके हृदय में चोट आई और उन्हें पंद्रह दिनों तक बिस्तर पर आराम करना पड़ा। वहाँ श्रीमती कासग्रेव ने उनकी बहुत सेवा की। इस इंग्लैंड यात्रा में गोखले को भारत तथा ब्रिटेन की सरकारों के मध्य प्रभारों के आवंटन के उद्देश्य से गठित किए गए वेल्बी आयोग के समक्ष प्रस्तुत होना था। उनके साथ सुरेंद्रनाथ बनर्जी और जी. सुब्रह्मण्यम भी इंग्लैंड गए थे। आयोग के सामने दिए गए साक्ष्यों के बाद वह इतिहास में एक देशभक्त, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हो गए। उन्होंने देश का आर्थिक विकास किए जाने पर विशेष बल दिया था तथा भारतीय बजट, रेल-व्यवस्था, भारतीय सिविल सेवा संवर्ग आदि में सुधार की विशेष सिफारिश की।

अब गोखले ने समाज-सेवा और राजनीति के लिए अपना जीवन अर्पित करने का निश्चय कर लिया था। अपने मित्रों के परामर्श पर उन्होंने सन् १८९९ में बंबई विधान परिषद् का चुनाव लड़ा और जीत गए। यह उनके राजनीतिक जीवन की पहली सफलता थी। लोगों को विश्वास था कि गोखले विधान सभा मंच पर सरकार का मुकाबला करने में सक्षम व्यक्ति हैं।

इसी बीच गोखले को एक आघात लगा। सन् १९०१ के प्रारंभ में गोखले के गुरु महादेव गोविंद रानाडे का देहांत हो गया। लेकिन उनकी प्रेरणा से उन्होंने फिरोजशाह मेहता से सर्वोच्च विधान परिषद् में भाग लेने की इच्छा जाहिर की। फिरोजशाह उनके भीतर छिपे असाधारण देश-सेवक को पहचानते थे। उनके प्रयासों से गोखले को सर्वोच्च विधान परिषद् का अध्यक्ष बना दिया गया। उस समय उनकी उम्र छत्तीस वर्ष थी।

बंबई विधान परिषद् की सदस्यता व कार्यों के बावजूद उन्होंने फर्ग्युसन कॉलेज में अन्य कार्य जारी रखे थे। उन्होंने १२५ रुपए मासिक की आय सुनिश्चित कर ली थी। सन् १९०२ में कॉलेज से सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें ३० रुपए प्रतिमाह पेंशन मिलनी भी तय थी। वह सेवानिवृत्ति के बाद देश के प्रति समर्पित हो जाना चाहते थे।

१२ जून, १९०५ को गोखले के पुराने सहयोगी शिवराम हरि साठे ने पूना में 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' की आधारशिला रखी। स्नातकोत्तर संस्थान के रूप में स्थापित इस सोसाइटी से देश के कई महान् नेता जुड़ते चले गए और इसकी शाखाओं का विस्तार होता चला गया। गोखले ने इसके संविधान व नियमावली को तैयार किया था। इसके सदस्य नाममात्र के वेतन पर आजीवन देश-सेवा का व्रत लेते थे।

गोखले विभिन्न कार्यों से सात बार इंग्लैंड गए। वहाँ का मौसम उन्हें रास नहीं आता था। फिर भी देश की खातिर वह बार-बार वहाँ गए। सन् १९१४ में वहाँ बहुत बीमार पड़ गए। डॉक्टरों ने उनका इलाज करके उस समय तो उन्हें बचा लिया, किंतु वे अपनी बीमारी की गंभीरता भाँप गए थे। इसलिए उन्होंने अपनी वसीयत बना डाली। वह वसीयत 'राजनीतिक वसीयत और इच्छा-पत्र' के रूप में थी। उसमें उन्होंने भारतीय प्रशासन में सुधारात्मक परामर्श दिए थे, ताकि देश का राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक विकास हो सके।

१९ फरवरी, १९१५ को गोखले का देहांत हो गया। इस शोक में गांधीजी ने एक वर्ष तक नंगे पैर रहने का प्रण किया था।

वीर सावरकर

स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर एक बहादुर और कट्टर देशभक्त थे। उनका जन्म २८ मई, १८८३ को महाराष्ट्र में नासिक के निकट भगूर नामक गाँव में हुआ था। उनके माता-पिता मध्यमवर्गीय परिवार के थे। माता राधाबाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। वे अत्यंत दयालु और ईमानदार थीं। पिता पं. दामोदर पंत अपनी विद्वत्ता के कारण दूर-दूर तक जाने जाते थे।

बचपन से ही विनायक में विलक्षण काव्य-प्रतिभा थी। दस वर्ष की आयु में ही उनकी पहली कविता मराठी के एक लोकप्रिय पत्र में प्रकाशित हुई। पत्र के संपादक को यह जानकर बड़ी हैरानी हुई कि कविता के रचयिता की उम्र मात्र दस वर्ष है। माता-पिता अपने बेटे में इन गुणों को देख फूले न समाते। दस वर्ष की उम्र में ही बालक विनायक के सिर से माँ का साया उठ गया। पिता दामोदर पंत ने अपने बेटे को पिता के साथ-साथ माँ का प्यार देना भी शुरू कर दिया। उन्होंने अपने बेटे को कभी माँ की कमी महसूस नहीं होने दी।

सन् १८९७ में, पूना में भयानक प्लेग फैल गया। जिसकी चपेट में आकर घर-के-घर साफ होने लगे। जनता में त्राहि-त्राहि मच गई। उस समय विनायक की आयु मात्र चौदह वर्ष थी। उन्होंने स्पष्ट महसूस किया कि देश की जनता भयानक कष्ट सह रही है और अंग्रेज सरकार चैन की नींद सो रही है। वह प्लेग से बचने या उस पर काबू पाने के लिए कोई कदम नहीं उठा रही है।

समाचार-पत्रों में जब चाफेकर बंधुओं को फाँसी दिए जाने का समाचार छपा तो जनता भड़क उठी। विनायक ने जब यह समाचार पढ़ा

तो उनके हृदय में आक्रोश उमड़ पड़ा। उन्होंने कुलदेवी माँ दुर्गा के समक्ष शहीद चाफेकर के अधूरे लक्ष्य को पूरा करने का प्रण किया। इसके बाद विनायक ने अपने जीवन के इस लक्ष्य के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। यहीं से विनायक की संगठन योजना शुरू हो गई। उन्होंने अपने सहपाठी छात्रों व मित्रों की सहायता से 'मित्र मेला' नामक संस्था का गठन किया। इस संस्था के माध्यम से 'गणेश उत्सव' और 'शिवाजी महोत्सव' के कार्यक्रम आयोजित करके देश के युवाओं में सशस्त्र क्रांति का प्रचार किया गया।

सन् १९०१ में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के निधन पर जब देश भर में जगह-जगह शोक-सभाएँ होने लगीं तो विनायक ने मित्र मेला की बैठक बुलाकर शोक-सभाओं का विरोध किया। बैठक में विनायक सावरकर ने स्पष्ट रूप से कहा, ''ब्रिटेन की रानी हमारे दुश्मनों की रानी है। हम उसका शोक क्यों मनाएँ? यदि अपने को गुलामी की बेड़ियों में जकड़नेवाली रानी की मृत्यु पर हम शोक मनाते हैं तो यह हमारी गुलाम-वृत्ति का परिचायक समझा जाएगा।'' इस विरोध के कारण जनता में विनायक के प्रति सम्मान की भावना जाग उठी।

विनायक सावरकर का विवाह सन् १९०१ में यमुनाबाई से हुआ। उनकी तीन संतानें हुईं—दो पुत्रियाँ और एक पुत्र। उनकी एक पुत्री का देहांत बचपन में ही हो गया था। उसी दौरान विनायक सावरकर की मुलाकात 'काल' पत्र के संपादक परांजपे से हुई। विनायक की देशभक्ति की भावना और उनकी रचनाओं से परांजपे बहुत प्रभावित हुए।

उन दिनों पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा लंदन से 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्र निकाल रहे थे। सन् १९०१ में उन्होंने अपने पत्र में प्रतिभाशाली भारतीय छात्रों को इंग्लैंड में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति की घोषणा प्रकाशित की। लोकमान्य तिलक की सिफारिश पर विनायक सावरकर के लिए छात्रवृत्ति स्वीकार कर ली गई। अब उन्होंने इंग्लैंड जाकर कानून की पढ़ाई करने का निश्चय किया।

९ जून, १९०६ को सावरकर इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। उनके अन्य समर्थकों के साथ लोकमान्य तिलक उन्हें विदाई देने के लिए बंबई बंदरगाह पर उपस्थित थे।

इंग्लैंड पहुँचकर सावरकर लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा से मिले। उसके बाद उन्होंने कानून की पढ़ाई करने के लिए लंदन विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। पढ़ाई के साथ-साथ वे देश के काम में भी लगे रहे। लंदन में विनायक सावरकर ने 'फ्री इंडिया सोसाइटी' नामक एक संस्था की स्थापना की। उस समय के प्रसिद्ध क्रांतिकारी भाई परमानंद, सेनापति बापट, मदनलाल ढींगरा, लाला हरदयाल, हरनाम सिंह जैसे लोग फ्री इंडिया सोसाइटी के सदस्य बन गए। इस प्रकार भारत का स्वतंत्रता संग्राम विदेशी धरती पर भी गति पकड़ने लगा।

ब्रिटेन की खुफिया पुलिस को इसकी भनक लग गई। सरकार का यह आदेश हो गया कि पुस्तक को जब्त कर लिया जाए। बड़ी सावधानी बरतते हुए पुस्तक की पांडुलिपि भारत भेज दी गई। यहाँ उसे गुप्त रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया, परंतु पुलिस ने मुद्रणालयों पर छापा मारकर पुस्तक को प्रकाशित नहीं होने दिया। पांडुलिपि पुन: सुरक्षित सावरकर के पास पहुँच गई। उसके बाद उसका अंग्रेजी में अनुवाद करके इसे हॉलैंड से प्रकाशित करवाया गया और उसकी हजारों प्रतियाँ फ्रांस भेज दी गईं। उसके बाद पुस्तक की कई-कई प्रतियाँ इंग्लैंड से बाहर सभी देशों में भेजी गईं। कुछ प्रतियाँ भारत भी पहुँच गईं।

१ जुलाई, १९०९ को भारतीय क्रांतिकारी मदनलाल ढींगरा ने लंदन के इंपीरियल इंस्टीट्यूट के जहाँगीर हॉल में कर्जन वायली नामक एक अंग्रेज अधिकारी की हत्या कर दी। अंग्रेजों की सहानुभूति लेने के उद्देश्य से कुछ भारतीयों ने लंदन में एक शोक सभा का आयोजन किया। बैठक के दौरान शोक प्रस्ताव पढ़ते हुए सभा के अध्यक्ष सर आगा खाँ ने कहा कि इस हिंसक तथा निंदनीय कार्य की सर्वसम्मति से भर्त्सना की जाती है। तभी वहाँ उपस्थित सावरकर ने जोरदार आवाज में कहा, ''सर्वसम्मति से नहीं, मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ।''

विनायक सावरकर के बड़े भाई श्री गणेश दामोदर सावरकर भी एक कट्टर देशभक्त और महान् क्रांतिकारी थे। उन्होंने 'लघु अभिनव भारत मेला' नामक एक देशभक्तिपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त वे क्रांतिकारियों को संगठित करने का काम भी कर रहे थे। महाराष्ट्र सरकार ने देशद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल होने का आरोप लगाकर विनायक सावरकर के छोटे भाई नारायण दामोदर सावरकर को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

कालापानी की सजा भुगतने के लिए वीर विनायक को अंडमान जेल की काल-कोठरी में रखा गया था। इस कारावास में प्रथम कई वर्ष उन्होंने भयंकर यातनाएँ झेलीं। जेल में नहाने के लिए पानी उपलब्ध नहीं था। पीने के पानी की भी किल्लत थी। भोजन-वस्त्र की तकलीफ तो थी ही, निश्चित समय के अलावा मल-मूत्र त्याग पर भी रोक थी। बीमार पड़ने पर उचित इलाज भी नहीं होता था। अंडमान जेल में सावरकर को ऐसी-ऐसी यातनाएँ झेलनी पड़ीं कि उन्हें शब्दों में व्यक्त करना अत्यंत कठिन है। जेल में तेल निकालने के लिए कोल्हू थे। अन्य कैदियों के साथ सावरकर को भी कोठरी में बंद कर दिया जाता और वे दिन भर बैल की तरह कोल्हू खींचकर तेल पेरते। उन्हें खाने तक का समय नहीं दिया जाता था। अंडमान जेल में ही विनायक सावरकर के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर भी कालापानी की सजा भुगत रहे थे, परंतु दोनों को मिलने नहीं दिया जाता था।

चौदह वर्ष तक अंडमान में घोर यातनाएँ सहते-सहते उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। हालत इतनी खराब हुई कि वे मरणासन्न हो गए। इधर भारत के समाचार-पत्रों में उनकी चिंताजनक हालत पर जोरदार खबरें छपने लगीं और उनकी रिहाई की माँग की जाने लगी। विवश होकर सरकार ने आदेश देकर सावरकर बंधुओं को २१ जनवरी, १९२१ को भारत बुला लिया। भारत में वीर सावरकर को रत्नागिरि में नजरबंद रखा गया।

सन् १९२१ से १९३७ तक रत्नागिरि में नजरबंद रहते हुए वीर सावरकर ने हिंदू संगठन, शुद्धि आंदोलन तथा राष्ट्र को दिशा देनेवाले कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इस दौरान उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं और समाचार-पत्रों के माध्यम से छद्म नाम से लिखते हुए क्रांतिकारी विचारों के युवकों तक पहुँचाया।

वीर सावरकर का पूरा जीवन भारत की पीढ़ियों के लिए हमेशा प्रेरणा का स्रोत रहा है और आगे भी रहेगा। भारत माता के ऐसे वीर सपूत को शत-शत नमन।

महामानव थे डॉ. स्मरजीत जैना

● प्रेमपाल शर्मा

देश-समाज के कुछ ऐसे नर-रत्न असमय ही कोरोना महामारी की भेंट चढ़ गए, जिनसे पैदा हुई रिक्तता को कभी भरा नहीं जा सकता। उन्हीं में से एक थे—भारत में यौनकर्मियों के अधिकार आंदोलन के प्रणेता और महामारी विशेषज्ञ, वैज्ञानिक चिकित्सक डॉक्टर स्मरजीत जैना। मेरे मित्र अंगद शर्मा के वे गुरु थे, फोन पर कभी-कभी मेरी भी उनसे बात हो जाया करती थी। डॉ. जैना हमेशा आग्रह किया करते थे कि शर्माजी के साथ कभी कोलकाता आइए। सो कोरोना की धीमी होती रफ्तार के बाद २३ फरवरी, २०२१ को कोलकाता में उनसे भेंट का सुयोग बना। पूरे एक सप्ताह उनके साथ रहकर किए एक साक्षात्कार में मैंने उनकी जीवन-कहानी को विस्तार से सुना और फिर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मेरा एक पुस्तक लिखने का विचार बना था। जुलाई में हमें उनसे दोबारा मिलना था, पर कोरोना की दूसरी लहर ने ८ मई, २०२१ को उन्हें हमेशा के लिए हमसे छीन लिया। उस दिन जब मेरे मित्र ने सुबकते हुए फोन पर मुझे बताया कि भाई, डॉ. जैना नहीं रहे तो मैं सन्न रह गया। हाय विधाता! मजदूर, उपेक्षित, दीन-दुखियों के मसीहा को छीनकर उन पर ऐसा वज्रपात क्यों किया?

(२१-७-१९५२—८-५-२०२१)

एक ख्यातिप्राप्त एपिडेमियोलॉजिस्ट एवं सोशल कम्युनिटी मेडिसिन विशेषज्ञ डॉ. स्मरजीत जैना ने जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी, मिशिगन यूनिवर्सिटी, वाशिंगटन यूनिवर्सिटी तथा अन्य कई विदेशी यूनिवर्सिटीज के साथ अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर लंबे समय तक कार्य किया। वे भारत में एचआईवी/एड्स नियंत्रण परियोजना के निदेशक, कलकत्ता के सोनागाछी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान में वैज्ञानिक चिकित्सक के रूप में कार्य करते हुए भारत में यौनकर्मियों के अधिकार आंदोलन के प्रणेता बने। उन्होंने कलकत्ता की बदनाम बस्तियों में यौनकर्मियों के बीच रहकर सबसे सफल एचआईवी/एड्स नियंत्रण कार्यक्रम विकसित किया।

अपनी योग्यता और क्षमता के बल पर डॉ. जैना सन् २०१२ में कोलकाता में आयोजित १९वें अंतरराष्ट्रीय एड्स सम्मेलन के अध्यक्ष बने। उन्होंने बिल गेट्स एवं मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन के भारतीय चैप्टर के सदस्य के रूप में काम किया। डॉ. जैना यूएन एड्स और यूएन एफपीए के तहत क्षेत्रीय भागीदारी फोरम के कार्यकारी सदस्य भी रहे। उन्होंने 'आल इंडिया नेटवर्क ऑफ सेक्स वर्कर्स' के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय ही नहीं, एशिया की यौनकर्मियों के सबसे बड़े संगठन 'दुर्बार महिला समन्वय समिति' (DMSC) की उन्होंने स्थापना करवाई और जीवनपर्यंत इसके मुख्य सलाहकार रहे। उन्होंने महिला, विशेष रूप से यौनकर्मियों के सशक्तीकरण के लिए 'उषा' मल्टीपर्पज कोऑपरेटिव लि. की स्थापना करवाई। सहकारिता के क्षेत्र में यह एकमात्र ऐसा आंदोलन है, जो यौनकर्मियों द्वारा चलाया जा रहा है। डॉ. जैना के मार्गदर्शन में यह आंदोलन श्रमिकों के सहकारिता के इतिहास में मील का पत्थर बन गया। आज पैंसठ हजार से ज्यादा यौनकर्मियाँ इसकी सदस्य हैं और इसका सालाना कारोबार पच्चीस करोड़ से ऊपर है। डॉ. जैना की उपलब्धियाँ अनगिनत हैं।

पीड़ित-शोषित, अभावग्रस्त की सेवा को ही ईश्वर-सेवा माननेवाले डॉ. स्मरजीत जैना का जन्म २१ जुलाई, १९५२ को मिदनापुर जिले (प. बंगाल) के बौहुल्या गाँव में एक अत्यंत साधारण परिवार में हुआ। दादी के लाड़-प्यार के चलते उनकी स्कूली शिक्षा देर से शुरू हो पाई। उनके पिता सरकारी सेवा, यानी शिक्षा विभाग में थे, सो पिता के स्थानांतरण के चलते उनके स्कूल भी बदलते रहे। आलम यह रहा कि डॉ. जैना ने पाँचवीं कक्षा में ही स्कूल का मुँह देखा। शुरू से ही डॉ. जैना कैमिस्ट्री के प्रोफेसर बनना चाहते थे, पर गाँव में अच्छे डॉक्टर के अभाव में डिप्थीरिया से छोटी बहन की मौत हो जाने के कारण पिता के आग्रह पर डॉक्टरी की पढ़ाई करके वे एम.बी.बी.एस., एम.डी. डॉक्टर बने।

जब मैं पहली बार डॉ. जैना से मिला तो वे अपने कार्यालय की तीसरी मंजिल पर अपने कैबिन में कंप्यूटर पर काम कर रहे थे। पैंट के ऊपर सादा शर्ट, बिना कंघी किए सिर के छितरे बाल, तेज से देदीप्यमान चौड़ा ललाट, सामान्य मूँछें, सहज स्वभाव, पैरों में स्पोर्ट शूज, फीते खुले हुए, अपने प्रति लापरवाह से, अधेड़ावस्था को पार कर चुके इस नामचीन वैज्ञानिक डॉक्टर की सादगी ने मुझे अचंभे में डाल दिया। अभिवादन के बाद हमें कुरसियों पर बैठाते हुए उन्होंने पूछा, यात्रा में कोई परेशानी तो नहीं हुई? फिर उन्होंने ब्लैक टी मँगवाई, डॉ. जैना ब्लैक टी ही पिया करते थे। चाय-पान के बाद बोले कि आज आप लोग थोड़ा घूम-फिर लो, कल से मैं आपको पूरा समय दूँगा और अपनी जीवन-यात्रा विस्तार से बताऊँगा। फिर पूछा कि खाने का कैसे रहेगा, इधर चपाती तो मिलता नहीं है। कार्यालय की कैंटीन में २०-२५ लोगों का भोजन बनता है, आप चाहें तो दुपहर में यहीं भोजन कर लिया करें, पर ये लोग भी चपाती नहीं बनाता है; नहीं तो आप जैसा चाहें, कहीं भी भोजन कर लिया करें, हम

उसका भुगतान कर देगा। फिर अपने ड्राइवर कन्हाई को फोन पर आदेश किया कि शर्माजी को आज बेलूड़ आदि घुमा लाओ। इतना ही नहीं, ६७ वर्षीय डॉ. जैना तीसरे माले से पैदल सीढ़ियाँ चलकर हमें नीचे तक छोड़ने आए। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व इतना सहज-सरल भी हो सकता है, सहसा विश्वास नहीं होता, पर प्रसिद्धि से दूर रहने वाले डॉ. जैना ऐसे ही थे।

डॉ. जैना स्वभाव से ही परोपकारी जीव थे। जब वे कलकत्ता मेडिकल कॉलेज में एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहे थे, तब बाढ़, तूफान, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाओं के समय अपने सहपाठियों के साथ पीड़ितों की सहायता के लिए वहाँ जाकर राहत कैंप लगाया करते, जरूरत की चीजें, दवाइयाँ आदि राहत-सामग्री वितरित करते और करवाते थे। उन दिनों पुरुलिया जिला में पानी की कमी से भारी सूखा पड़ा तो जमीन ऊजड़ हो गई, अकाल के कारण चारों ओर भुखमरी फैल गई, तब डॉ. जैना ने अकाल पीड़ितों की मदद के लिए अपने सहपाठियों का एक ग्रुप बनाया, दो सप्ताह तक गाना-बजाना करके रुपया इकट्ठा किया और उन रुपयों से सूखा पीड़ितों की मदद की।

ऐसे ही आंध्र प्रदेश में 'भोला' नामक समुद्री तूफान ने भारी तबाही मचाई, तब डॉ. जैना अपनी टीम के साथ वहाँ जाकर राहत-कार्यों में जुट गए, खुद एक-एक ब्रेड पीस खाकर राहत-कार्यों में लगे रहे। बंगाल में कई इलाकों में बाढ़ आई, तब भी डॉ. जैना राहत-कार्यों में सबसे आगे रहे। सन् १९७५ में देश में इमरजेंसी लगी तो मेडिकल कॉलेज की कैंटीन का ठेकेदार काम छोड़कर भाग गया, उस समय भी डॉ. जैना ने अपने सहपाठियों के साथ कैंटीन का काम सँभाला, यहाँ तक कि कभी बाजार न जाने वाले डॉ. जैना सब्जी मंडी जाकर सब्जियाँ खरीदकर लाते, मछली बाजार जाते, राशन की व्यवस्था करते; पचास-साठ विद्यार्थियों का खाना खुद बनाते, उन्होंने कॉलेज के हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों को कोई परेशानी नहीं होने दी। नेतृत्व का गुण उनमें जन्मजात था। अपने शिक्षा काल में उन्होंने हर प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं में आगे बढ़कर राहत शिविर लगाए, आम लोगों की परेशानियों को जाना-समझा।

दो टूक बात करने वाले डॉ. जैना को ठकुरसुहाती बिल्कुल नहीं सुहाती थी। यही कारण था कि उन्होंने कलकत्ता मेडिकल कॉलेज में प्रोफेसरों की ज्यादतियों के खिलाफ छात्र-आंदोलन को नेतृत्व किया। वे किसी छात्र-संगठन में शामिल नहीं हुए, बल्कि 'स्टूडेंट्स एसोसिएशन' नाम से अपना स्वतंत्र छात्र-संगठन बनाया। ये सारे अनुभव आगे के जीवन में उनके बड़े काम आए। डॉ. जैना का मस्तिष्क बड़ा ही उर्वर था, वे चिंतन किया करते कि हम जिन डेडबॉडीज पर परीक्षण किया करते हैं, आखिर ये डेडबॉडीज आती कहाँ से हैं? ज्यादातर ये गरीब, असहाय, लावारिस अभागे लोगों की ही होती हैं।

अपने स्टूडेंट लाइफ में ही डॉ. जैना अपनी बातें तथा होने वाले अनुभवों को लोगों तक पहुँचाने के लिए अखबारों और पत्रिकाओं में लिखा करते थे। इतना ही नहीं, लोगों को जागरूक करने तथा अपने चिकित्सीय अनुभवों से परिचित कराने के लिए उन्होंने 'हेल्थ ऐंड सोसाइटी' नामक पत्रिका भी निकाली, दूसरे जर्नल्स में भी बराबर लिखते रहे। डॉ. जैना का मानना था कि मेडिकल की पढ़ाई कर रहे छात्रों के लिए मेडिकल

सुपरिचित लेखक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले', 'सचित्र जीवनोपयोगी पेड़-पौधे', 'घर का डॉक्टर', 'शुद्ध अन्न, स्वस्थ तन' तथा 'नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे' (यात्रा-संस्मरण) कृतियाँ चर्चित। आकाशवाणी मथुरा एवं नई दिल्ली से भेंट-वार्त्ताएँ प्रसारित। 'साहित्य मंडल' नाथद्वारा द्वारा 'संपादक-रत्न' एवं 'हिंदी साहित्य मनीषी' की मानद उपाधियाँ।

कैंप जरूर लगाए जाने चाहिए, इनसे उन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। 'स्वास्थ्य के लिए क्या खाना चाहिए, क्या नहीं' इस पर भी उन्होंने छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित कराईं, जो लोकल ट्रेनों में खूब बिका करती थीं। चूँकि डॉ. जैना कोविड-१९ टास्क फोर्स के सदस्य थे, उन दिनों कोरोना रोकथाम पर उनका लिखा आर्टिकल बड़ा प्रसिद्ध हुआ था। समय-समय पर डॉ. जैना ने कई पुस्तकें भी लिखीं। कंपनियाँ अपने उत्पादों के झूठे या बढ़ा-चढ़ाकर कही बातों के विज्ञापनों के माध्यम से ग्राहकों को कैसे लूटती हैं, इनके खिलाफ लिखकर वे जन-जागरण किया करते थे। डॉ. जैना ने बहुत सारे देशों में काम किया, दुनिया के विभिन्न विश्वविद्यालयों में सेमिनार-चर्चा, गोष्ठी, बैठकों में भाग लिया, इन यात्राओं एवं अनुभवों को भी उन्होंने प्रकाशित कराया। विडंबना यह है, डॉ. जैना का सारा साहित्य या तो बांग्ला में है या अंग्रेजी में।

अपने छात्र-जीवन से ही डॉ. जैना को मजदूरों, मेहनतकश लोगों के प्रति बड़ी हमदर्दी थी। जब वे एम.डी. कर रहे थे, तब की बात है, उन दिनों सारे काम मजदूर ही किया करते थे, आज की तरह मशीनें नहीं थीं, उन दिनों कलकत्ता मेट्रो का काम चल रहा था, तब बड़ी तादात में मजदूर घायल-चोटिल होते थे, वे इलाज के लिए उनके मेडिकल कॉलेज में आया करते। जिन मजदूरों के इलाज में खर्चा लगता, वैसे मजदूरों को ठेकेदार लोग अस्पताल में छोड़कर भाग जाते थे; यहाँ फ्रैक्चर वाले मरीज भी भरती नहीं किए जाते थे, सीनियर डॉक्टर जिन मरीजों के परचे पर 'E' यानी Emergency लिख दिया करते, उन्हीं को अस्पताल में भरती किया जाता, अन्यथा मरहमपट्टी कर दवाइयाँ देकर भेज दिया जाता था। ऐसी स्थिति में डॉ. जैना मजदूरों के दु:ख-तकलीफों से द्रवित हो ज्यादातर मरीजों के परचे पर 'E' लिख दिया करते, इस तरह वे बहुत सारे घायल-पीड़ित मरीजों को भरती करवा दिया करते थे। वहाँ रहते हुए डॉ. जैना ने देखा कि मजदूरों के साथ कैसी ज्यादती और अनदेखी की जाती थी, दिनोदिन उनके प्रति डॉ. जैना की संवेदना बढ़ती गई।

डॉ. जैना ने दिल को झकझोर देनेवाला एक वाकया सुनाया था। उन दिनों अस्पताल में महिलाओं के आग से जलने के केस बहुत आते थे, यहाँ तक कि एक महीने में २५-३० भी। डॉक्टर के नाते जब वे उस महिला से पूछताछ करते कि कैसे जल गया, तो वे यही कहा करतीं कि साब, स्टोव फट गया। वे पूछते, स्टोव सामने था तो पीठ कैसे जला? डॉ. जैना ने बताया, मैं जानता था कि महिलाओं का बड़े स्तर पर उत्पीड़न हो रहा है। मर्द उन्हें जलाकर मारने की कोशिश करते थे और वे भोली-अभागी

मरते-मरते भी अपने घरवालों को बचाती थीं। कैसा समर्पण था उनका। एक उनके मर्द थे कि उन्हें मिटा रहे थे।

डॉ. जैना गलत चीज कभी बर्दाश्त नहीं करते थे। एम.डी. करते हुए डॉ. जैना ने अपने साथी डॉक्टरों के साथ 'ड्रग मेडिसिन फोरम' बनाया और इसके माध्यम से आवाज उठाई कि जो दवाइयाँ मानव शरीर के लिए हानिकारक हैं, उन्हें बंद कर दिया जाए। उन दिनों इतनी अंधेरगर्दी थी कि बाहर के देशों में जो दवाइयाँ ड्रग कंट्रोलर द्वारा 'वेन' कर दी गई थीं, वे हमारे देश में धड़ल्ले से बेची और खाई जा रही थीं। इस विषय में जनता को जागरूक करने के लिए डॉ. जैना ने छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर बँटवाईं, इसके खिलाफ अखबारों में लिखा। बाद में डॉ. जैना के प्रयास से यह एक आंदोलन ही बन गया। इस आंदोलन का ऐसा असर हुआ कि भारत के ड्रग कंट्रोलर ने ऐसी २८ दवाइयों को प्रतिबंधित कर इनकी बिक्री पर पाबंदी लगा दी।

ईमानदारी, काम के प्रति समर्पण और निडरता जैसे गुण डॉ. जैना में कूट-कूट कर भरे थे। वे मरीज का परफेक्ट इलाज हो, इसके हिमायती थे। एक डॉक्टर के रूप में डॉ. जैना की पहली नियुक्ति नादिया जिला के श्यामनगर मेडिकल सेंटर में हुई। यहाँ का आलम ऐसा था कि वर्षों से यहाँ के सेंटर पर कोई डॉक्टर नहीं था; कोई आना ही नहीं चाहता था। यहाँ का कंपाउंडर ही इसे सँभाल रहा था और वही आने वाले मरीजों को जैसे-तैसे दवाई वितरित कर दिया करता था। डॉ. जैना जब यहाँ पहुँचे तो लोगों ने उनका बड़ा स्वागत किया। लेकिन कुछ दिनों में ही यहाँ के जमींदार और दबंग लोग अपनी दबंगई दिखाने लगे। डॉ. जैना सब लोगों को लाइन में लगकर डॉक्टर को दिखाने को कहते थे, परंतु ये दबंग लोग कहते कि डॉक्टर, यदि हम लोग मजदूरों के साथ लाइन में लगेंगे तो हमारी क्या इज्जत रह जाएगी; हमें तो बिना लाइन के सबसे पहले देखना होगा। पर डॉ. जैना ने साफ कह दिया, आपको मेरे यहाँ दिखाना है तो लाइन में लगना ही पड़ेगा, मेरे यहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं है। इस पर वे लोग कहने लगे कि हमें अपने घर पर अलग से देख लिया करो। डॉ. जैना ने साफ-साफ कह दिया, मैं घर पर मरीज नहीं देखता। तब उन लोगों ने डॉ. जैना को तरह-तरह से डराया, धमकी दी, इतना ही नहीं, वीडीओ से शिकायत कर दी। पर डॉ. जैना को न डरना था, सो न डरे, और बाद में विवश होकर वे लोग भी लाइन में लगकर अपना इलाज कराने लगे।

यहीं का और एक वाकया है, जो डॉक्टरी पेशेवालों के लिए अनुकरणीय है। डॉ. जैना ने बताया कि उन दिनों मेडिकल सेंटर में पेंसिलिन इंजेक्शन लगाए जाते थे। मैं कंपाउंडर को समझाता कि पेंसिलिन की दूसरी डोज छह घंटे बाद मरीज को मिल जानी चाहिए, तभी वह असरदार होती है, लेकिन कंपाउंडर प्रात: दस बजे मरीज को इंजेक्शन लगाता तो गाँव-देहात के मरीज अगले दिन ही आते थे, तब उन्हें दूसरी डोज लगाता, दोनों डोज के बीच काफी लंबा समय हो जाने से मरीज को अपेक्षित फायदा नहीं होता था। डॉ. जैना कहते कि जिन मरीज को पेंसिलिन लगाया है, उन्हें दूसरी डोज के लिए सायं तक रोक लिया करो। एक तो अब मरीज इतनी संख्या में आने लगे थे कि उन्हें देखते-निबटाते अपराह्न के २-३ वैसे ही बज जाया करते। डॉ. जैना समय का वास्ता देकर कभी किसी मरीज को लौटाते नहीं थे। इससे कंपाउंडर चिढ़ गया, उसने दूसरे कर्मचारियों को भी भड़का दिया और हड़ताल कर दी, इतना ही नहीं, यूनियन में शिकायत भी कर दी कि डॉ. जैना हम लोगों से समय से ज्यादा काम लेते हैं, अपने स्टाफ को तंग करते हैं।

पर डॉ. जैना तो किसी तरह मरीजों का भला ही चाहते थे, उन्हें तो काम करने से मतलब था, सो वे खुद ही सब मरीजों को देखते, इंजेक्शन लगाते और फिर दवाई भी देते। क्या डॉ. जैना जैसा समर्पण और सेवा-भाव अपने मरीजों के प्रति सब डॉक्टर रखते हैं? डॉ. जैना ने मेडिकल सेंटर का कोई काम रुकने नहीं दिया। वे अकेले ही वह सेंटर चलाते रहे। सप्ताह भर में ही शर्मिंदा होकर पूरा स्टाफ काम पर लौट आया और यूनियन लीडर ने भी डॉक्टर साहब से समझौता करने में अपनी भलाई समझी। ऐसे बहुत सारे बाकये डॉ. जैना के डॉक्टरी पेशे में आए, पर वे सदैव अपने कर्तव्य-पथ पर अडिग रहे।

कुछ समय तक डॉ. जैना हावड़ा स्थित उलूबेरिया के ईएसआई अस्पताल में भी रहे। उनका कहना था कि ईएसआई के बहुत सारे फायदे हैं, जिनकी कर्मचारियों को जानकारी ही नहीं होती है। ईएसआई में चार सुविधाएँ मुख्य रूप से मिलती हैं—हेल्थ इंश्योरेंस, आउटडोर ट्रीटमेंट, अनलिमिटेड ट्रीटमेंट और पूरी फैमिली को चिकित्सा-सुविधा। इसके अलावा दवाइयाँ बाहर से नहीं खरीदनी पड़तीं, मेडिकल लीव्स की सुविधा, यानी घायल या फ्रैक्चर होने पर दो-तिहाई वेतन मिलता रहेगा। जब डॉक्टर जैना मेडिकल इंस्पेक्टर बने तो पैनल के प्राइवेट अस्पताल तथा क्लीनिकों में फालतू तथा महँगी दवाइयाँ लिखवाकर उन्हें फिर से मेडिकल स्टोरों पर बेच देने के रैकेटों का भंडाफोड़ किया। यहाँ तक कि दवा माफियाओं द्वारा उन्हें जान से मारने की धमकी तक मिली, पर कोई उन्हें डरा नहीं सका। डॉ. जैना कहा करते थे कि संसाधनों का देश की तरक्की में उपयोग होना चाहिए।

इसके बाद तो डॉ. जैना नई दिल्ली के एम्स में ऑक्यूपेशनल हेल्थ में असिस्टेंट प्रोफेसर हो गए। डॉ. जैना एक अच्छे शिक्षक के नाते ऑक्यूपेशनल हेल्थ की पढ़ाई कर रहे अपने स्टूडेंट्स को भूमिगत कोयला खदानों पर लेकर जाते, वहाँ उन्हें वे प्रत्यक्ष दिखाते कि मजदूर भीषण गरमी और घुप्प अँधेरे में खदान में किन हालात में काम करते हैं। डॉ. जैना अन्यान्य ऑक्यूपेशनल साइटों पर अपने स्टूडेंट्स को ले जाकर उन्हें वास्तविकता का अनुभव कराते थे। उन दिनों आपदा प्रबंधन जैसा कोई विभाग नहीं था, यहीं रहते डॉ. जैना ने अपने अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श के दौरान एनडीआरएफ की सिफारिश की, जो सहज ही मान ली गई और देश में पहले-पहल आपदाओं से लड़ने के लिए एनडीआरएफ विभाग बना।

जब डॉ. जैना एम्स में एपेडेमिलॉजी पढ़ा रहे थे, तब वे भारत सरकार की ओर से विभिन्न विजिट्स पर जाया करते थे। उन्होंने मुझे दिल्ली के स्वतंत्र भारत मिल में विजिट का बड़ा ही मजेदार वाकया सुनाया। बोले कि मैं पूरी मिल का मुआयना कर आया, पर मुझे यहाँ के होने वाले प्रदूषण का जरा भी पता नहीं चला, जबकि कई एजेंसियों ने यहाँ की बहुत शिकायतें सरकार को भेजी थीं। मैं खुद अचंभे में था कि ऐसा कैसे हो सकता है। पर जब मैं मुआयना कर बाहर गेट पर आया तो वहाँ का गार्ड बोला कि सर, लाओ, मैं आपके कपड़े फींच दूँ। मैंने सोचा, यह

मेरे कपड़े क्यों खींचना चाहता है। आखिर उसने मुझे सीधा खड़ा कर स्टीम रोलर से मेरा कोट-पैंट साफ किया। मैंने देखा, मेरा नीला कोट-पैंट धूल और रोओं से एकदम सफेद हो गया था। अब मैं समझा, जब मेरे अंदर जाकर बाहर आने में ही नीला कोट सफेद हो गया, तो जो कर्मचारी पूरे आठ घंटे अंदर काम करते हैं, उनके फेफड़ों में कितना गर्द-रेशा भर जाता होगा। दरअसल यहाँ के कर्मचारी अधेड़ावस्था में ही टी.बी., दमा जैसे भयंकर रोगों के शिकार हो जाते थे।

इस तरह डॉ. जैना ने अनेक बार कपड़ा मिलों, कोयला खदानों, स्टोनक्रैशरों, सीमेंट फैक्टरियों, परमाणु बिजलीघरों इत्यादि का दौरा किया। वहाँ मजदूरों के जीवन से हो रही खिलवाड़, वहाँ के जानलेवा वातावरण के खिलाफ सख्त रिपोर्ट सरकार को पेश की, परिणामस्वरूप पुराने जमाने की ज्यादातर कपड़ा मिलें बंद कर देनी पड़ीं। कारखानों-मिलों में काम करने वाले कामगारों को अच्छा माहौल, सभी जरूरी सुविधाएँ मिलें, ऐसे सख्त कानून बने। मजदूरों को ग्लब्ज, मास्क, जूता, हैट आदि पहनना अनिवार्य कर दिया गया। आज मजदूरों को जो सुविधाएँ मिल रही हैं, वे डॉ. जैना के प्रयासों का ही सुफल हैं। उद्योगपतियों के अनेक लालच दिए जाने पर भी उन्होंने अपने जमीर को कभी मैला नहीं होने दिया।

डॉ. जैना ने एक बड़ा ही चौंकाने वाला सनसनीखेज तथ्य बताया कि सीमेंट फैक्टरी में काम करने वाले मजदूर ३५ वर्ष की अवस्था में ही कार्य के लिए अक्षम हो जाते थे। उनके फेफडों में इतनी डस्ट भर जाती थी कि वे असमय ही मौत के मुँह में चले जाते थे, और मजे की बात यह कि इन सब खतरों से कर्मचारी बिल्कुल अनजान थे। विडंबना देखिए कि धूल से बचाने के लिए यहाँ मजदूरों को सायं को गुड़ खाने को दिया जाता था। उनका तर्क था कि गुड़ खाने से धूल-गर्द पेट में चली जाती है। इस तर्क ने तो मानव विज्ञान को भी फेल कर दिया। श्वास से ली जानेवाली धूल-गर्द पेट में कैसे जा सकती है, वह तो सीधे फेफड़ों में ही जाएगी। तो ऐसा-ऐसा खिलवाड़ मजदूरों की जिंदगी से हो रहा था।

भोपाल गैस कांड की जाँच का जिम्मा भी डॉ. जैना और उनकी टीम को सौंपा गया था। इस जाँच का उनका अनुभव बड़ा दुखद रहा। सरकार ने जानबूझकर यूनियन कार्बाइड के मालिक एंडर्सन को भाग जाने दिया। सेवा-सहायता के नाम पर वहाँ अनेक संगठन अस्तित्व में आ गए, जिन्होंने खूब पैसा बनाया। जब सरकार ही कंपनी के मालिक को बचा रही थी तो कोई क्या कर सकता था। उनकी टीम द्वारा इकट्ठा किए गए सबूत तथा आँकड़े भी म.प्र. पुलिस ने उनसे छीन लिये; होटल में आकर पुलिस ने टीम के साथ बदसलूकी की, डॉक्टरों को मारा-पीटा।

डॉ. जैना महामारी विशेषज्ञ थे। १९९१ में जब सूरत शहर में प्लेग फैला, तब डॉ. जैना एम्स में ही थे। उनके नेतृत्व में डॉक्टरों की एक टीम सूरत के प्लेग प्रभावित इलाकों में हालात का अध्ययन कर रिपोर्ट तैयार करने के लिए भेजी। इसी तरह मणिपुर में प्लेग फैलने के समाचार आने पर सरकार ने वहाँ भी इन्वेस्टीगेशन के लिए डॉ. जैना के नेतृत्व में टीम भेजी। यहाँ के अनुभव बड़े ही हास्यास्पद और मजेदार थे। इसके करीब एक साल बाद ही देश-दुनिया में एचआईवी/एड्स का सनसनीखेज बोलबाला हुआ। भारत सरकार ने निश्चय किया कि इसे देश में फैलने से पहले ही रोकना चाहिए, सो तुरत-फुरत 'नेशनल एड्स कंट्रोलर बोर्ड' का गठन किया गया। आईएमसीआर के डायरेक्टर ने सुझाव दिया कि एचआईवी पर अलग से विभाग बनाया जाना चाहिए। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और रेडक्रॉस सोसाइटी ने श्रीमान आर.आर. दास के नेतृत्व में इस पर एक ऑफिस शुरू किया। डब्ल्यूएचओ ने अपना सुझाव दिया कि कुछ भी करने से पहले यह सुनिश्चित करो कि भारत में एचआईवी/एड्स है भी या नहीं? इस पर होने वाली रिसर्च पर डब्ल्यूएचओ धन उपलब्ध कराएगा।

कुल मिलाकर मजा यह कि तीन महानगरों में जिन डॉक्टरों के नेतृत्व में यह पायलट प्रोजेक्ट शुरू हुआ, वह फेल हो गया, वे रिसर्च का सब रुपया चट कर गए, बाद में उन्हें जेल जाना पड़ा। केवल डॉ. जैना के नेतृत्व में अध्ययन सफल रहा। इससे डॉ. जैना बहुत प्रसिद्ध हो गए। तब डॉ. जैना के नेतृत्व में एचआईवी/एड्स कंट्रोल का प्रोग्राम पूरे देश में लागू हुआ।

फिर क्या था, देश के चार महानगरों—दिल्ली, कलकत्ता, चेन्नई, मुंबई—में एचआईवी/एड्स पर अध्ययन के लिए पायलट प्रोजेक्ट शुरू किया गया। डब्ल्यूएचओ ने दो कंसल्टेंट भी हायर किए, सबको साथ मिलकर काम करना था। रेडलाइट एरिया में जाकर यौनकर्मियों (सेक्स वर्कर्स) से जानकारी जुटानी थी, उनकी चिकित्सा जाँच करानी थी। इस तरह अन्य शहरों के लिए तो रिसर्चर डॉक्टर सुनिश्चित हो चुके थे, पर कलकत्ता आने को कोई तैयार न था। आखिर डिपार्टमेंट ने इस रिसर्च के लिए डॉ. जैना को कलकत्ता भेजा। तब डॉ. जैना आल इंडिया इंस्टीट्यूशन ऑफ हाइजीन ऐंड पब्लिक हेल्थ, कोलकाता में पब्लिक हेल्थ साइंटिस्ट के नाते एड्स पर रिसर्च करने लगे। उन्होंने सोनागाछी और दूसरे रेड लाइट एरिया में दौरे किए।

कुल मिलाकर मजा यह कि तीन महानगरों में जिन डॉक्टरों के नेतृत्व में यह पायलट प्रोजेक्ट शुरू हुआ, वह फेल हो गया, वे रिसर्च का सब रुपया चट कर गए, बाद में उन्हें जेल जाना पड़ा। केवल डॉ. जैना के नेतृत्व में अध्ययन सफल रहा। इससे डॉ. जैना बहुत प्रसिद्ध हो गए। तब डॉ. जैना के नेतृत्व में एचआईवी/एड्स कंट्रोल का प्रोग्राम पूरे देश में लागू हुआ। डॉ. जैना के मार्गदर्शन में पहले सब रेड लाइट एरिया में छोटे-छोटे ग्रुप बनाए, फिर इनका एक बड़ा संगठन बनाया गया। सन् १९९५ में सेक्सवर्कर्स ऑर्गेनाइजेशन पूरे बंगाल में काम करने लगा। डॉ. जैना ने सोचा कि एचआईवी/एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को हम अपने हाथ में क्यों रखें, हमें इसकी लीडरशिप यौनकर्मियों को ही देनी चाहिए, उन्हें समर्थ बनाना चाहिए। पर डॉ. जैना जिस इंस्टीट्यूट में कार्यरत थे, उसका डायरेक्टर कहने लगा कि इस कार्यक्रम को हम चलाएँगे, लेकिन डॉ. जैना का मानना था कि इसका नेतृत्व यौनकर्मियों को ही करना चाहिए, अत: डॉ. जैना के मार्गदर्शन में यौनकर्मियों के सबसे बड़े संगठन DMSC, यानी 'दुर्बार महिला समन्वय समिति' का गठन हुआ।

इस बात से इंस्टीट्यूट का डायरेक्टर नाराज हो गया और डॉ. जैना

को बुरा-भला, यहाँ तक कि मीरजाफर कहकर बेइज्जत करने लगा। इससे क्षुब्ध होकर डॉ. जैना ने यह प्रतिष्ठित नौकरी छोड़ दी, जबकि वे स्वयं कुछ महीने बाद ही इस इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर बनने वाले थे। डॉ. जैना के मार्गदर्शन में 'दुर्बार' यौनकर्मियों का एशिया का सबसे बड़ा संगठन बना। मेरे पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि 'दुर्बार' बांग्ला भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है—'रुकना नहीं, चलते जाना।'

हर समस्या का जड़-मूल से समाधान करना डॉ. जैना की आदत थी। डॉ. जैना अब दुर्बार के सलाहकार के नाते इसे बहुआयामी बना रहे थे तो वहीं दुनिया के विभिन्न संगठनों के साथ अलग-अलग मुद्दों पर भी काम कर रहे थे। उन्होंने अमेरिका की संस्था care जॉइन कर ली थी; बाद में NACO में काम करने लगे। बैंकॉक, फ्रांस, यूएसए, बांग्लादेश सहित कुल मिलाकर ४१ देशों में एचआईवी तथा अन्य मुद्दों पर काम किया। आज दुर्बार यानी DMSC में ६५ हजार यौनकर्मियाँ रजिस्टर्ड हैं और कोलकाता महानगर में ही दुर्बार के अपने तीन बड़ी-बड़ी इमारतों में कार्यालय हैं, जिनमें सैकड़ों यौनकर्मियाँ बतौर कर्मचारी काम करती हैं।

दुर्बार के साथ-साथ यौनकर्मियों के सशक्तीकरण में 'उषा' मल्टीपर्पज कोऑपरेटिव सोसाइटी लि. एक और मील का पत्थर बना, यौनकर्मियों का अपना बैंक, डॉ. जैना ने इसके माध्यम से सहकारिता आंदोलन को नई धार दी। 'उषा' ने यौनकर्मियों को आर्थिक संबल दिया। हालाँकि यौनकर्मियों को सूदखोरों के चंगुल से बाहर निकालने और 'उषा' को खड़ा करने में डॉ. जैना को अपनी जान पर खेलना पड़ा। यौनकर्मियों के बीच काम करते हुए जैसे-जैसे नई समस्याएँ आती गईं, डॉ. जैना भी उनके समाधान में एक-एक नया संगठन खड़ा करते गए। यौनकर्मियों के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए कोलकाता के बरईपुर में 'राहुल विद्या निकेतन', यानी चिल्ड्रन होम खड़ा किया, यहाँ उनका रहना-खाना बिल्कुल निशुल्क रखा, बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए इसी के परिसर में दुग्ध के लिए गाय-बकरी पालन, मत्स्य पालन के लिए दो तालाब, चावल-सब्जी के लिए खेती की व्यवस्था की, जिससे यहाँ रहने वाले बच्चों को ताजा-पौष्टिक भोजन मिलता रहे।

यौनकर्मियों के जो बच्चे पढ़ने में रुचि नहीं रखते थे, पर जिनमें सांस्कृतिक प्रतिभा थी, उनके लिए 'कोमल गांधार' नामक सांस्कृतिक एकेडमी बनाई, आज इसके कलाकार नृत्य-गान में राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। बंगाल में फुटबॉल बेहद लोकप्रिय है, अतः खेल में रुचि रखने वाले यौनकर्मियों के बच्चों के लिए 'दुर्बार स्पोर्टस एकेडमी' ही नहीं बनाई, बल्कि होम परिसर में प्रैक्टिस के लिए शानदार फुटबॉल प्लेग्राउंड भी बनवाया, परिणाम यह हुआ कि बदनाम गलियों में अपराध की ओर भटक जाने वाले ये नौजवान आज भारत ही नहीं, दुनिया की बड़ी-बड़ी फुटबॉल टीमों में खेल रहे हैं। इसी तरह नेशनल नेटवर्क ऑफ सेक्सवर्कर्स, सेल्फ रेगुलेटरी बोर्ड, यौनकर्मी गेस्टहाउस, यौनकर्मी ओल्ड एज होम, फुटबॉल प्लेयर स्टे होम, अमरा पदाति, श्रमजीवी महिला संघ, बलराम डे स्ट्रीट आनंदम्, ममता नेटवर्क ऑफ पॉजिटिव वूमेन, सोसाइटी फॉर हुमा डवलपमेंट ऐंड सोशल एक्शन, विनोदिनी श्रमिक यूनियन, दुर्बार दिशा, महिला गृहश्रमिक समन्वय संगठन, दुर्जोय दुर्बार, दुर्बार प्राकशिनी, सोनागाछी रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, मानभूम लोक संघर्ष कृति व नचिनी उन्नयन समिति, अमलासोल बिरसा मुंडा ग्राम उन्नयन कमेटी, लागाडोरी ग्राम कल्याण समिति आदि न जाने कितने संगठन खड़े किए। डॉ. जैना एक व्यक्ति नहीं, बल्कि संस्थाओं की शृंखला थे। जिन बदनाम बस्तियों की ओर दिन के उजाले में लोग जाना भी पसंद नहीं करते, शोषण और उत्पीड़न के दलदल में फँसी इन यौनकर्मियों के उत्थान में डॉ. जैना ने अपना पूरा जीवन लगा दिया।

डॉ. जैना ने यौनकर्मियों के लिए ही नहीं, घरों में काम करने वाले डोमेस्टिक वर्कर्स के अधिकारों के लिए भी काम किया। भले एचआईवी/एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के लिए उन्हें 'नेशनल पब्लिक सर्विस एक्सीलेंस अवार्ड', मानवता की सेवा के लिए 'चिकित्सा ज्योति अवार्ड' मिले, पर ऐसा कोई अवार्ड नहीं, जिससे उनकी सेवाओं को आँका जा सके। डॉ. जैना बड़े ही परदुःखकातर थे। जब कोरोना महामारी में लॉकडाउन के चलते यौनकर्मियों का धंधा ही चौपट हो गया था। दो गज की दूरी के चलते ग्राहक उनके पास आ ही नहीं सकते थे, ऐसी स्थिति में यौनकर्मियाँ भुखमरी के कगार पर पहुँच गईं। उनकी फ्रिक करते डॉ. जैना एक दिन भी अपने घर पर नहीं बैठे, रोजाना अपने कार्यालय आते रहे। कोलकाता हाईकोर्ट में अर्जी लगवाकर बंगाल सरकार से यौनकर्मियों के लिए सूखे राशन की व्यवस्था कराई, डोर टू डोर राशन उनके घरों पर पहुँचवाया। गरीब लोगों का इलाज भी अपने घर पर करते रहे, उसी दौरान वे कोरोना की पकड़ में आ गए। कोरोना की भयावहता को वे जानते थे, आईसीएमआर द्वारा कोविड पर गठित नेशनल टास्क फोर्स के वे सदस्य भी थे, पर अपनी जिंदगी की परवाह न करते हुए यौनकर्मियों की हर प्रकार से मदद में लगे रहे, और दूसरों की मदद करते-करते अपने आप को ही मिटा बैठे।

चिल्ड्रिन होम परिसर में टहलते हुए बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा था—शर्माजी, अब मैं एनवारनमेंट पर भी काम करना चाहता हूँ। आज का और भविष्य का यह सबसे संवेदनशील मुद्दा है। आप जुलाई में दुबारा आ ही रहे हैं, तब इस पर डिसकस करेंगे; पर नियति को यह मंजूर न था और आठ मई को ही वे दूसरे मिशन पर निकल गए। पर जिन यौनकर्मियों के लिए उन्होंने अपना कॅरियर तथा जीवन, दोनों निछावर कर दिए, उन यौनकर्मियों ने डॉ. जैना के अवदान को जल्दी ही भुला दिया। डॉ. जैना द्वारा 'उषा' बैंक में जमा कराए गए रुपयों को प्राप्त करने के लिए उनके परिवार को कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ रहे हैं। डॉ. जैना ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि ऐसा भी हो सकता है, पर डॉ. जैना महामानव थे; महापुरुषों के लिए कोई अपना या पराया नहीं होता। डॉ. जैना जैसे लोग कभी नहीं मर सकते, वे अपने कामों में, सोच में, विचारधारा में हमेशा जिंदा रहते हैं। मैं पहला ऐसा व्यक्ति हूँ, जिसे डॉ. जैना ने अपनी पूरी जीवन-कहानी सुनाई थी। उनकी प्रथम पुण्यतिथि पर मैं पूरी श्रद्धा और हृदय की गहराई से उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

जी-३२६, अध्यापक नगर,
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

रंगों का खेल

• फैयाज़ हुसैन

प्रेम की सुंदरता

मेरे मुख पर नहीं
उसके नयनों में है
सुंदरता।
प्रेम के सौंदर्य ने
दी है उसको
सुंदरता।
जिसको नयनों
में भरकर
निहारता है मुझको
तब मैं,
दिखता हूँ सुंदर।
मेरी सुंदरता
का राज
छुपा है उसके
अंतर्मन में
जहाँ से बहती है
प्रेम की धारा
जो बनाती है
मुझको सुंदर।

क्रीड़ास्थल

मन है
क्रीड़ास्थल
दो विरोधी तत्त्वों का।
सत्य और असत्य
का संघर्ष
चलता है जीवन भर।
जो पाते हैं
विजय असत्य पर
वो पाते हैं
सुखत्व
मनुष्यत्व का
और सान्निध्य
देवत्व का।

देश-काल से परे

वह है
देश-काल
से परे।
आयु का मापन
उसका होता है
जो, देश-काल
से सीमित हो।
आरंभ और अंत
होता है उसका
जो, देश-काल
से सीमित हो।
परंतु, वह है
देश-काल से
प्रथक और बाहर
अत: वह
आदि है, अंत है।
मूल है, अनंत है।

रँगरेज

वह है
रंगों का व्यवसायी
रंगों का खेल
पसंद है उसको
लेकिन
वह तन नहीं रँगता
न ही
रँगता है वस्त्र
वह उन आत्माओं को भी
नहीं रँगता
जहाँ है
द्वेष, ईर्ष्या, कटुता।
रंग प्रेम का
उच्चतम है
उसके रंगों में

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग में शोधार्थी। 'डिसीजन : मुहब्बत या मजहब' उपन्यास प्रकाशित। पूर्व सहायक संपादक, 'वर्तमान परिदृश्य' पत्रिका।

जिससे वह केवल रँगता है
मन को, आत्मा को
जो होती हैं
उसके ही जैसी
निर्गुण, निराकार
और निश्छल।

सत्ता

रातों को चमकते तारे
दिन को दहकता सूरज
बदलते मौसम
समुद्र की ऊपरी
सतह की स्थिरता
और उनके तल पर
मची हलचल
पर्वतों के शीर्ष
उन पर स्थित जीव
पहाड़ों के नितल
अपनी धुरी पर घूमते
ब्रह्मांड में अनेक पिंड
इस व्यवस्था को बनाए
रखने की शक्ति
तप्त ज्वालामुखी
ठंडी बर्फ की चादरें
ऐसे अनेक उदाहरण
मुझे भरोसा दिलाते हैं
भरोसा कराते हैं
उसकी सत्ता का।

मन

नभ से उतरा नीलापन
चंद्र भी तारों समेत
साथ में हैं
पिंड अनेक
खिलते कमल का स्पंदन
ठंडी समीर का आनंद
शरीर है सुखों से पूर्ण
पर
मन में हैं अनुभव अपूर्ण।
पक्षियों की टोलियाँ
करती हैं अठखेलियाँ
सूरज की लालिमा
रोशन करती हैं आँगन
फिर भी है
मन व्याकुल।
हे प्रिय!
कब उतरोगे
मन के आँगन में?
कब होगा मिलन
अंश का पूर्ण से?
कण का संपूर्ण से?

ग्राम व पो. अमरौख, तहसील-मोंठ, थाना-पूँछ, जिला-झाँसी-२८४३०३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८५२७४४४६१४
faiyazhusainpcs@gmail.com

कहानी

लँगड़ी

• दिवाकर पांडेय 'चित्रगुप्त'

मिजोरम प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण राज्य है। जो एक समय तक लुशाई हिल के नाम से असम का एक जिला मात्र था। लेकिन पूर्वोत्तर राज्य पुनगर्ठन अधिनियम के पास होने के ऐतिहासिक फैसले के बाद मिजोरम को भारत के २३वें राज्य के रूप में मान्यता मिली। मिजोरम जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—'पर्वत पर रहने वाले लोगों की भूमि' खड़ी ढलान वाली औसत ऊँचाई की पहाड़ियों से आच्छादित एक हरा-भरा प्रदेश है। विभिन्न जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों से भरे-पूरे यहाँ के वन सैलानियों के आकर्षण का मुख्य केंद्र हैं। विभिन्न त्योहारों जिसे स्थानीय भाषा में 'कुट' कहा जाता है और आइजवल महोत्सव के दौरान पारंपरिक परिधानों में बाँस-नृत्य (बंबू डांस) करते युवक-युवतियों को देखना दूसरे लोक में सफर करने के समान मनोरंजक होता है।

समानता चाहे लैंगिक हो या सामाजिक यहाँ के लोकजीवन में जिस प्रकार से देखने को मिलती है उसकी ऐसी मिसाल कहीं अन्यत्र शायद ही मिले। सहकारिता यहाँ के जीवन का मूल तत्त्व है। यहाँ के लोग जंगल को काटकर फिर उसे जलाकर उसमें कृषि कार्य करते हैं। जिसे झूम खेती कहते हैं। जंगलों की कटाई के दौरान धूप से बचने के लिए मुँह में मुल्तानी मिट्टी का लेप लगाए महिलाएँ पुरुषों के साथ काम करती हुई अकसर देखी जा सकती हैं। धूप से बचने के लिए यहाँ के पुरुष और महिलाएँ बाँस की बनी हुई बड़ी गोल टोपी का भी इस्तेमाल करते हैं। चावल से बनने वाली बियर का प्रयोग भी यहाँ बहुतायत में होता है, जिसका निर्माण लगभग हर गाँव और मोहल्ले में होता है, जिसे स्थानीय भाषा में सिंगमई कहते हैं।

मिजो कोई एक जनजाति नहीं, बल्कि विभिन्न जनजातियों के समूह का नाम है, जो कि मंगोल जाति की विशाल धारा का हिस्सा हैं। इतिहासकारों का मत है कि ये छठवीं-सातवीं शताब्दी के आस-पास तिब्बत से यहाँ आकर बस गए थे।

यहाँ पर चलने वाली छोटी से बड़ी लगभग सभी दुकानें महिलाओं द्वारा ही संचालित होती हैं। पारंपरिक वेशभूषा त्योहारों या खास आयोजनों पर ही पहना जाता है। बाकी सामान्य दिनों में यहाँ का पहनावा पूरे तरीके से पाश्चात्य शैली वाला ही है। देश में केरल के बाद मिजोरम ही वह दूसरा राज्य है, जहाँ संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को सरकार द्वारा हासिल कर लिया गया है।

सुपरिचित लेखक। हवा इस ओर की चलती नहीं है (ग़ज़ल-संग्रह), चित्रगुप्त का समाधान (व्यंग्य-संग्रह), गोपी (लघुकथा-संग्रह) आदि रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

यहाँ के घर लकड़ी कर बल्लियों पटरों और टिन की चादरों की मदद से सड़कों की किनारे-किनारे बनाए जाते हैं। जिसका निर्माण सारा गाँव मिलकर आपसी सहयोग से करता है। यहाँ के रहने वाले लगभग हर आदमी को बाँस और लकड़ी का काम करना आता है। जिसे वे दाव की मदद से बखूबी करते हैं। यहाँ के जंगलों में बाँस के प्रचुर मात्रा में पाए जाने के कारण यहाँ के जनजीवन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसका प्रयोग खाने-पहनने, बरतन बनाने, नाचने-गाने आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं में किया जाता है।

मिजोरम में नई आई 'नागा बटालियन' के अधिकारी अपने जवाबदारी के इलाके में सैन्य खुफिया तंत्र को मजबूत करने में लगे थे। पुराने सूत्र तलाशे जा रहे थे साथ ही नए सूत्रों की खोज में भी रात-दिन एक किया जा रहा था। इसी क्रम में एक सैनिक ने खुफिया अधिकारी को आकर सूचना दी कि मिम्बुंग के बस अड्डे पर एक लँगड़ी महिला है, जो बिना नागा हर रोज बस के आने पर आती है, बैठी रहती है और फिर सब यात्रियों के जाने के बाद चली जाती है।

"तो क्या तुमने उसका पीछा करने की कोशिश नहीं की?" अधिकारी ने पूछा।

"पिछले तीन दिनों से पीछा कर रहा हूँ, सर, लेकिन उसकी और कोई हरकत संदिग्ध नहीं लगी। सिवाय इस बात के कि वह हर रोज बस अड्डे पर आती है और सब यात्रियों के चले जाने के बाद चली जाती है।"

सैनिक को भेजकर खुफिया अधिकारी उसी लँगड़ी महिला की सोच में डूब गए। स्मगलर ऐसे ही महिलाओं या पुरुषों का इस्तेमाल करके अपने पेशे को चमकाते हैं। शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को इस काम में लगाने के पीछे उनका मकसद सुरक्षा एजेंसियों को धोखा देना भी होता है, क्योंकि ऐसे लोगों पर कोई शक नहीं करता और पकड़े जाने पर भी इमोशनल ब्लैकमेलिंग करके इन्हें आसानी से छुड़ाया जा सकता है।

मिजोरम वैसे तो शांत प्रदेश है, लेकिन बर्मा (म्याँमार) और बांग्लादेश के साथ अंतरराष्ट्रीय सीमा साझा होने के कारण हथियारों और मादक द्रव्यों का गैर-कानूनी व्यापार यहाँ खूब चलता है। दोनों देशों के साथ अपने देश की खुली सीमा और चारों तरफ फैली हुई उन्नत पहाड़ियाँ साथ ही उष्णकटिबंधीय घने जंगल स्मगलरों के लिए वरदान के समान हैं। स्थानीय एजेंटों की मदद से ऐसे गैर कानूनी कामों को बड़े ही सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया जाता है। सुरक्षा बलों को जिसे रोकने के लिए नाकों चने चबाने पड़ते हैं।

हजारों खूबियों के बावजूद मिजोरम इस देश का वह इकलौता राज्य है, जहाँ के अलगाववाद को नेस्तनाबूद करने के लिए तत्कालीन भारत सरकार ने हवाई बमबारी करवाई थी। इस बात की कसक यहाँ की जनता में आज भी देखने को मिलती है, जिससे वे सुरक्षा बलों के साथ ज्यादा मित्रवत नहीं हो पाते। हालाँकि हाल के वर्षों में मिजो लोगों का दिल और दिमाग जीतने के लिए सुरक्षा बलों की ओर से तरह-तरह के प्रोजेक्ट चलाए गए हैं, जिसमें मिलिट्री सिविक एक्शन प्रोग्राम के तहत जनसुविधा के सामान मुहैया करवाना, खेल कूद प्रतियोगिताएँ आयोजित करना, महिलाओं का सेल्फ हेल्प ग्रुप निर्माण, नवयुवकों को सेना में भर्ती होने के लिए प्रेरित करना आदि शामिल है।

मिम्बुंग मिजोरम का दूरस्थ गाँव है, जो चम्फाई जिले में पड़ता है। इस गाँव के लिए दो सरकारी बसें हैं। एक बस सुबह वहाँ से आइजवल के लिए जाती है तो वहीं दूसरी आइजवल से मिम्बुंग के लिए आती है।

खुफिया अधिकारी के लिए यह चुनौती कोई नई नहीं थी, वह काफी अनुभवी व्यक्ति थे। उन्होंने लँगड़ी के बारे में खोज बीन करने के लिए वीसीपी (विलेज कॉउंसिल प्रेसिडेंट) से मिलने की योजना बनाई और फौरन ही उसके अमल में जुट गए।

एक शाम सूचनाएँ एकत्र करने के क्रम में खुफिया अधिकारी की मुलाकात वीसीपी से हुई तो उन्होंने इधर-उधर की बात करते-करते लँगड़ी वाला प्रसंग भी छेड़ दिया।

"अरे, कहाँ साहब! वह तो बहुत सीधी-सादी और गरीब महिला है। बेचारी किस्मत की मारी है, इसलिए इधर-उधर पागलों की तरह घूमती रहती है। बाकी वह किसी ऐसे वैसे कामों में शामिल नहीं है।" वीसीपी ने बताया।

"लेकिन वे हर दिन बस के आने पर बस अड्डे क्यों जाती है?" खुफिया अधिकारी ने सवाल किया।

"उसकी एक लंबी कहानी है साहब! समय हो तो बताऊँ?" वीसीपी ने लंबी साँस खींची और अधिकारी के हामी के उपरांत बताना शुरू किया।

मार्च महीने की पहाड़ी सुबह थरथरा रही थी। सूरज अभी निकला ही था। गाँव वाले खा-पीकर अपने-अपने कामों पर निकलने की तैयारी कर रहे थे। पूर्वोत्तर के आदिवासी इलाकों में लगभग हर जगह दो बार खाना खाने का प्रचलन है। एक बार वह सुबह खाना खाकर काम पर निकल जाते हैं और वापस आकर शाम में अँधेरा होने से पहले दुबारा खाते हैं। मसांगी अपनी माँ के साथ जंगल से लकड़ियाँ लाने की तैयारी कर रही थी। मसांगी के एक पाँव में पोलियो था और वह लँगड़ाकर चलती थी। इसी कारण उसके सामने तो हर कोई उसे उसके नाम से ही पुकारता, लेकिन पीठ पीछे सब उसे लँगड़ी कहते थे।

मसांगी का एक पाँव कमजोर जरूर था, लेकिन इससे उसकी हिम्मत और क्षमता में कोई कमी नहीं थी। वह बड़े से बड़ा जंगली सुअर भी अगर उसके फंदे में फँस जाए तो वह उसे मारकर पीठ पर उठा लाती थी।

मिम्बुंग लुशाई आदिवासियों का गाँव है। यहाँ की पुरानी सड़कें दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान, जो अंग्रेजों ने जापानियों से मोर्चा लेने के लिए बनवाई थी, अब तक वही है। जिनके रिपेयरिंग और चौड़ीकरण का काम बॉर्डर रोड ऑर्गेनाइजेशन (बीआरओ) की तरफ से आजाद भारत में भी समय-समय पर किया जाता रहा है। बीआरओ भारतीय सेना की ही एक शाखा है, जिसमें कुछ नियमित अधिकारियों और कर्मचारियों के द्वारा सीमांत इलाकों में कांट्रेक्ट पर मजदूर रखकर सड़कों का निर्माण व रिपेयरिंग का काम करवाया जाता है।

सड़क पर डामर डालने के लिए बॉर्डर रोड ऑर्गेनाइजेशन में कांट्रेक्ट पर काम करने के लिए झारखंड और बिहार से आए मजदूरों ने मिम्बुंग में ही अपना डेरा जमाया था। ननकू भी उन्हीं में से एक था। जो अपने आप को बिहार का बताता था।

मिजोरम में महिलाओं का खुला व्यवहार, बातचीत का तौर तरीका खासकर हिंदी पट्टी से आने वालों के लिए उनके किसी तिलिस्म के खुल जाने जैसा होता है। क्योंकि मैदानी इलाकों के गाँवों में आज भी महिलाओं का संकोची स्वभाव ही ऐसे पुरुषों की आदत में शामिल होता है। जहाँ ये किसी के दो बात कर लेने का मतलब भी 'पट जाने' से लगा लेते हैं। महिलाओं का खुला व्यवहार और लैंगिक समानता पूरे पूर्वोत्तर भारत की विशेषता है। बेटा होने पर खुशियाँ मनाना और बेटी होने पर मातम करना जैसी आदतें अभी तक महिलाओं को देवी का दर्जा देने वाले राज्यों से यहाँ तक नहीं आई हैं।

इन मजदूरों के लिए महिलाओं और लड़कियों का ऐसा व्यवहार उनके पेरिस या लंदन पहुँच जाने जैसा था। नए आए मजदूर तो कुछ दिन घूम-घूमकर इनसे बात करने में ही बिता देते। फिर जब पैसे की तलब और पेट की भूख सताती तभी काम की ओर लौटते।

फिलहाल मसांगी का रोज जंगल की ओर जाना और ननकू से उसका 'हाय हेलो' हो जाना ये क्रम पहले दिन से शुरू हुआ तो फिर धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। थोड़े ही दिन बाद ननकू पलकें बिछाकर उसका इंतजार करने लगा। मसांगी के लिए इसमें कुछ नया नहीं था, लेकिन ननकू के लिए ये सब अप्रत्याशित से रत्ती भर भी कम न था। ननकू पहली

बार मिजोरम आया था, लेकिन उसके साथी मजदूरों में बहुत से ऐसे थे, जिनके बाल उधर ही पहाड़ियों में घूमते हुए सफेद हुए थे। ननकू उनसे काम चलाऊ 'मिजो' (भाषा) सीखता रहता था। एक दिन उसने अड्डे से निकलते ही अपने बगल में चल रहे मजदूर से पूछा, "काका, ये आई लव यू को मिजो में का कहते हैं?"

"कमांग आइचे मो।"

"क्या कमांग आइचे मो।"

"हाँ-हाँ वही···" साथी मजदूर ने उत्तर दिया।

उसके बाद उसने कलवमे, धन्यवाद। लोकल रो, इधर आओ। मो, क्या है···जैसे कई शब्द और वाक्य मिजो भाषा के सीखे।

ननकू दिन भर काम करता रहा और मन ही मन 'कमांग आइचे मो' का जाप करता रहा, इसमें वह कभी मसांगी का नाम जोड़ देता तो कभी उसे कमांग आइचे मो ही रहने देता।

अगली सुबह हुई। सारे मजदूर नित्य क्रिया से निवृत्त होने के लिए पाखाने के आगे पंक्तिबद्ध हो गए। अपना देश खुले में शौच मुक्त सचमुच का अगर कहीं हो पाया है तो वह पूर्वोत्तर भारत ही है। यहाँ के लोग गरीब हैं तो भी टाट-पट्टी लगाकर शौचालय बना लेंगे, लेकिन खुले में शौच करने जाना तो दूर ऐसा सोच भी नहीं सकते हैं। लकड़ियों की मदद से बिना पैसे के सिर्फ श्रम से बने यहाँ के शौचालय जुगाड़ इंजीनियरिंग के बेमिसाल उदाहरण हैं।

मजदूरों के अड्डे के सामने थोड़ी ही दूरी पर झरना गिर रहा था, जहाँ से बाल्टियाँ भरकर पानी की जरूरतें पूरी की जाती थी। कुछ लोग मंजन कर रहे थे साथ ही टॉयलेट की कतार में लगकर अपनी बारी के आने का इंतजार भी कर रहे थे। ठीक उसी समय मसांगी हाथ में लकड़ी काटने वाला दाव (गँड़ासे जैसा लकड़ी काटने का औजार) लिए और सिर पर लकड़ी लाने वाली टोकरी लटकाए पगडंडी पर आती नजर आई। सारे मजदूर उसी की ओर देखने लगे। ननकू भी उन्हीं में शामिल था। मसांगी जब और नजदीक आई तो ननकू ने चिल्लाकर कहा, "कमांग आइचे मो मसांगी।"

मसांगी ने उसकी ओर नजर उठाकर देखा, थोड़ा सा मुसकराई और फिर धीरे से पूछा, "इसका मतलब पता है आपको?"

ननकू ने तुरंत हामी भर दी। मसांगी इससे आगे कुछ न बोली और आगे बढ़ गई। लेकिन ननकू की हिम्मत उसके बाद काफी बढ़ गई। उस दिन के बाद वह मसांगी का पीछा भी करने लगा। रात में खाना खाने के बाद कभी-कभी वह गायब भी रहता। ऐसा कई मजदूर करते थे। इसमें कोई नई बात नहीं थी।

किसी भी अनजान के घर में जाकर बैठना उनके घर की महिलाओं से बातचीत करना इसको यहाँ का हर रहवासी बहुत ही सामान्य तरीके से लेता है, लेकिन यही बात हिंदी पट्टी वालों के लिए सातवें आसमान पर पहुँच जाने वाली हो जाती है। जिस कारण अन्य प्रदेशों से आए बहुत से नए युवक उल्टा क्रिया-कर्म शुरू कर देते हैं, फिर उसका खामियाजा भी उठाते हैं। कुछ को हाथ पैर तुड़वाकर मुक्ति मिल जाती है तो वहीं कुछ जेल की हवा भी खाते हैं।

कई बार पुराने मजदूरों ने ननकू को समझाया कि चक्कर भी चलाना है तो किसी कुँवारी लड़की के साथ मत चलाओ। यह मिजोरम है, पकड़े गए तो लेने के देने पड़ जाएँगे। पुलिस वाले यहाँ ले-देकर मामला रफा-दफा भी नहीं करते। कुँवारी लड़की के चक्कर में पड़ोगे तो शादी ही करनी पड़ेगी, और कोई दूसरा रास्ता नहीं मिलेगा। यहाँ के लोग लड़कियों और औरतों के मामलों में किसी ऐसे-वैसे समझौते से मानते नहीं हैं। लेकिन ननकू के सिर पर तो सचमुच के इश्क का भूत सवार था, वह कहाँ मानता।

एक सुबह सारे मजदूर अपनी नित्य क्रियाओं में तल्लीन इधर-उधर अस्त-व्यस्त घूम रहे थे, तभी गाँव का वीसीपी गाँव के ही कुछ अन्य लोगों के साथ मजदूरों के अड्डे पर आ धमका और ननकू की खोजबीन शुरू हो गई। उनके हाव-भाव से ही लग रहा था कि मामला गंभीर है।

"उस समय वीसीपी कोई और था क्या?" खुफिया अधिकारी ने उसे बीच में रोकते हुए सवाल किया।

"हाँ उस समय दूसरा था मैं तो अभी पिछले साल वाले में चुना गया हूँ।" वीसीपी ने बताया और कहानी को आगे बढ़ाया।

मसांगी को तीन महीने का गर्भ था और उसने इसके बारे में अपने घर पर सबको बता दिया था। गाँववालों का मंतव्य साफ था कि ननकू शादी करे। या तो इसका अंजाम बहुत बुरा होने वाला था। यंग मिजो एसोसिएशन के कुछ युवक ननकू की खातिरदारी करने के लिए भी दाव लेकर तैयार बैठे थे। ननकू को ढूँढ़कर निकाला गया तो उसने बिना ना-नुकुर शादी करने के लिए हामी भर दी।

उसके बाद दोनों का चट मँगनी पट ब्याह भी तय हो गया। अगले इतवार को शादी की तारीख तय कर दी गई। पास्टर की निगरानी में दोनों की शादी की रस्म पूरी हो गई। जिसमें ननकू ने भी मिजो पारंपरिक रीति-रिवाजों का पालन करते हुए शादी की रस्म अदायगी की। भोज के लिए दो सुअर काटे गए और सारे गाँव को खाने पर आमंत्रित किया गया। पास्टर ने नवदंपती के सुखमय जीवन की प्रार्थना पढ़ी और अपना हस्ताक्षर करके शादी का प्रमाणपत्र दे दिया।

मसांगी की माँ ने शादी के पहले ही यह शर्त रख दी थी कि शादी के बाद वह गाँव छोड़कर कहीं नहीं जाएगी, बल्कि ननकू ही यहाँ रहेगा। क्योंकि पहाड़ी आदमी कुछ भी कर सकता है, लेकिन पहाड़ों को छोड़कर जाना मंजूर नहीं करता। पूर्वोत्तर राज्यों में अधिकतर आबादी अब भी ऐसी है, जिसने अब तक ट्रेन नहीं देखा है। इसलिए उनके लिए गुवाहाटी पार करके आगे जाना शूली पर चढ़ जाने के बराबर होता है। दूसरी बात हिंदी खबरिया चैनलों के प्रभाव में मैदानी इलाकों की अच्छी खबरें तो वहाँ तक पहुँचती नहीं हैं, उस कारण भी यहाँ के लोगों के मन में हिंदी भाषी राज्यों के प्रति एक डर बैठा हुआ है, जो हजारों प्रयासों के बाद भी उन्हें अपना पहाड़ छोड़ने नहीं देता है।

यहीं रहने वाली बात को ननकू ने भी मंजूर किया था। मसांगी की माँ ने उनके रहने के लिए अपना पुराना घर भी दे दिया और देखते ही

देखते मिम्बुंग में एक नया घर बस गया। काला अक्षर भैंस बराबर ननकू फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वाली लुगाई पाकर फूला नहीं समा रहा था। हालाँकि मसांगी कोई ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी, पूछने पर तो वह सिर्फ आठवीं ही बताती थी। लेकिन जैसा कि मिजोरम में अकसर पाया जाता है कि पाँचवीं के बाद बच्चे अंग्रेजी बोलना सीख ही जाते हैं। मसांगी भी उन्हीं में से एक थी।

साथी मजदूर ननकू को चिढ़ाते कि कुत्ता खाने वाली से शादी कर लिया है। लेकिन ननकू हँसकर रह जाता। इसी बात पर बॉर्डर रोड्स के जूनियर इंजीनियर साहब ने एक बार मजदूरों को बहुत डाँटा था कि "किसी के खान-पान और वेश-भूषा का ऐसे मजाक उड़ाना ठीक नहीं है। उनकी जगह अगर तुम्हारा जन्म भी मिजोरम में हुआ होता तो क्या तब भी तुम लोग कुत्ता नहीं खाते? किसकी मान्यता क्या है? कौन क्या खाता-पीता है, यह किसी व्यक्ति पर नहीं, बल्कि उसके परिवेश पर निर्भर करता है।"

फिलहाल दिन गुजरता रहा। ननकू दो बच्चियों का बाप बन चुका था। कुछ समय बाद बॉर्डर रोड्स का काम भी गाँव में समाप्त हो गया तो मजदूरों का कैंप भी चला गया। वह काम छूटने के बाद ननकू ने गाँव में ही दुकान खोल ली और उनकी जिंदगी सुखमय चल रही थी। ननकू बाहर से सामान लाता और दुकान मसांगी सँभालती थी।

ननकू साल में एक-आध बार अपने गाँव भी जाता, लेकिन हफ्ते दस दिन में लौट आता था। लेकिन सुख को किसी-न-किसी की नजर लग ही जाती है। मसांगी के साथ भी वही हुआ। ननकू एक बार अपने गाँव गया तो लौटकर नहीं आया। उसने जिस दिन आने की बात कही थी उस दिन बस तो आई, लेकिन ननकू नहीं आया। मसांगी ने उससे संपर्क करने की बहुत कोशिश की, लेकिन उससे कभी संपर्क नहीं हुआ। उसके गाँव के पते पर कई चिट्ठियाँ भी भेजी गईं, लेकिन उसका भी कोई उत्तर नहीं आया।

उधर ननकू की खोजबीन जारी रही। पूरा गाँव मसांगी की मदद भी करता रहा। लेकिन मसांगी धीरे-धीरे दिमागी तौर पर विचलित होती चली गई। हमेशा हँसते रहने वाली मसांगी ने बात करना भी छोड़ दिया। कोई कुछ भी बोले इसको कोई फर्क नहीं पड़ता था। कुछ कहने पर इसके व्यवहार को देखकर ऐसा लगता, जैसे इसने कुछ सुना ही न हो। मसांगी धीरे-धीरे अपना सबकुछ भूल चुकी थी। लेकिन नहीं भूली थी तो बस हर रोज बिना नागा आइजॉल से आने वाली बस में जाकर यह देखना कि शायद आज ननकू आया हो? ननकू को लापता हुए लगभग दस साल हो गए हैं, लेकिन मसांगी का रोज बस अड्डे जाकर बस की तलाशी लेने का क्रम अनवरत जारी है। वह आज भी बस के आने से पहले वहाँ जाकर बैठी रहती है। एक-एक यात्री को उतरते हुए देखती है। बस जब खाली हो जाती है तो वह अंदर घुसती है दाएँ-बाएँ देखती है और फिर वापस लौट जाती है। मसांगी जिसे आप लँगड़ी कह रहे हैं, उसकी बस इतनी सी कहानी है, साहबजी!

वीसीपी ने अपनी बात खत्म की।

"उफ्फ!" खुफिया अधिकारी ने अंत में इतना ही कहा और नम आँखों से उठकर चल दिया।

सा.अ.
ग्राम-जलालपुर, पोस्ट-कुरसहा,
जिला-बहराइच-२७१८२१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८११८९९५१६६

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC-BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

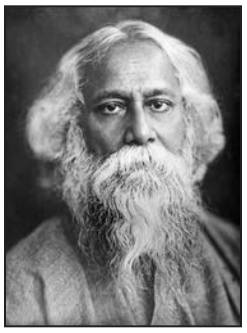

कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर

• गिरेंद्रसिंह भदौरिया 'प्राण'

महामनीषी कवि ऋषि जिसने, निराकार साकार किया।
मानवतावादी मूल्यों का, चिंतन कर विस्तार किया॥

जिसको गुरुपद देकर जग ने, आदर अपरंपार दिया।
नमन करें हम उसको जिसने, दुनिया का उपकार किया॥

जब-जब शब्द ब्रह्म का ब्रह्मा, कवि स्रष्टा मिल जाता है।
तब-तब अंधे युग को रवि सा, युगद्रष्टा मिल जाता है॥

सात मई सन् अठारह सौ, इकसठ का दिनमान लिये।
एक नया सूरज आ उतरा, धरती पर मुसकान लिये॥

कलकत्ता की जोड़ासाँको, ठाकुरवाड़ी आँगन में।
बाल रवींद्र नाथ ठाकुर ने, जन्म लिया अध्यासन में॥

जहाँ शारदा देवी माँ की, फली कोख वरदान हुई।
जब देवेंद्रनाथ के घर में, पुत्र रूप संतान हुई॥

लिखते-पढ़ते और खेलते, बीता बचपन बातों में।
गीत कला संगीत काव्य का, ज्ञान लिया अभिजातों में॥

बंधन रहित मुक्त जीवन की, अभिलाषा बचपन से थी।
और ललक भीतरी हृदय के, कोनों में यौवन से थी॥

थे इक्कीस बरस के तब, जब यौवन पथ रथवाह हुआ।
धर्म संगिनी मृणालिनी, देवी के संग विवाह हुआ॥

साथी को स्वीकार किया, जीवन का सत्कार किया।
नैतिकता के बीज वपन कर, मानवता से प्यार किया॥

जिसको गुरुपद देकर जग ने, आदर अपरंपार दिया।
नमन करें हम उसको जिसने, दुनिया का उपकार किया॥

करने लगे काव्य की रचना, बंगाली मृदु वाणी में।
उपन्यास कविता कल्याणी, नाटक कथा कहानी में॥

वनवाणी, परिशेष, पूरबी प्रवाहिनी महुआ, कणिका।
चोखेरवाली सी रचनाएँ रच दीं और रची, क्षणिका॥

गीतांजलि, नैवेद्य मायेरा खेला, लिख परिशेष लिखा।
भोलानाथ, पुनश्च,वीथिका, शेषलेख, परदेश लिखा॥

गीतांजलि पढ़ी दुनिया ने, दर्शन में ऐसी डूबी।
भूल गई माया की छाया, काया से ऐसी ऊबी॥

नया करिश्मा हुआ, कि दुनिया अंधधुंध से ऊबी थी।
वैचारिकता हुई मौन सी, भावुकता में डूबी थी॥

प्रकृति प्रेम से सिक्त व्यक्ति की, निष्ठा ईश्वर में ला दी।
हर पहलू से मूल्य सनातन, जागे मानवता वादी॥

उपनिषदों की ईशज्योति ले, ऋषिवत् प्रभु आहूत किया।
जीव-जगत में इस सत्ता को, सदा-सदा अनुभूत किया॥

जग ने दूर विकार किया, कवि को तब उपहार दिया।
नोबल पुरस्कार भारत के, कवि को पहली बार दिया॥

जिसको गुरुपद देकर जग ने, आदर अपरंपार दिया।
नमन करें हम उसको जिसने, दुनिया का उपकार किया॥

बालक को दी जाने वाली, सकल किताबी शिक्षण से।
भिन्न भाव थे कहते, अनुभव मिलता प्रकृति परीक्षण से॥

जितना प्रकृति सिखाती उतनी, सीख नहीं मिल पाती है।
अधिक औपचारिक बंधन से, बुद्धि मंद हो जाती है॥

प्रतिभा के अनुपम कुबेर थे, गीतों में पचने वाले।
बँगला देश और भारत के, राष्ट्रगान रचनेवाले॥

सूत्रपात हो सका आपकी आभा, के उत्तोलन का।
रक्षा बंधन के अवसर पर, बंग भंग आंदोलन का॥

स्वतंत्रता के दीवानों पर, नशा चढ़ा बन भूत यहीं।
और स्वदेशी आंदोलन की, नींव पड़ी मजबूत यहीं॥

घटना सुनी निहत्थे बैठे, लोगों पर संहारों की।
जालियाँवाला बाग जहाँ पर, हत्या हुई हजारों की॥

महा शांति के इस नायक ने, आत्मबोध कर क्रोध किया।
'नाइटहुड' उपाधि लौटा दी, सीना तान विरोध किया॥

वार किया प्रतिकार किया, बुरी तरह ललकार दिया।
अंग्रेजी सत्ता के मुख पर, नाइटहुड ही मार दिया॥

जिसको गुरुपद देकर जग ने, आदर अपरंपार दिया।
नमन करें हम उसको जिसने, दुनिया का उपकार किया॥

भारत के जितने भी बेटे, दुनिया में सरनाम हुए।
उनमें गुरुवर कवि रवींद्र, टैगौर ज्ञान के धाम हुए॥

जिस प्रतिभा को किसी राष्ट्र की, सीमा बाँध नहीं पाती।
उसे नमन करती है मन से, पीढ़ी दर पीढी आती॥

न तो भुलाया जा सकता है, कोई युगस्तंभ युग में।
और न टाली जा सकती है, कवि की शुचि वाणी जग में॥

याद रखेंगी दसों दिशाएँ, पर्यावरण न भूलेगा।
इस शिक्षक कवि के गौरव से गर्वित भारत फूलेगा॥

सुपरिचित लेखक।दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक कविताएँ, निबंध, आलेख, कहानियाँ, समीक्षाएँ व आलोचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी, टी.वी. चैनलों से सतत काव्य-पाठ का प्रसारण। स्व. महादेवी वर्मा स्मृति अलंकरण से पुरस्कृत।

विश्वभारती का संस्थापक, छोड़ निकेतन चेतन की।
वाणी की बहती प्रवाहिनी यादें शांति निकेतन की॥

दिन सातवें अगस्त माह के, उन्नीस सौ इकतालीस को।
छोड़ गई सूरज की आभा, धरती रोती वारिस को॥

राष्ट्रगान के सिद्ध रचयिता इस, कविकुल मणि की जय जय।
कवियों की जय कविता की जय, गीत छंद रस की जय-जय॥

पर्यावरण सुधार किया, सामाजिक उपचार किया।
प्रकृति प्रेम का सार दे दिया, सरल सरस व्यवहार किया॥

जिसको गुरुपद देकर जग ने, आदर अपरंपार दिया।
नमन करें हम उसको जिसने, दुनिया का उपकार किया॥

जय हिंद! वंदे मातरम्!

'वृत्तायन' ९५७ स्कीम नं. ५१,
इंदौर-४५२००६ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२४०४४२८४

बुढ़ापे की लाठी

कविता

• सत्यनारायण भटनागर

लाठी कैसी भी हो छोटी या बड़ी
वह शक्तिशाली का देती है साथ
उसे सँभालना पड़ता है
वह गिरने नहीं देती हो जिसके पास
गिरते-गिरते बचा लेती है
उस पर विश्वास किया जाता है।
इसलिए कहा जाता है पुत्र को
बुढ़ापे की लाठी हो तुम
पर बुढ़ापे में आदमी हो जाता है शक्तिहीन
विस्मृति छा जाती है इस पर
हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं
वह सँभाल नहीं पाता लाठी को
बुढ़ापे की लाठी तब हो जाती है गुम
लाठी होती है निर्जीव
वह कोई निश्चय नहीं कर पाती
उसे कोई भी चुरा सकता है
उसका अपहरण भी हो सकता है।
इसलिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता
कि वह किसका साथ देगी
वह देती है साथ कभी श्रद्धाभक्ति के लिए
निर्बल थकेहारे का भी
ताकि वह गिर न जाए चलते-चलते
आजकल की लाठी खुद ही हो गई है समझदार
उसने पाल लिया है माया मोह का जंजाल
वह खुद ही गायब हो सकती है
घरवाले ही चोर बन जाते हैं उसके लिए
उसका अपहरण सरल सहज हो जाता है
फिर बुढ़ा चीखता रहता है अकेला
कहाँ गई लाठी मेरी
कहाँ खो गई है?
उसकी चिल्लाहट सुनने वाला कोई नहीं होता
वह खँडहर में पड़ा चिल्लाता है।
उसकी चिल्लाहट सुन
जो दौड़कर आता है वही ईश्वर होता है
इसलिए कहते हैं निर्बल के बलराम
राम ही अंतिम समय में याद आता है।
राम का बल ही अंतिम बल है।
यदि भूले भटके सुन ले बुढ़ापे की लाठी
तो समझो वही राम है।

११२, कालिंदीकुंज, पिपल्याहाना,
इंदौर-४५२००१ (म.प्र.)

प्रण

मूल : **मेहुल प्रजापति**
अनुवाद : **यादव आचलबेन विजयप्रताप**

"बापू···" दादाजी के बड़े भाई को देखकर मैं बोल पड़ा। तीन पैर से डगमगाते हुए चलते बापू जरा सा पीछे देखकर, ओठ फड़फड़ाकर, लगभग 'सीताराम' बोलकर उसी चाल से चलने लगे। हमारे बीच दस कदम जितना अंतर भी नहीं होगा। मुझे न पहचाना हो ऐसा तो शायद ही हो सकता है। रुद्राक्ष की माला मानों जैसे शरीर का अंग! उस प्रकार हाथ में लटक रही थी। लाल टमाटर जैसा शरीर, सफेद कुरता और सफेद पगड़ी, मानो जैसे पूरा-का-पूरा हंस ही न हो।

"ओ···सीताराम!" मैंने थोड़ा जोर लगाकर आवाज लगाई।

"चलो जल्दी, फिर बैलगाड़ी खड़ी नहीं रहेगी। जल्दी करो।" जवाब दे सकें उतनी गरदन घुमाकर बापू चलते रहे।

बापू को लगभग पूरा गाँव 'सीताराम' कहकर ही बुलाता, मानो जैसे उनका नाम ही सीताराम न हो! लेकिन मैंने तो जबसे बोलना सीखा तभी से बापू को 'सीताराम' कहकर ही बुलाता और तो और बापू को अच्छा भी लगता। बापू को मैंने बचपन से देखा था। ओठ और आँखों में हलकी सी मुसकान सदा ही दीपक की तरह प्रज्वलित रहती। शांत और मीठा-मीठा उनका स्वभाव आज भी वैसा का वैसा ही है। वे जब भी उनकी बैठक यानी कि उनके घर-आँगन में चारपाई पर बैठे हो तब उन्हें सुनने का मजा ही कुछ और है। वैसे तो उनका घर बहुत बड़ा है, लेकिन वे हमेशा बाहर आँगन में ही बैठे रहते। चारपाई में रुई का गद्दा और ओढ़ने के लिए शॉल। और चाहे जब उनके पास जाओ, मटके का ठंडा पानी अचूक पिलाते। बातों-बातों में माला हाथ में लेकर पास बैठे हुए सभी का भविष्य देखते और बैठे हुए सभी को सकारात्मक जवाब देते। "तुम्हारा रिश्ता पक्का हो जाएगा, फिक्र मत करना; तुम्हें नौकरी मिल जाएगी, चिंता मत करना।" चंदु काका आँगन में नजर घुमाते तो तंग हो जाते। और हमारे जाने के बाद बापू को धमका भी देते। लेकिन बापू तो एक सौ आठ बार माला जपने में मानो जैसे सब भूल ही जाते।

गरमियों की धूप सुबह से ही अपना प्रभाव दिखा रही थी। अच्छी-खासी फसल को भी खाक करनेवाली धूप बापू के चेहरे पर ज्यादा झलक रही थी। गायों का झुंड थोड़े समय पहले यहाँ से गुजरा हो ऐसा रास्ते को देखकर कहा जा सकता था। गरमियों की फसल काटने के लिए लोग सुबह-सुबह ही खेतों में लग गए थे। इस बार खेत बाजरे की फसल से लहरा रहे थे। मानो जैसे मेंड़ का नाप ही खो गया था।

हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी पाटण में २०२१-२०२२ में अंग्रेजी विषय से स्नातक। गुजराती साहित्य में हाइकु, कहानियाँ, अभ्यास लेख एवं हिंदी साहित्य में कहानी लेखन और अनुवाद जैसे क्षेत्रों में प्रदान।

रास्ते में साफ जगह देखकर बापू ठहरे। लाठी के सहारे नीचे बैठ गए। आगे-पीछे देखा, रास्ता निर्जन था। इसलिए माला निकालकर राम··· राम···राम···जपने लगे। मैं उन्हें देखता खड़ा रहा। उन्हें छोड़कर आगे चलना अपमान करने जैसा था। आखिर में गरदन झुकाकर मैं बापू को देखता रहा। और न जाने कब बैलगाड़ी चालक पास आकर खड़ा हो गया पता ही नहीं चला।

"क्यों सीताराम, आज इस रास्ते? कुछ हुआ क्या?" बैलगाड़ी चालक ने बापू को जगह देते हुए अचानक ही पूछ लिया। बापू का चेहरा देखते ही, न पूछनेवाली बात पूछ ली, इसका एहसास होते ही बैलगाड़ी चालक ने बैल को डच-डच आवाज करके पूँछ दबाकर इशारा किया कि पलक झपकते ही तीनों जान करीब बीस वर्ष पहले का भूतकाल घूम आए।

"ओ···चंदु, चलो उठो अब। सूरज तपने में देर नहीं लगेगी। और अगर वे हमसे पहले पहुँच गए तो गजब हो जाएगा। मेंड़ का नक्शा बदल देंगे। चलो उठो!" बापू चिल्लाने लगे। लेकिन चंदु पहले से ही ठंडा। बापू सुबह जल्दी उठकर, गाय दुहकर खेत से घर आते तब तक चंदु खराटे ही लेता रहता। दादी के जाने के बाद बापू दिन-रात कोठरीवाले खेत में ही रहते। बस खाने-पीने के लिए घर आते, बाकी की सारी जरूरतें खेत में पूरी हो जातीं। बस, कभी-कभार चंदु को दूसरे खेत में काम करते-करते देर हो जाती तो बापू रात को घर पर ही रुक जाते। और सुबह खेत जाने के लिए निकल पड़ते।

टाँगें मोड़कर चंदु चारपाई में सो रहा था। नई-नई ब्याहकर आई हुई चंदु की पत्नी प्रात:काल से ही काम में लग गई थी। धीमी हवा की लहर के साथ धीमी-धीमी चहचहाहट चंदु को चादर ओढ़ने पर मजबूर कर रही थी। ताजी बारिश और माटी की भीनी सुगंध फैलने से चंदु और मदहोश होता जा रहा था। बारिश को बंद हुए आज करीब चार-पाँच

दिन हुए होंगे, वहीं लोग खेत जोतने उमड़ पड़े थे। बापू ने डंडा लेकर चंदु के पिछवाड़े मारा। तब चंदु को मानो जैसे बिजली का झटका न लगा हो! उस प्रकार एकाएक बैठ गया।

"क्या बापू आप भी···थोड़ा खाना और थोड़ा जीना। ना कोई झंझट और ना कोई दु:ख···उस तरह रहिए ना बापू!" आँखें मलते-मलते चंदु ने आह भरी। बापू मौन होकर देखते रहे। पूरे शरीर में झनझनाहट होने लगी। मानों जैसे पूरा जीवन समाप्त ना हो गया हो! उस तरह स्थिर मन से सब देखते रहे।

दतुवन-पानी करके चंदु और बापू खेत आए। बापू ने धीरे-धीरे जुआ-पगहा-हल तैयार किया। चंदु ने बैल लाकर उन पर जुआ रखा। बापू ने हल जोड़कर दिया। दो बैलों के बीच दोनों हाथों से राश पकड़कर खड़े चंदु के स्मृति पटल पर एक दृश्य खड़ा हुआ। पिछले साल फसल की बारिश हुई थी। और बापू भी बीमार पड़ गए थे। वे पूरा दिन घर पर ही लेटे रहते। मेंड़वाले पड़ोसी की जमीन की जोताई हो गई है, यह देखकर चंदु ने जल्दबाजी की और नया-नया चंदु हल चलाने लगा। और पूरी मेंड़ का नक्शा ही बदल दिया था। फिर तो बात बहुत बिगड़ गई। मेंड़वाला पड़ोसी कनु और चंदु, रास्ते पर दो बैल लड़ पड़े उस प्रकार मेंड़ पर लड़ पड़े थे। अड़ोसी-पड़ोसियों ने बहुत मुश्किल से दोनों को छुड़ाकर शांत किया था। लेकिन फिर चंदु को ही भारी पड़ा था। मेंड़वाला पड़ोसी कनु टुकड़ी लेकर ही घूमता। चंदु को हर पल चौकन्ना रहना पड़ता। उस समय बापू चंदु को समझाते हुए कहते, "झगड़ा करने से कुछ नहीं मिलता। और ठीक है कि सामनेवाला हमसे कमजोर हो। नहीं तो न घर के और न ही घाट के।"

दतुवन-पानी करके चंदु और बापू खेत आए। बापू ने धीरे-धीरे जुआ-पगहा-हल तैयार किया। चंदु ने बैल लाकर उन पर जुआ रखा। बापू ने हल जोड़कर दिया। दो बैलों के बीच दोनों हाथों से राश पकड़कर खड़े चंदु के स्मृति पटल पर एक दृश्य खड़ा हुआ। पिछले साल फसल की बारिश हुई थी। और बापू भी बीमार पड़ गए थे। वे पूरा दिन घर पर ही लेटे रहते। मेंड़वाले पड़ोसी की जमीन की जोताई हो गई है, यह देखकर चंदु ने जल्दबाजी की और नया-नया चंदु हल चलाने लगा।

इस वक्त चंदु को सूझा "लाओ ना बापू को ही दूँ, मेंड़ बना दें तो उसके सिधाने में चल सकूँ। कोई चिंता ही नहीं।" बापू ने राश पकड़कर बैल को इशारा किया। बैल मेंड़ की ओर बढ़ने लगे। चंदु कोठरी पर ही खड़े-खड़े देखता रहा। बापू बैल के साथ, नीचे हल को देखते हुए चल रहे थे। ताजी मिट्टी की खुशबू फैलने से बापू की ताकत और बढ़ने लगी। अचानक बैल रुक गए। बापू ऊपर देखते ही उनके होंठों से शब्द निकल गए, "मेंड़ इतनी जल्दी आ गई?" बापू से रास छूट गई। वहाँ पहुँचते ही चंदु की आँखें बाहर आ गईं। बैल मानो जैसे लाचार बनकर खड़े रहे। बापू ने चारो ओर नजरें घुमाई। खेत अधूरा-अधूरा सा लग रहा था। मेंड़वाले पड़ोसी कनु ने रातोरात मेंड़ को जड़-मूल से उखाड़कर बीस कदम इस ओर विलायती बबूल गाड़ दिए थे।

"बापू···जब तक मैं उसकी टाँगें न तोड़ दूँ, तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा।" बोलकर चंदु बड़े कदम बढ़ाते हुए चल पड़ा।

"रुको···तुम्हें हम सबको चैन से जीने देना है? लड़ाई-झगड़ा करने से बात नहीं सुधरती।"

"तो क्या सबकुछ दे देना? थोड़ा-थोड़ा करके वे सब ले लेंगे! अगर कुछ न हुआ तो आखिर में फरियाद लिखवा देंगे!"

"वह कायदे-कानून का लेन-देन हमारे बस की बात नहीं है। हम मन के भोले और हाथ के सच्चे! मेरा ईश्वर करे वह ठीक। तुम रहने दो।"

बापू मानों जैसे मन-ही-मन जगत् के नाथ से बातें कर रहे हो! उस प्रकार बड़बड़ाने लगे। और फिर कहने लगे—

"सुनो चंदु! आज की घड़ी और कल का दिन, मैं खेत में तब तक कदम नहीं रखूँगा जब तक मेरा ईश्वर उसे उठा न ले!"

"लेकिन बापू···" चंदु ने आह भरी।

मेंड़ पार करके गाँव की ओर जाते हुए बापू बोले, "मुझे प्रण तोड़ना पड़े, ऐसा कुछ मत करना। जितना है उतने में मेहनत कर। अब तो मेरा ईश्वर करे वही सही!"

करीब बीस बरस बीत गए। कपास, एरंड, सरसों, उरद, गेहूँ ऐसा-ऐसा बहुत कुछ उगाया, लेकिन बापू ने कभी इस तरह नजर भी नहीं की! और आज बापू इस ओर? पड़ोसी ने जमीन वापस कर दी? मेरे मन में एक सघन प्रश्न छा गया। बापू के खेत से हमारा खेत एकदम नजदीक था। बैठे-बैठे भी देख सकते है की अंदर कौन क्या कर रहा है। बैलगाड़ी कछुए की चाल से चलते-चलते खेत पहुँचने वाली थी। हमारी कोठरी दिखते ही बैलगाड़ी चालक ने बैलगाड़ी रोकी। मैं नीचे उतरकर कोठरी की ओर चलने लगा। लेकिन मेरा दिल और दिमाग बैलगाड़ी में ही अटके हुए थे। थोड़ी दूर जाकर पीछे गरदन घुमाई तो बापू धीमी गति से मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे। मैंने थोड़ा रुककर उनसे पूछा—

"बापू खेत में नहीं जाना?"

"अहं?"

"लेकिन इस तरह से तो पूरा जीवन गुजर जाएगा।"

"अब हमारे बस की बात नहीं है। यह तो ठीक है कि मैंने प्रण लिया, वरना नसीब में से थोड़ी न कोई छिन सकता है?"

हमारा खेत आया। कोठरी आई। मैंने चारपाई बिछाई और कोठरी में पानी लेने गया। मैंने छुपकर बाहर देखा तो बापू चारपाई पर बैठे थे। उन्होंने अपने खेत की ओर नजर घुमाई। नजर मानो जैसे वही चिपक न गई हो, उस प्रकार चील की तरह देखते रहे। मैंने उनकी आँखों की पलकों तले नजर की। न जाने कितने बरसों की पीड़ा झलक रही थी।

साअ

गाँव-भलाणा, तालुका-हारीज,
जिला-पाटण-३८४२५५ (गुजरात)
दूरभाष : ९५३७८९७७९५

सिक्किम के उत्सवधर्मी लोकगीत और लोकनृत्य

• वीरेंद्र परमार

तिब्बत, नेपाल, भूटान की अंतरराष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित सिक्किम एक लघु पर्वतीय प्रदेश है। यह भारत का २२वाँ राज्य है। इसके पश्चिम में नेपाल, उत्तर में तिब्बत, दक्षिण में प. बंगाल और पूरब में भूटान है। यह सम्राटों, वीर योद्धाओं और कथा-कहानियों की भूमि के रूप में विख्यात है। पर्वतों से आच्छादित इस प्रदेश में वनस्पतियों तथा पुष्पों की असंख्य प्रजातियाँ विद्यमान हैं। सिक्किम राज्य की स्थापना १६ मई, १९७५ को हुई थी। इसकी राजधानी गंगटोक है। तीस्ता नदी सिक्किम की जीवनधारा है। यह सिक्किम की एकमात्र नदी है, जिसकी अनेक उपनदियाँ हैं। सिक्किम में १५० से अधिक प्राकृतिक झील हैं, जिन्हें अत्यंत पवित्र माना जाता है। मौसम की दृष्टि से सिक्किम अत्यंत खूबसूरत प्रदेश है। इस प्रदेश की गणना भारत के उन चुनिंदा राज्यों में होती है, जहाँ हर साल नियमित तौर पर बर्फबारी होती रहती है। यहाँ के निवासी हमेशा नियंत्रित और सुहाने मौसम का आनंद लेते हैं। सिक्किम को रहस्यमयी सौंदर्य की भूमि व फूलों का प्रदेश जैसी उपमा दी जाती हैं। नदियाँ, झीलें, बौद्धमठ और स्तूप बाँहें फैलाए पर्यटकों को आमंत्रित करते हैं। विश्व की तीसरी सबसे ऊँची पर्वत चोटी कंचनजंगा राज्य की सुंदरता में चार चाँद लगाती है। सिक्किम में लोकगीतों की समृद्ध परंपरा है। सिक्किमवासी अपने संस्कार गीतों, उपासना गीतों, त्योहार गीतों, फसल गीतों आदि के द्वारा अपनी कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ के लोकगीतों में विषय विविधता और भावनाओं का प्राबल्य है। प्रेम, विवाह, संस्कार, प्राकृतिक घटनाएँ आदि इन लोकगीतों के विषय होते हैं। लोकगीतों में सिक्किम का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य प्रतिबिंबित होता है। लिंबू समुदाय लोकगीतों के विषय-वैविध्य के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। लिंबू समुदाय के लोकगीतों को निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. **खयाली**—खयाली लिंबू समुदाय का प्रेमगीत है, जिसमें लड़के-लड़कियाँ काव्यात्मक भाषा में धुन के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

२. **प्रेम गीत**—शोरोक्पा पल्लम सम्लो, पल्लम सम्लो और तमके उकमा पल्लम सम्लो प्रणय गीत के विभिन्न प्रकार हैं। लड़के-लडकियाँ नृत्य करते समय या खेतों में कार्य करते समय प्रेम गीत गाते हैं। यह प्रणय गीत लड़के-लड़कियों के लिए विवाह की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करते हैं। यह गीत कुछ घंटों से लेकर कई दिनों तक चलते हैं।

सुपरिचित लेखक। 'अरुणाचल का लोकजीवन', 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक-साहित्य', 'हिंदी सेवी संस्था कोश', 'राजभाषा विमर्श' एवं 'कथाकार आचार्य शिवपूजन सहाय', 'डॉ. मुचकुंद शर्मा : शेषकथा' संपादित ग्रंथ प्रकाशित। संप्रति उपनिदेशक राजभाषा।

३. **हकपारे सम्लो**—बुजुर्ग लोगों के मनोरंजन गीत को 'हकपारे सम्लो' कहा जाता है। यह युगल गीत है।

४. **निसाम्मंग सेवा सम्लो**—सिक्किम के उत्सव गीत को 'निसाम्मंग सेवा सम्लो' कहा जाता है, जो यहाँ बहुत लोकप्रिय है। किसी उत्सव के आरंभ होने के समय जवान लड़के-लड़कियों द्वारा निसाम्मंग सेवा सम्लो गाए जाते हैं।

५. **के लंग सम्लो**—यह नृत्य के समय गाया जानेवाला मनोरंजन गीत है।

खस समुदाय के लोकगीतों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. **बारामासी गीत**—यह सदाबहार गीत हैं, जिन्हें बारहों महीने गाया जाता है। सिक्किम के गाँवों में रहनेवाले नेपाली लोग काम करते समय यह गीत गाते हैं। खेतों में कार्य करते समय, पशुओं के लिए घास काटते समय, जंगल से लकड़ियाँ एकत्र करते समय बारामासी गीत गाए जाते हैं। इस गीत में प्रत्येक महीने के महत्त्व को रेखांकित किया जाता है।

२. **जुवारी गीत**—जुवारी गीत खस समुदाय की पारंपरिक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है, लेकिन अब सिक्किम के समस्त नेपाली समुदाय ने इन गीतों को अपना लिया है। इन गीतों को दोहरी भी कहा जाता है। यह स्त्री-पुरुषों के बीच प्रश्न और उत्तर के रूप में गाए जाते हैं। इन गीतों के केंद्रीय भाव में स्त्री-पुरुष प्रेम होता है।

सिक्किम का नेवार समुदाय संगीत प्रेमी है। शिक्षित युवक आधुनिक संगीत और शास्त्रीय संगीत सुनते हैं। प्रत्येक नेवार घर में सितार अथवा हारमोनियम अवश्य होता है। इस समुदाय का लोकगीत भी अत्यंत उन्नत

है। इस समाज में मुख्यत: तीन प्रकार के लोकगीत पाए जाते हैं—

१. **सिंहाजया**—यह कृषि संबंधी गीत है, जिसे धान की खेती करते समय गाया जाता है।

२. **यात्रा-त्योहार संबंधी गीत**—यह यात्रा त्योहार के अवसर पर गाया जाता है।

३. **फागु गीत**—यह भावप्रधान गीत है। इन गीतों में तर्क नहीं बल्कि भावना की प्रधानता होती है।

लोकगीत की दृष्टि से भूटिया समुदाय बहुत समृद्ध है। इस समुदाय में दो प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं—

(अ) **झुंग-ल्हू लोकगीत**—यह भूटिया समुदाय का सामूहिक लोकगीत है, जो विवाह, गृह प्रवेश और लोसूंग त्योहार के समय नृत्य के साथ गाए जाते हैं।

(ब) **ते-ल्हू लोकगीत**—यह एकल या समूह में गाए जानेवाले लोकगीत हैं।

लोकगीत की दृष्टि से लेपचा समुदाय अत्यंत समृद्ध है। इस समाज में लोकगीतों की समृद्ध विरासत है। इनके लोकगीत बहुआयामी, विचारपरक और सारगर्भित होते हैं। इनके लोकगीतों को हम सामान्यत: दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं— पारंपरिक लोकगीत और आधुनिक लोकगीत। पारंपरिक लोकगीत विभिन्न त्योहारों एवं संस्कारों के अवसर पर पुजारियों द्वारा गाए जाते हैं, जबकि आधुनिक लोकगीत नई पीढ़ी द्वारा गाए जाते हैं, जिनमें नए विचार व नई धुन होती है। लेपचा समुदाय के लोकगीतों को मुख्यत: आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. लेनछयोवोम-प्रणय गीत, २. थनुंग सवोम-हास्य गीत, ३. अस्योत वोम-उत्सव गीत, ४. रूम कत वोम-कृषि संबंधी गीत, ५. बिवोम-विवाह गीत, ६. ल्यांग-निरो-चिको-वोम-देशभक्ति गीत, ७. अपार्त-अपोक-वोम-फसल गीत, ८. अपर्या-वोम-प्रार्थना गीत।

सिक्किम के सभी समुदायों का अपना विशिष्ट नृत्य है। सितंबर महीने में सिक्किम में दो दिवसीय कंचनदी जोड़ा नृत्य उत्सव आयोजित किया जाता है। इस अवसर पर कंचनजंगा की पूजा-अर्चना की जाती है। लोस्सूंग (नव वर्ष) के अवसर पर काली टोपी नृत्य प्रस्तुत कर हर्ष प्रकट किया जाता है। इस नृत्य के द्वारा बुराई पर अच्छाई, अंधकार पर प्रकाश एवं पाप पर पुण्य की विजय दिखाई जाती है। इस नृत्य की प्रस्तुति पुरुषों द्वारा की जाती है। नर्तकगण विभिन्न प्रकार के मुखौटे पहनकर बौद्ध धर्म से संबंधित कथाएँ सुनाते हैं। लिंबू समुदाय के लोग धान की खेती के उपरांत ढोल नृत्य द्वारा अपना हर्ष प्रकट करते हैं। लेपचा समुदाय के लोग भी फसल कटने के बाद समूह नृत्य करते हैं। सिक्किम का लोकनृत्य प्रदेश की लोक संस्कृति, लोकगीत, लोकजीवन और लोक वाद्ययंत्रों की मिश्रित प्रस्तुति है। यहाँ अनेक प्रकार के संस्कार नृत्य भी प्रचलित हैं। पुजारी द्वारा प्रस्तुत संस्कार नृत्य का उद्देश्य रोगी को स्वस्थ करना है। प्रदेश के अधिकांश लोकनृत्य संस्कार अथवा उत्सव से संबंधित हैं। सिक्किम में मुखौटा नृत्य भी प्रचलित है। नर्तकगण विभिन्न पशु-पक्षियों का मुखौटा धारण कर पारंपरिक नृत्य करते हैं। बरसिंगा नृत्य, कंकाल नृत्य, दंपू नृत्य भी सिक्किम में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

इस प्रदेश का लोकनृत्य लोकगीतों, वाद्ययंत्रों, लोक-संस्कृति, पारंपरिक परिधान और साज-सज्जा का समुच्चय है। सिक्किम के लोकनृत्य को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. **संस्कार नृत्य**—सिक्किम के संस्कार नृत्य को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) **खाईनजरी भजन**—यह खस समुदाय (बाहुन और छेत्री) का नृत्य है, जो रामायण और महाभारत पर आधारित है। किसी धार्मिक अथवा समाजिक उत्सव के अवसर पर पाँच से लेकर पंद्रह पुरुष सदस्यों द्वारा यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य को प्रस्तुत करने के पहले देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। आँगन में एक लंबे बाँस को गाड़ दिया जाता है। पवित्र पपीते के फल पर मिट्टी के दीप जलाए जाते हैं, जिसे बाँस पर लटका दिया जाता है। नर्तकगण जोड़ा बनाकर बाँस के पोल के चारों ओर घूमते हुए नृत्य करते हैं और ढोलक की धुन पर भजन गाते हैं।

(ब) **साक्यो रूम फाट**—साक्यो रूम फाट लेपचा समुदाय का त्योहार है। इस त्योहार में सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किया जाता है तथा ईश्वर से धन-धान्य की कामना की जाती है। इस त्योहार में सात अमर दंपतियों की उपासना की जाती है। लेपचा समुदाय के लोगों की धारणा है कि इन सात दंपतियों की अनुकंपा से ही फसलों की रक्षा होती है। यह लेपचा जनजाति का संस्कार नृत्य है, जिसकी प्रस्तुति नवंबर माह में की जाती है। सात अमर दंपतियों 'मयेल क्योंग' की पूजा में यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। लेपचा समुदाय का विश्वास है कि खेती संबंधी सभी प्रकार के बीज सात अमर दंपतियों द्वारा लाए गए थे। इस नृत्य में सभी स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं। वे पंक्ति में घूमते हुए नृत्य करते हैं।

(स) **तेनदोंग ल्हो रूम फाट**—तेनदोंग ल्हो रूम फाट भी लेपचा जनजाति का संस्कार नृत्य है, जिसकी प्रस्तुति प्रत्येक वर्ष ८ अगस्त को की जाती है। इस त्योहार नृत्य का संबंध एक प्राचीन आख्यान से है। एक कथा है कि एक बार सिक्किम में महाप्रलय आया था, जो सिक्किम की भूमि को निगलनेवाला था, लेकिन ईश्वर (रूम) ने सिक्किम को डूबने से बचा लिया। यह नृत्य टेनडोंग पर्वत की पूजा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(द) **यगरंगसिंग लंग**—यगरंगसिंग लंग लिंबू जनजाति का संस्कार नृत्य है। माघ पूर्णिमा (दिसंबर) के दिन इस नृत्य की प्रस्तुति की जाती है। देवी-देवताओं की पूजा के रूप में यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। समस्त लिंबू समुदाय देवी-देवताओं को नया अनाज और स्थानीय मदिरा अर्पित करता है और उनका आभार व्यक्त करता है। लिंबू जनजाति के लोग इस नृत्य के द्वारा विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना करते हैं। देवी-देवताओं को नवान्न का भोग लगाया जाता है तथा मांस, मदिरा आदि वस्तुएँ अर्पित कर उनकी उपासना की जाती है। इस नृत्य उत्सव में पूरा समुदाय सम्मिलित होता है। यह नृत्य उत्सव एक, तीन, सात अथवा नौ रातों तक चलता है। इस नृत्य में लिंबू समाज की ऊर्जा, मस्ती एवं उत्साह देखने को मिलता है।

२. उत्सव नृत्य-उत्सव नृत्य के दो प्रकार हैं—(अ) मरुनी नृत्य और (ब) कग्येद मुखौटा नृत्य।

(अ) **मरुनी नृत्य**—मरुनी नृत्य नेपाली समुदाय के सबसे पुराने और लोकप्रिय समूह नृत्य रूपों में से एक है, जो आमतौर पर तीन पुरुष और तीन महिला नर्तकियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। पुराने दिनों में मरुनी नृत्य में पुरुष ही महिला की भूमिका का निर्वाह करते थे, लेकिन रीति-रिवाजों और परंपराओं में बदलाव के बाद अब महिला नर्तकी केंद्रीय भूमिका निभाती है। इसे तिहार त्योहार के अवसर पर प्रत्येक घर के आँगन में प्रस्तुत किया जाता है। हारमोनियम, मादल, बाँसुरी और घुँघरू जैसे वाद्ययंत्रों के साथ गीतों की पृष्ठभूमि में नर्तकियों के कदमताल मन को मोह लेते हैं।

(ब) **कग्येद मुखौटा नृत्य**—'कग्येद' का अर्थ गुरु के आठ उपदेश है, जिसे इस नृत्य के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। लोसूंग त्योहार आरंभ होने से पूर्व बौद्ध भिक्षुओं द्वारा मठों में इस नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है। यह नृत्य रूप 'गुतोर समारोह' का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका आयोजन चौथे महीने की २८वीं तिथि (दिसंबर-जनवरी) को होता है।

३. **ऋतु संबंधी नृत्य**—ऋतु संबंधी नृत्य के दो प्रकार हैं—(अ) संगिनी नाच और (ब) तमके ऊकमा नाच।

(अ) **संगिनी नाच**—'संगिनी' का शाब्दिक अर्थ मित्र होता है। इस नृत्य के उद्‌भव के पीछे शिव और पार्वती का एक आख्यान है। अनेक जवान विधवाओं के दु:ख को देखकर पार्वतीजी अत्यंत दुखी और उदास हो गई थीं। इन महिलाओं ने जवानी में ही अपने पतियों को खो दिया था। पार्वतीजी ने शिवजी से आग्रह किया कि वे कुछ ऐसा उपाए करें, जिससे जवान महिलाएँ वैधव्य के अभिशाप से मुक्त हो सकें। शिव ने पार्वतीजी से कहा कि यदि स्त्रियाँ पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ उनकी पूजा करें तो वैधव्य के अभिशाप से मुक्त हो सकती हैं। उसी समय से महिलाओं द्वारा तीज व्रत किया जाता है। इस व्रत के अवसर पर नेपाली महिलाएँ अपने आँगन में संगिनी नृत्य करती हैं। संगिनी एक प्रमुख नेपाली नृत्य है, जो विवाहिता महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उसके साथ उसकी विवाहिता पुत्री भी होती है। इस नृत्य द्वारा ससुराल में हो रही कठिनाइयों को प्रदर्शित किया जाता है।

(ब) **तमके ऊकमा नाच**—तमके ऊकमा लिंबू समुदाय का ऋतु संबंधी नृत्य है। चैत्र-बैसाख माह में मानसून के पहले इसका प्रदर्शन किया जाता है। जवान लड़के-लड़कियाँ इस नृत्य में भाग लेते हैं। वे नृत्य के साथ प्रेमगीत भी गाते हैं। इस नृत्य में १०-१५ नर्तक शामिल होते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम में भी इस नृत्य की प्रस्तुति की जाती है।

चाबरुंग या केलंग—यह लिंबू समुदाय का नृत्य है, जो किसी विशेष अवसर पर अथवा विवाह के समय प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में प्रकृति के सौंदर्य को रेखांकित किया जाता है।

महाकाली और लखी—यह नेवार लोगों का मुखौटा नृत्य है, जिसमें असत्य पर सत्य और पाप पर पुण्य की विजय दरशाई जाती है। महाकाली नृत्य में देवी महाकाली और उनकी आठ साथियों द्वारा राक्षसों को दंडित करने का भाव प्रदर्शित किया जाता है।

सकेवा सिली—यह राई समुदाय का कृषि संबंधी नृत्य है, जिसमें धरती का आभार प्रदर्शन किया जाता है।

चंडी पूजा—देवी चंडी सुनुवार समुदाय की सबसे जाग्रत देवी मानी जाती हैं। बैसाख शुक्ल पूर्णिमा को नर्तक आठ अलग-अलग ढोल की धुन पर पूरी श्रद्धा और समर्पण के साथ चंडी नृत्य करते हैं।

चुटकी—यह उत्सव नृत्य है। फसल कटाई के समय और कुछ अन्य खुशी के अवसरों पर पुरुषों और महिलाओं के इस समूह नृत्य के माध्यम से हर्ष और जोश का प्रदर्शन किया जाता है।

दोहरी—यह गुरुंग समुदाय का समूह नृत्य है, जो आमतौर पर तीन पुरुष और तीन महिला नर्तकियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह एक पारंपरिक नृत्य है। पहले कठिन परिश्रम करने के बाद नर्तक 'रोडीघर' में एकत्र होकर गीत-नृत्य के माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते थे। इस नृत्य में मादल, बाँसुरी और घुँघरू जैसे वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल किया जाता है।

जेरुम सिल्ली—यह राई समुदाय का समूह नृत्य है, जो एक पुरुष और चार महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसके द्वारा लड़की के विवाह के अवसर पर परिवार के सदस्यों और दोस्तों की भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। नर्तकियों का लक्ष्य घर की लक्ष्मी (समृद्धि) की रक्षा करना है। जवान, वृद्ध सभी उम्र के लोग इस नृत्य में शामिल होते हैं। इसमें ढोल और झमता दो वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

तमांग सेलो—यह तमांग समुदाय का समूह नृत्य है, जो खुशी के अवसरों पर प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य द्वारा समुदाय के पराक्रम और जीवनी शक्ति पर प्रकाश डाला जाता है। तमांग लोकगीतों को 'हवाई' कहा जाता है, जो मानवीय भावनाओं से लबरेज होते हैं। ये गीत इतने लोकप्रिय हैं कि कोई भी नेपाली उत्सव बिना तमांग गीत के पूर्ण नहीं होता है।

लखी (मुखौटा) नृत्य—यह नेवार (प्रधान) समुदाय का समूह मुखौटा नृत्य है, जिसका उद्‌देश्य बुरी आत्माओं को दूर करना और शांति व समृद्धि लाना है। इस नृत्य में खे (ढोल), झाली और धीमे आदि वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता है।

नौमाटी—दमाई समुदाय के इस खूबसूरत समूह नृत्य में नौ प्रकार

के वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता है। इसमें दो प्रकार की शहनाई, छोटी और बड़ी तुरही, दो प्रकार के दमाहा (नगाड़ा), दो प्रकार के तुयुमको (छोटे ढोल), ढोलकी और झिमता (झाझ) का प्रयोग होता है। शादी और अन्य शुभ अवसरों पर नौमती बाजा अनिवार्य रूप से शामिल होता है।

च्याप-ब्रुंग नृत्य—च्याप-ब्रुंग लिंबो समुदाय का पारंपरिक वाद्ययंत्र है। यह ढोलक की तरह होता है, लेकिन आकार में बहुत बड़ा है। समूह नृत्य के दौरान पुरुष नर्तक रस्सी के सहारे अपने गले में इस वाद्ययंत्र को लटकाते हैं और ढोलक को एक तरफ हथेली से और दूसरी ओर छड़ी से मारते हैं। ढोलक पर इस तरह मारने से दो अलग-अलग ध्वनियाँ निकलती हैं, जो दर्शकों में उत्साह का संचार करती हैं।

धान नाच-चार पुरुषों और चार महिलाओं द्वारा हारमोनियम, मादल, बाँसुरी और घुँघरू की थाप के साथ किया गया, यह समूह नृत्य किसानों की सद्भावना और दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रतीक है। काम की एकरसता को तोड़ने और किसानों में उत्साह व ऊर्जा का संचार करने के लिए धान नाच प्रस्तुत किया जाता है। इसमें पुरुष, महिलाएँ, युवा और बूढ़े सभी भाग लेते हैं तथा गीत-नृत्य के माध्यम से वातावरण में सकारात्मकता का संचार करते हैं। यह प्राचीनकाल से पारंपरिक वेशभूषा में प्रस्तुत किया जानेवाला एक आनुष्ठानिक नृत्य है। लिंबू समुदाय के लोकनृत्य तीन प्रकार के हैं—

१. **प्राकृतिक नृत्य**—इस नृत्य में स्त्री-पुरुष सभी भाग लेते हैं। प्राकृतिक नृत्य में नर्तकगण पद संचालन द्वारा पशु-पक्षियों की नकल करते हैं।

२. **कृषि संबंधी नृत्य**—मक्के और धान के खेतों में कार्य करते समय युवक-युवतियाँ इस प्रकार के नृत्य करती हैं। यह नृत्य मंद गति से आरंभ होकर देर तक चलता है। युवक-युवतियाँ नृत्य के साथ प्रेम गीत भी गाती हैं। मंचों पर भी इस नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है। तमके ऊकमा, यिलकमा आदि नृत्य रूप इसमें शामिल हैं।

३. **युद्ध नृत्य**—लिंबू समुदाय में युद्ध नृत्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इसका उद्देश्य युवकों में जोश और उत्साह का संचार करना एवं समुदाय के लोगों में गौरव बोध जाग्रत करना है।

भूटिया लोकनृत्य को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) **झुंग-से नृत्य**—यह एक समूह नृत्य है, जिसमें नर्तक गोलाकार घूमते हुए देशी गीत की धुन पर नृत्य करते हैं। विवाह, गृह-प्रवेश और लोसूंग त्योहार के अवसर पर यह नृत्य किया जाता है।

(ब) **ते-झे नृत्य**—लोकगीतों की धुन पर एक नर्तक द्वारा या समूह में आगे-पीछे घूमते हुए यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। 'ते-ल्हू' लोकगीतों के साथ इस नृत्य की प्रस्तुति नयनाभिराम होती है। 'ते-ल्हू' लोकगीतों की धुन हिंदी कौवाली जैसी होती है।

लेपचा लोकनृत्य के छह प्रकार हैं—१. प्राकृतिक नृत्य, २. जोमल-लोक-कृषि संबंधी नृत्य, ३. फेन-लोक-युद्ध नृत्य, ४. गुरु-लोक-ऐतिहासिक नृत्य, ५. याबा-लोक-आध्यात्मिक नृत्य एवं ६. मिथक संबंधी नृत्य।

साअ
१०३, नवकार्तिक सोसाइटी, प्लॉट नं.-१३,
सेक्टर-६५, फरीदाबाद-१२१००४ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८६८२०००८५

नुस्खा

लघुकथा

• सविता इंद्र गुप्ता

प्रोफेसर और मेरा वर्षों का साथ था। सत्तर पार कर चुकने के बाद भी हमें कोई विशेष बीमारी न थी, पर हम दोनों एकमत थे कि 'बुढ़ापा खुद में एक बीमारी है'। प्रात: भ्रमण के दौरान मैं अकसर अपने बेटे-बहू द्वारा पग-पग पर किए जाने वाले अपमान और उपेक्षा की बात किया करता था, जबकि प्रोफेसर अपने बहू-बेटों की प्रशंसा के गीत गाते और मुझे भी बहू-बेटे को सुधारने के नायाब तरीके बताते। उनके बताए सुझावों को अपनाया तो गजब हो गया, मेरे बहू-बेटे मेरा आदर करने लगे। मैं प्रोफेसर का मुरीद हो गया। एक दिन भी वे न आते तो मैं बेचैन हो जाता।

एक बार जब प्रोफेसर साहब चार-पाँच दिनों तक नहीं दिखे, तो मैं उनके घर जा पहुँचा। लेकिन दरवाजे पर ही ठिठक गया। उनकी बहू कर्कश आवाज में चिल्ला रही थी, "अपने प्रोफेसर बाप से कह दो, जब तक तुम अपने ऑफिस में रहो, ये भी पार्क-वार्क में समय बिताया करें। तंग आ गई हूँ इनसे, दिन भर खाँसते-थूकते रहते हैं।"

"यार, मैंने कितनी बार पापा को समझाया, कहीं बाहर वक्त काटा करो और सिर्फ खाने के समय आया करो। क्या करूँ, सुनते नहीं, उम्र बढ़ने के साथ ढीठ होते जा रहे हैं।"

अपनी नम आँखें पोंछते हुए जैसे ही प्रोफेसर घर से बाहर निकले तो मुझे देखते ही पोपले मुँह से हँसते हुए बोले, "मास्टर, मजे में तो हो?"

"बस करो प्रोफेसर, तुमने बहुत अभिनय कर लिया। नुस्खे बता-बताकर मेरा तो उद्धार कर दिया, लेकिन अपना दर्द अकेले पीते रहे।"

प्रोफेसर पहले हँसे और फिर मेरे गले लग कर रो पड़े।

साअ
बी-३१, ग्राउंड फ्लोर,
साउथ एंड फ्लोर्स, सेक्टर-४९,
गुरुग्राम-१२२०१८ (हरियाणा)
दूरभाष : ८८००१०१७६९
savitainder@gmail.com

मेरे हिस्से का सुख

● मार्टिन जॉन

घोर गरीबी के दिन थे।

लगभग पाँच सौ रुपल्ली की तनख्वाह वाली नौकरी और आठ जनों की पेट की आग, उनका भरण-पोषण! पापा अकसर माड़-भात खाकर ड्यूटी चले जाते थे। सप्ताह में दो-तीन रोज हम भी वही खाकर स्कूल जाते थे। सर छुपाने के लिए रेलवे द्वारा आवंटित क्वार्टर था। रेलवे क्वार्टर के आगे-पीछे खाली जमीन थी, जिसे पापा ने झाड़-झंखाड़ से घेर कर उसे छोटी सी बगिया का रूप दे दिया था। नौकरी से बचे हुए समय का उपयोग वे बगिया की साफ-सफाई और उसमे कु-छेक मौसमी शाक-सब्जियाँ उगाने में करते थे। वे बगिया में खूब परिश्रम करते। इधर-उधर से अच्छी, उपजाऊ मिटटी लाते, जैविक खाद तैयार कर जमीन को उर्वर बनाते। चार-पाँच किलो बैंगन, भिंडी, करेला, कुछ शाक-भाजी की उगाही हो ही जाती थी।

पापा का बगिया के प्रति अगाध प्रेम और ड्यूटी में आठ घंटे की मेहनत के बाद भी बगीचे में उन्हें पसीना बहाते देखकर आस-पड़ोस के रेलकर्मियों को घोर आश्चर्य होता। नौकरी और बागवानी के बीच सामंजस्य बिठाए रखने के कौशल पर चर्चा होती। इसके लिए पापा की तारीफों के पुल बाँधे जाते।

पापा को कभी-कभार रिलीविंग ड्यूटी भी करनी पड़ती थी। इसके लिए उन्हें अपने स्थायी कार्यस्थल से किसी दूसरे स्टेशन जाना पड़ता था। दो-चार रोज के लिए घर से बाहर ही रहते। पापा की अनुपस्थिति में पौधों की देखभाल और उन्हें सींचने की जिम्मेदारी मेरी रहती। जब पापा अपनी रिलीविंग ड्यूटी खत्म कर वापस आते तो घर के अंदर दाखिल होने के पहले बगिया में ही चहलकदमी करते रहते। एक-एक पौधे का गौर से मुआयना करते। दो-चार दिनों के अंतराल में वयस्क हुए पौधों को देखकर उनके चेहरे पर एक अजीब सी खुशी पसर जाती। प्रत्येक पौधों को बड़े प्यार से स्पर्श करते, उन्हें हौले-हौले सहलाते। ऐसा लगता था जैसे ये सारे पौधे उनके प्यार के भूखे हैं। पापा की गैर-मौजूदगी उन्हें बेहद

सुपरिचित लेखक। शताधिक रचनाएँ, रेखाचित्र पत्र-पत्रिकाओं, वेब मैगजीनों, ब्लॉग, फेसबुक समूहों में प्रकाशित। आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति सेवानिवृत रेलकर्मी, स्वतंत्र लेखन। 'सारिका' लघुकथा प्रतियोगिता सहित अनेक सम्मानों से पुरस्कृत।

खली होगी। अपनी वापसी के बाद किसी पौधे को कुम्हलाया हुआ देखते तो उनके सीने में एक हुक सी उठती। अपराध-बोध से ग्रस्त हो जाते। देख-भाल में कोताही बरतने का इल्जाम मुझ पर लगता।

जिस दिन बगीचे से सब्जियाँ तोड़ी जाती उस दिन हम सब बेहद प्रसन्न रहते, यही सोचकर कि कम-से-कम इस बार तो सब्जियाँ खाने का सौभाग्य मिलेगा। लेकिन पापा अपनी आदत से मजबूर थे।

उनकी इस आदत से शाम होते-होते हम मायूस हो जाते। बेहद गुस्सा भी आता पापा के इस आदत और स्वभाव पर। कच्ची उम्र की समझ यह समझने में असमर्थ रहती कि जब अपना ही आटा गीला है तो ऐसी दरियादिली क्यों? बुरे और कठिन समय में 'दिल दरिया जान समंदर' बनने की क्या जरूरत है? बड़े भाई तो साफ शब्दों में कह देते कि पापा सठिया गए हैं। अभी भी फादर इब्राहिम बने हुए हैं। पापा की इस आदत पर माँ की प्रतिक्रिया विचित्र होती। रसोई घर में ऊँची आवाज में बड़बड़ाती रहती और उसी रफ्तार से बरतनों को पटकती रहती। पापा प्रतिक्रिया विहीन रहते। वे अपनी आदत और स्वभाव के मामले में जिद्दी भी थे। फाँके और मोहताज के दिनों में भी इस आदत को बचाए रखने की कूबत उनमें हमने देखी थी। खूब टोका-टोकी करने पर उनका जवाब यही रहता, "तुम लोग अभी नहीं समझोगे।" और फिर बाइबिल की एक पंक्ति दुहरा देते, '…जितना दोगे उससे दुगुना-चौगुना पाओगे।'

दरअसल होता यह था कि अपने हाथों से उगाही गई सब्जियों को तोड़कर वे शाम के वक्त उन्हें चार-पाँच हिस्सों में बड़े प्यार बाँटते। एक

हिस्सा थोड़ा बड़ा होता। हम समझ जाते कि यह हिस्सा घर के लिए है। उन चार-पाँच हिस्सों को पॉलिथीन की छोटी-छोटी थैलियों में डालते और निकल पड़ते घर से। आधे घंटे के अंदर पड़ोस के तीन-चार घरों में उन्हें बाँट आते। वापस आकर सीधे खटिया पर लेट जाते। माँ का बड़बड़ाना जारी रहता। बड़का भइया माँ के गुस्से की आग में घी डालते। परंतु पापा इन सब बातों से निर्लिप्त आँखें मूँदे लेटे रहते। हाँ, होंठों पर एक अलहदा किस्म की मुसकान देखने को मिलती। उस दिन कुछ ज्यादा ही तरोताजा और अपेक्षाकृत हसमुख लगते।

पापा जब तक जीवित थे, यह सिलसिला जारी था। पापा के गुजर जाने के बाद हम भाई-बहनों ने जैसे-तैसे अपनी-अपनी पढ़ाई पूरी की। कुछेक को रेलवे की नौकरी हाथ लगी। कुछ दूसरे काम-धंधे में लग गए। चूँकि पापा का निधन नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के पहले हुआ था। सो, नियमानुसार मुआवजे के रूप में मुझे नौकरी मिली। तृतीय श्रेणी में मेरी सीधी नियुक्ति हुई। वही क्वार्टर मेरे नाम से आवंटित हुआ। नौकरीशुदा भाइयों की एक-एक कर शादी हुई। वे अलग से रेलवे क्वार्टर आवंटित करवा कर रहने लगे। इसी बीच मेरी भी शादी हुई। पाँच-छह सालों के बाद मेरी पदोन्नति भी हो गई। अच्छा खासा वेतन वाला पद पर आ गया।

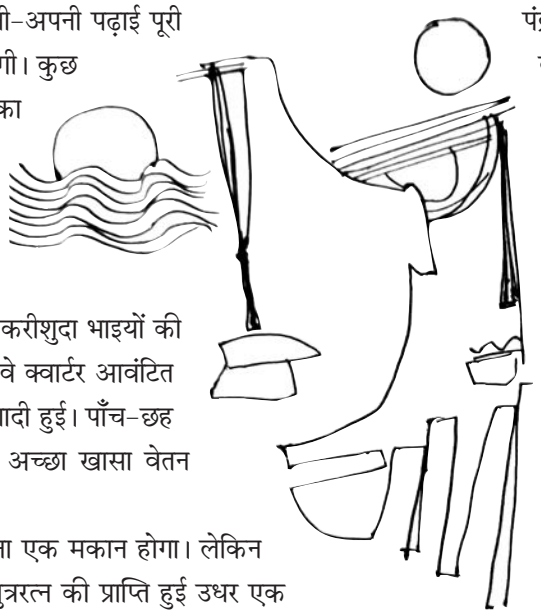

सपने में भी नहीं सोचा था कि अपना एक मकान होगा। लेकिन कालांतर में सपना सच हुआ। इधर एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई उधर एक मकान का मालिक भी बन गया। मकान जैसा भी हो वह गृह स्वामी के लिए शानदार ही होता है। अपनी देख-रेख में जो मकान तैयार किया जाता उसके प्रति एक जज्बाती रिश्ता कायम होना लाजिमी है। मकान छोटा है तो क्या हुआ, है तो 'अपना'।

इसमें दो राय नहीं कि इस अपनेपन का एहसास बड़ा ही सुकून देता है। मकान के सामने करीब आधा कट्ठा जमीन खाली छोड़ दी थी हमने। कुछ दिनों तक वह जमीन खाली ही पड़ी रही। चहारदीवारी उठाने के बाद आस-पड़ोस के मकानों के सामने हरे-भरे बगीचों को देखकर मुझे भी बागवानी का शौक चढ़ गया। शुरू में कुछ मौसमी फूलों के पौधे लगाए। कुछ गमलों में, कुछ जमीन में। बाद में कुछ सर्वसुलभ फलों के पौधे रोप दिए, जैसे पपीता, केला, अमरुद और नीबू। अगल बगल वालों से पूछताछ कर पौधों को हृष्ट-पुष्ट करने के लिए एक-दो प्रकार के जैविक और पौष्टिक खाद भी जड़ों में डालता गया। पौधे धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वयस्क होते पौधों को देखकर बड़ा अच्छ लगने लगा। ड्यूटी जाने से पहले और ड्यूटी से आने के बाद सूत-दर-सूत बढ़ते पौधों का मुआयना करना मेरी दिनचर्या में शामिल हो गया। यथासंभव देखभाल और सेवा-टहल का नतीजा यह निकला कि पौधे काफी सेहतमंद होकर बढ़ने लगे। एक दिन ऐसा भी आया जब पौधों से बने पेड़ों पर फल लगने लगे। छोटे-छोटे कच्चे फलों को देखकर मैं रोमांचित हो जाता। इस एहसास से मेरे मन-प्राण खुशी से लबालब हो जाता कि मेरे हाथों से रोपे गए पेड़ अब फल दे रहें हैं। पुत्र की प्राप्ति पर जैसी खुशी की अनुभूति हुई थी, करीब-करीब ऐसी ही खुशी का अनुभव अपने पेड़ों पर लदे फलों को देखकर होने लगा।

सबसे पहले केला फला, हृष्ट-पुष्ट। ऐसा कि देखकर ही जी ललचाए। एक दिन केले की कांदी को काट दिया। पूरे पंद्रह दर्जन केले। कम-से-कम पंद्रह-बीस किलो वजन। सोचता रहा, इन ढेर सारे केलों का क्या किया जाए। घर में खाने वाले सिर्फ दो। कितने दिन खाएँगे! याद आया, अपनी साइकिल पर सब्जियों की टोकरियाँ लादकर मोहल्ले के फेरे लगाने वाला सोमू अकसर कहा करता था, "मुझे बेच दीजिएगा भइया! वाजिब दाम आपको दूँगा।" तत्काल हमने कुछ केलों को अपने लिए रखकर शेष सारे बेच देने का मन बना लिया। लेकिन श्रीमतीजी मेरे इस फैसले को सिरे से खारिज कर दिया, "दुकानदारी करने के लिए पेड़-पौधे लगाए हो? पैसों की इतनी किल्लत भी तो नहीं है कि तुम सब्जियाँ बेचने को मजबूर हो जाओ।"

"तो क्या करूँ इतने सारे फलों का?"

"मेरी मानो, खुद खाओ और दूसरों को भी खिलाओ!"

श्रीमतीजी की नेक सलाह मुझे भा गई। तत्काल मैं पूरे केलों को दस हिस्सों में बाँटने बैठ गया। केलों को हिस्सों में बाँटते-बाँटते मुझे लगा गुजरे पच्चीस-तीस साल वाले वे दिन मेरे करीब आकर मुसकरा रहे हैं।

एकबारगी वह दृश्य जीवंत हो उठा, जब पापा अपनी आदत के मुताबिक सब्जियों को घर-घर बाँटने की खातिर हिस्सा-बँटवारा करते थे।

शाम के वक्त पड़ोसियों को केले बाँटकर जिस सुख के एहसास से मेरा पोर-पोर थिरक रहा था, वह मेरे लिए बिल्कुल नया था। वाकई, मेरी यह खुशनसीबी थी कि पापा को मिला वह दुर्लभ सुख अब मेरे हिस्से में था।

सा.अ.
अपर बेनियासोल, पो. आद्रा,
जिला-पुरुलिया-७२३१२१ (प. बं.)
दूरभाष : ०९८००९४०४७७
martin29john@gmail.com

क्रांति के विस्मृत नायक और कवि : पंडित जगतराम हरियानवी

● अजय कुमार 'अजेय'

२३ जून, १७५७ को प्लासी के युद्ध से शुरू हुआ आजादी का विद्रोह अपने विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ पहली बार संपूर्ण भारत-भूमि पर १८५७ के संग्राम के रूप में लड़ा जाता है। १८५७ के इसी महासमर को हम भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम कहकर याद करते हैं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद समस्त भारत निरंतर संघर्षरत रहा और अंततः १५ अगस्त, १९४७ को भारत ने परतंत्रता की बेड़ियों से खुद को आजाद कर लिया। लगभग १९० वर्षों तक, स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए किए गए इस यज्ञ की अग्निवेदी में न जाने कितने ही वीरों-वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की आहुति दी। इनमें से कितने ही योद्धा व क्रांतिकारी विस्मृति में कहीं लुप्त हो गए। ऐसे क्रांतिकारियों की सूची बनाने लगें तो ऐसे सैकड़ों-हजारों नाम निकलकर आ सकते हैं। आजादी के इन भूले-बिसरे दीवानों में एक नाम पंडित जगतराम हरियानवी का भी है। ये हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग के क्रांतिकारी एवं कवि हैं। "हरियाना, जिला होशियारपुर के नगमापरू नामक कस्बे को पंडित जगतराम का जन्म-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। पंडितजी ने आरंभ से ही एक अलबेला स्वभाव पाया था। सदैव निर्द्वंद्व और प्रसन्न रहना आपके स्वभाव की विशेषता है।"

ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका गए थे और वहाँ इनकी घनिष्ठता गदर आंदोलन के नेता लाला हरदयाल से हो गई। कुछ समय तक ये अमेरिका में ही क्रियाशील रहे, लेकिन मातृभूमि प्रति इनका प्रेम इनके हृदय को सदा उद्वेलित करता रहा और बाद में उनके विचार बदल गए। सुदूर अमेरिका में बैठकर भारत की सेवा उन्हें समीचीन प्रतीत नहीं हुई। उन्होंने भारत में रहकर भारत की सेवा करने का निश्चय किया। पंडित जगतराम हरियानवी अमेरिका से भारत तो लौट आए किंतु परिस्थितियाँ यहाँ पर बद से भी बदतर हो चुकी थीं। देश की दुर्दशा पर कोई भी टिप्पणी करना, अपनी जान पर आफत मोल लेने के बराबर था, लेकिन भला जगतराम कहाँ रुकने वाले थे। वे निरंतर क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भी पुलिस की नजरों में चढ़ गए। सन् १९१४ में पुलिस ने लाहौर षड्यंत्र केस नाम का एक मामला पंजाब के कई नवयुवकों पर चलाया था। इन्हीं में पंडित जगतराम भी थे। एक दिन वह किसी कार्यवश पेशावर जा रहे थे और रावलपिंडी में गिरफ्तार कर लिये गए। बस फिर क्या होना था, जैसे सभी क्रांतिकारियों को फाँसी की सजा पहले से ही नियत रहती थी, सो पंडित जगतराम को भी फाँसी की सजा सुनाई गई। इस सजा को पंडित जगतराम ने हँसते-हँसते स्वीकार किया। पंडित जगतराम फाँसी पर चढ़ने के लिए तैयार थे कि फाँसी होने से एक दिन पहले उनके पिता उनसे मिलने आए और उन्हें अपनी सजा के खिलाफ अपील करने के लिए बाध्य कर दिया। अपने पिता के कहने पर पंडित जगतराम ने मजबूरन अपील की और उनकी सजा घटाकर आजीवन कारावास में बदल दी गई। पंडित जगतराम को काले-पानी भेज दिया गया, लेकिन बाद में स्वास्थ्य कारणों के चलते उन्हें गुजरात जेल में स्थानांतरित कर दिया गया।

कारावास के दौरान भी उन पर बहुत से अत्याचार किए गए, यहाँ तक कि (एक बार तो) छह वर्षों तक चिराग की रोशनी भी नसीब नहीं हुई, किंतु इन सब अत्याचारों से पंडित जगतराम की हिम्मत और बढ़ती ही गई और संभवतः इन्हें कई बार स्थानांतरित करके दूसरी जेलों में भेजा गया। क्रांतिकारियों पर जेल के भीतर अंग्रेज अधिकारी बहुत अत्याचार करते थे। पंडित जगतराम हरियानवी ने मातृभूमि की सेवा के लिए निरंतर अत्याचार सहे और अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। अपने कारावास के दौरान भी वे अन्य कैदियों की सेवा करते रहते थे। वे जिस भी जेल में भेजे जाते, वहाँ अन्य कैदी उनके मुरीद हो जाते थे और पंडित जगतराम जेल में रहते हुए भी आजादी की अलख जगाते। क्रांतिकारियों को भयंकर यातनाएँ दी जाती थीं। इन पर हो रहे अत्याचारों और यातनाओं की खबरें सुनकर अन्य युवाओं में जोश की लहर फैल जाती थी और उनका खून उबलने लगता था। जब अन्य कैदी रिहा होकर बाहर जाते तो वे जेल में

क्रांतिकारियों पर हो रहे अत्याचार का प्रचार करते थे। इस प्रकार के वृत्तांत सुनकर अन्य युवा भी प्रेरित होते थे और हँसते-हँसते आजादी की लड़ाई में कूद पड़ते थे। इस प्रकार जेल में रहते हुए भी पंडित जगतराम स्वतंत्रता के लिए लगातार संघर्षरत रहे। आजादी का लड़ाई के इस क्रांतिकारी कवि ने आजीवन देश-सेवा की।

पंडित जगतराम हरियानवी बहुत ही अच्छी कविताएँ और ग़ज़लें लिखते थे, लेकिन दुर्भाग्य से इनका समस्त रचना-कर्म उपलब्ध नहीं है। इनका उपनाम (तखल्लुस) 'खाकी' था तथा इनकी निम्नलिखित ग़ज़ल उपलब्ध है, जो संभवत: उन्होंने अपने कारावास के दौरान लिखी थी—

गर मैं कहूँ तो क्या कहूँ, कुदरत के खेल की।
हैरत से तकती है मुझे दीवार जेल की।
हम जिंदगी से तंग हैं तिस पर भी आशना
कहते हैं, और देखिएगा धार तेल की?
जकड़े गए हैं, किस तरह हम गम में क्या कहें,
बल खाके हम पे चढ़ गया, मानिंद बेल की।
'खाकी' को रिहाई तू दोनों जहाँ से दे,
आ ऐ अजल तू फाँद के दीवार जेल की!

इनकी एक अन्य कविता भी उपलब्ध है, जिसका शीर्षक इन्होंने 'एक देशभक्त के शब्दों में' लिखा है। यह कविता निम्नवत् है—

उफ! बागे आरजू की बहारें उजड़ गईं,
अब बेकरारियाँ मेरी हद से गुजर गईं!
उफ! लौहे-दिल पे नक्शे-तमन्ना नहीं रहा,
अब मेरे दिल को जब्त का पारा नहीं रहा!
जी चाहता है जामा-ए-हस्ती को फाड़ दूँ,
नालों से पाँव पीर फलक के उखाड़ दूँ!
रह-रह के हूक सी उठती है दिल में आज,
आतशकदा सा है मेरे दिल में छुपा हुआ!
रह-रह के याद आते हैं अपने पिता मुझे,
शायद कि दे गए हैं वे अपनी चिता मुझे!
अश्कों का मेरी आँखों से दरिया निकल गया,
महसूस यह हुआ कि कलेजा निकल गया!

इस प्रकार की ग़ज़लों व कविताओं से प्रेरित होकर कितने ही युवा आजादी की लड़ाई में शामिल हो गए थे। पंडित जगतराम ने भारत-भूमि की सेवा के साथ-साथ अपने रचनाकर्म से हिंदी भाषा की भी खूब सेवा की थी। अपने अमेरिका प्रवास के दौरान वे गदर पार्टी के लिए हिंदी अखबार में लेखन का कार्य भी करते थे। उनके हिंदी अखबार का नाम 'श्रीगणेश' था। पंडित जगतराम अमेरिका उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए गए थे, लेकिन वहाँ जाकर देश-सेवा की भावना ने हृदय में ऐसा स्थान लिया कि "अमेरिका-प्रवासी भारतीय भाइयों को मातृभूमि की दयनीय दशा का दिग्दर्शन कराना ही इस पत्र का उद्देश्य था और जगतराम की कुशल लेखनी ने उसका एक से बढ़कर एक वास्तविक चित्र खींचना आरंभ कर दिया। इस कार्य में उन्होंने काफी सफलता भी प्राप्त की।" और यही कार्य उन्होंने भारत वापस आने के बाद भी लगातार जारी रखा।

नवोदित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति सहायक आयुक्त, नवोदय विद्यालय समिति, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।

इस प्रकार पंडित जगतराम सरीखे कितने ही विस्मृत क्रांतिकारी कवि और नायकों ने त्याग और सेवा-भाव से स्वतंत्रता संघर्ष में अपना अमूल्य योगदान दिया। पंडित जगतराम का योगदान इस संदर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण कि उन्होंने मातृभूमि की सेवा के साथ-साथ मातृभाषा हिंदी की भी महती सेवा की थी। प्रति वर्ष हम स्वतंत्रता दिवस का राष्ट्रीय उत्सव मनाते हैं और आजादी की लड़ाई में शहीद हुए लोगों को याद करके उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।

इस प्रकार पंडित जगतराम सरीखे कितने ही विस्मृत क्रांतिकारी कवि और नायकों ने त्याग और सेवा-भाव से स्वतंत्रता संघर्ष में अपना अमूल्य योगदान दिया। पंडित जगतराम का योगदान इस संदर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण कि उन्होंने मातृभूमि की सेवा के साथ-साथ मातृभाषा हिंदी की भी महती सेवा की थी। प्रति वर्ष हम स्वतंत्रता दिवस का राष्ट्रीय उत्सव मनाते हैं और आजादी की लड़ाई में शहीद हुए लोगों को याद करके उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं। प्रति वर्ष स्वतंत्रता दिवस मनाने की यह प्रथा आजकल बिल्कुल तकनीकी सी हो गई है, थोड़े से देशभक्ति के गीत गा-बजाकर और रटे-रटाए से सांस्कृतिक कार्यक्रम करते हम सभी हर बार खाना-पूर्ति कर लेते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों में अब मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है। रवींद्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो राष्ट्रवाद या देशभक्ति की भावना का प्रदर्शन वास्तव में प्रतिदिन देश-कल्याण के लिए कुछ-न-कुछ अच्छा करना है। वैसे भी यदि हम लगातार प्रयास करें बूँद-बूँद से हम सागर भर सकते हैं। कुछ महीनों के बाद ही हम आजादी की ७५वीं वर्षगाँठ का उत्सव मनाएँगे और ऐसे समय में पंडित जगतराम जैसी विभूतियों को याद करके उनके प्रति अपनी निष्ठा और सम्मान का प्रदर्शन कर सकते हैं। इस प्रकार की विभूतियों को याद करके हम अपने युवाओं में भी देशभक्ति का संचार कर सकते हैं और उन्हें लगभग रोजाना राष्ट्र-कल्याण के लिए कुछ न कुछ नया करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

बी-२६/२, गली न. ०४
अमर विहार करावल नगर
दिल्ली-११००९०
दूरभाष : ८०१०६१०१९९

एक सूर्यास्त का ब्योरा

मूल : **व्लैदिमिर नैबोकोव**

अनुवाद : **सुशांत सुप्रिय**

सड़क के अँधेरे आईने में अंतिम ट्राम गायब हो रही थी। ऊपर बिजली के तारों का जाल था, जिसमें से कभी-कभी तिड़कने की आवाज के साथ चिनगारियाँ निकलती थीं। दूर से वे किसी नीले सितारे जैसी लगती थीं।

"पैदल चलना ही ठीक होगा, हालाँकि तुम पिए हुए हो, मार्क। नशे में धुत्त हो।"

चिनगारियाँ बुझ गई थीं। मकानों की छतें चाँदनी में चमक रही थीं। उनके चाँदी जैसे तीखे किनारे तिरछी काली दरारों में गुँथे हुए थे।

इस अंधकारमय आईने जैसी सड़क पर वह लड़खड़ाता हुआ घर की ओर चला जा रहा था। मार्क स्टैंडफस्स एक दुकान में विक्रेता का काम करता था। श्वेत बालों वाला मार्क किसी अर्ध-देवता जैसा लगता था। वह किस्मत वाला व्यक्ति था, जिसकी कमीज के कॉलर पर कलफ लगा होता था। उसकी गरदन के पीछे कॉलर की सफेद रेखा के ऊपर उसके बालों का अंत एक हास्यजनक लटकन के रूप में होता था, जो नाई की कैंची से बची हुई थी। बालों की इसी लटकन की वजह से क्लारा उससे प्यार करने लगी थी और उसने कसम खाई थी कि मार्क के प्रति उसका प्यार सच्चा था। उसने यह भी कहा था कि वह उस बरबाद हो गए रूपवान विदेशी नवयुवक को अब भूल चुकी थी, जिसने पिछले साल उसकी माँ से एक कमरा किराए पर लिया था।

"और फिर भी तुम नशे में धुत्त हो, मार्क!"

उस शाम मार्क और भूरे-लाल बालों तथा पीले चेहरे वाली क्लारा के सम्मान में मित्रों ने एक पार्टी का आयोजन किया था, जहाँ बीयर और संगीत का बंदोबस्त भी किया गया था। एक हफ्ते बाद उनकी शादी होनी तय हो गई थी। इसके बाद जीवन भर का परमानंद और शांति थी। फिर वे दोनों अपनी रातें भी एक साथ बिताया करेंगे, जब क्लारा के भूरे-लाल बालों की चमक पूरे तकिए पर फैली होगी। सुबह उसकी खनकती हँसी, उसके हरे परिधान और उसकी अनावृत ठंडी बाँहों का साथ होगा।

चौक के बीचोबीच एक अस्थायी, चौकोर झोंपड़ी सी बनी हुई थी। ट्राम की पटरियों की मरम्मत का काम चल रहा था। उसे याद आया कि आज कैसे उसने क्लारा की पोशाक की छोटी आस्तीन में अपना मुँह

सुपरिचित लेखक-अनुवादक। हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार, कवि तथा साहित्यिक अनुवादक। सात कथा-संग्रह, तीन काव्य-संग्रह तथा विश्व की अनूदित कहानियों के छह संग्रह प्रकाशित।

घुसा कर उसकी बाजू पर बने हृदय को छू लेने वाले चेचक के टीके के निशान को चूम लिया था। अब वह घर की ओर जा रहा था। बहुत ज्यादा खुशी और बहुत ज्यादा पी लेने की वजह से उसकी चाल अस्थिर थी। वह अपने हाथ में पकड़ी हुई पतली छड़ी को घुमाता हुआ चला जा रहा था। खाली सड़क के दूसरी ओर स्थित अँधेरे मकानों से टकराकर उसके कदमों की आवाज रात में गूँज रही थी। पर सड़क के नुक्कड़ पर पहुँचने पर उसके कदमों की प्रतिध्वनि आनी बंद हो गई। उस जगह हमेशा की तरह टोपी और पेटबंद पहने वही आदमी गाय और सूअर के मांस से बना सामिष आहार बेच रहा था। वह मांस भूनने की अपनी ग्रिल के बगल में खड़ा होकर किसी उदास चिड़िया की कोमल आवाज में ग्राहकों को अपने पास बुला रहा था।

मार्क ने उस सामिष आहार और चाँद-तारों के जाल में कभी-कभी जलकर बुझ जाती नीली चिनगारियों के लिए एक सुखद करुणा महसूस की। अपनी तनी देह को अनुकूल बाड़ का सहारा देते हुए उसे हँसी आ गई और झुकते हुए उसने तख्ते के बीच बने एक छोटे से गोल छेद में अपनी साँस बाहर छोड़ते हुए ये शब्द कहे, "क्लारा, क्लारा, ओ मेरी प्रिये!"

बाड़ के दूसरी ओर मकानों के बीच की खाली जगह में एक आयताकार भूखंड था। कई बंद-गाड़ियाँ वहाँ विशाल ताबूतों की तरह खड़ी थीं। उनमें इतना सामान भरा हुआ था कि वे फूली हुई लग रही थीं। ईश्वर ही जानता था कि उनमें क्या-क्या भरा हुआ था। संभवत: बलूत की लकड़ी से बने संदूक, लोहे की मकड़ियों जैसे दीपाधार और बड़े पलंग का भारी ढाँचा। चाँद उन बंद-गाड़ियों पर जैसे अपनी निष्ठुर कोप-दृष्टि डाल रहा था। भूखंड के बाईं ओर एक खाली पिछली दीवार पर हृदय

के आकार की विशाल काली परछाइयाँ नजर आ रही थीं। दरअसल वे आवर्धक परछाइयाँ पटरी के किनारे लगे बिजली के खंभों के पास उगे एक पेड़ की पत्तियों की अतिरंजित छाया थी।

जब वह अपने फ्लैट के मंजिल की अँधेरी सीढ़ियाँ चढ़ा, मार्क तब भी मुँह बंद करके हँस रहा था। वह सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर पहुँचा पर गलती से उसने अपना पाँव फिर ऊपर उठा दिया, जिससे उसका पाँव भद्दे ढंग से धड़ाम् से नीचे आया। जब वह अँधेरे में दरवाजे में चाबी डालने वाले छेद को टटोल रहा था, उसकी बाँस की छड़ी उसकी बगल में से फिसलकर एक आवाज के साथ सीढ़ियों पर से नीचे सरक गई। मार्क साँस रोककर खड़ा हो गया। उसे लगा कि नीचे फिसलती हुई छड़ी घुमावदार सीढ़ियों के साथ घूमकर सबसे निचली सीढ़ी तक पहुँच जाएगी। लेकिन लकड़ी के सीढ़ियों से टकराने की तेज आवाज बीच में ही बंद हो गई। छड़ी जरूर कहीं अटककर रुक गई होगी। राहत महसूस करते हुए वह दाँत निकालकर मुसकराया और जंगले को पकड़कर वह सीढ़ियों से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। उसके खोखले सिर में पिए हुए बीयर का संगीत बज रहा था। सीढ़ियाँ उतरते हुए वह लगभग गिर ही गया था और वह किसी तरह धप्प् से एक सीढ़ी पर बैठ गया, जबकि उसके हाथ अँधेरे में कुछ टटोलते रहे।

ऊपर वाली मंजिल के फ्लैट का दरवाजा खुला। आधे कपड़े पहने, मिट्टी के तेल का चिराग अपने हाथ में पकड़े, पलकें झपकाती हुई फ्राऊ स्टैंडफस्स बाहर आई। उस रोशनी में उसके बाल धुँधले लग रहे थे। उसने आवाज लगाई, "क्या वह तुम हो, मार्क?"

एक पीली फानाकार रोशनी जंगले, सीढ़ियों और उसकी छड़ी पर पड़ रही थी। हाँफता हुआ, किंतु प्रसन्न मार्क दोबारा सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरी मंजिल पर पहुँच गया। उसकी काली, कुबड़ी परछाईं दीवार पर उसके पीछे-पीछे चलती रही।

तब कम रोशनी वाले उस कमरे में, जिसे एक लाल परदे ने दो हिस्सों में बाँट रखा था, उन दोनों में यह बातचीत हुई—

"मार्क, तुम नशे में धुत्त लग रहे हो!"

"नहीं, नहीं, माँ···मैं बेहद खुश हूँ।"

"तुम्हारे कपड़े गंदे हो गए हैं, मार्क। तुम्हारे हाथ पर कालिख लगी है।"

"मैं बेहद खुश हूँ···अहा, यह सुखद लग रहा है···पानी अच्छा और ठंडा है। थोड़ा पानी मेरे सिर पर डालो···और पानी डालो···सबने मुझे बधाई दी, और इसके लिए उनके पास सही कारण था···मेरे सिर पर थोड़ा पानी और डालो।"

"लेकिन वे कहते हैं कि कुछ समय पहले वह किसी और से प्यार करती थी—साहसिक कार्य करने वाले किसी विदेशी से। वह फ्राऊ हेइसे को पाँच मार्क का बकाया किराया दिए बिना ही वहाँ से चला गया था।"

"बस, बस! तुम कुछ नहीं समझती हो, आज पार्टी में हम सबने कितने गीत गाए···देखो, मेरा एक बटन टूट गया है···मुझे लगता है, जब मेरी शादी हो जाएगी तो वे मेरा वेतन दुगुना कर देंगे।"

"चलो, सोने के लिए बिस्तर पर चलो···तुम सिर से पाँव तक गंदे लग रहे हो, और तुम्हारी नई पतलून भी गंदी हो गई है।"

उस रात मार्क को एक दुःस्वप्न आया। उसने दुःस्वप्न में अपने स्वर्गीय पिता को देखा। उसके पिता उसके पास आए। उनके पसीने से भरे पीले चेहरे पर एक अजीब मुसकान थी। उन्होंने मार्क को बाँहों के नीचे से पकड़ लिया और चुपचाप उसे गुदगुदी करने लगे—बिना रुके, लगातार और हिंसात्मक ढंग से।

उसे वह सपना तब याद आया, जब वह सामान बेचने वाली उस दुकान पर पहुँचा जहाँ वह काम करता था। और उसे वह सपना इसलिए भी याद आया, क्योंकि उसके एक मित्र हँसमुख एडोल्फ ने उसकी पसलियों में उँगली से गुदगुदी की। एक पल के लिए उसकी आत्मा में जैसे कोई झरोखा खुल गया, जो पल भर के लिए हैरानी के साथ स्थिर होकर जम गया, और फिर जैसे वह झरोखा फटाक से बंद हो गया। फिर सबकुछ दोबारा सहज व निर्मल हो गया और वे टाइयाँ, जिन्हें वह अपने ग्राहकों को बेचता था, उसकी प्रसन्नता से हमदर्दी रखते हुए मुसकराने लगीं। वह जानता था कि उस शाम वह क्लारा से मिलेगा। वह केवल रात का खाना खाने के लिए अपने घर आएगा और इसके बाद वह क्लारा से मिलने के लिए सीधे उसके घर चला जाएगा···उस दिन जब वह क्लारा को बता रहा था कि शादी के बाद वे दोनों कितने आराम से और प्रेममय तरीके से रहेंगे, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी थी। हालाँकि मार्क समझ गया था कि ये तो प्रसन्नता के आँसू थे (जैसा कि क्लारा ने स्वयं बताया)। वह कमरे में तेजी से घूमने लगी थी। उसकी पोशाक किसी हरे पाल की तरह लग रही थी। फिर वह आईने के सामने तेजी से अपने उन चमकदार बालों को सीधा करने लगी जो खूबानी के मुरब्बे के रंग के थे। उसका चेहरा पीला और बदहवास सा था। जाहिर है, वह भी प्रसन्नता की वजह से होगा। आखिर यह सब कितना सहज-स्वाभाविक था।

"धारी वाली? हाँ, जरूर।"

उसने अपने हाथ पर ही टाई की गाँठ बनाई और उसे इधर-उधर हिला-डुलाकर जाँचा। यह उसका ग्राहक को लुभाने का तरीका था। उसने दक्षता से गत्ते के चौरस डब्बों को खोला।

इस बीच उसकी माँ से मिलने कोई अतिथि आया—वह फ्राऊ हेइसे थी। वह बिना किसी पूर्व-सूचना के आई थी और उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। बहुत सावधानी से वह एक तिपाई पर बैठ गई, जैसे वह टूट कर टुकड़े-टुकड़े होने से डर रही हो। साफ-सुथरी रसोई में फ्राऊ स्टैंडफस्स बरतन धो रही थी। लकड़ी का एक द्वि-आयामी सूअर दीवार पर टँगा हुआ था और स्टोव पर एक आधी खुली माचिस और एक जली हुई तीली पड़ी हुई थी।

"मैं आपके पास एक बुरी खबर लेकर आई हूँ, फ्राऊ स्टैंडफस्स।" यह सुनकर दूसरी महिला अपनी जगह पर जड़ हो गई। उसके हाथ में एक तश्तरी थी, जिसे वह अपनी छाती से लगाए हुए थी।

"यह खबर क्लारा के बारे में है। वह पागल हो गई है। मेरा पिछला किराएदार आज वापस आ गया—आप जानती हैं न, वही जिसके बारे में मैंने आपको बताया था। क्लारा अपने होशो-हवास खो बैठी है। हाँ, यह सब आज सुबह ही हुआ। वह अब आपके बेटे की शक्ल कभी नहीं देखना चाहती। आपने उसे नई पोशाक सिलवाने के लिए कपड़ा दिया था; वह कपड़ा आपको लौटा दिया जाएगा। और यह पत्र मार्क के नाम है। क्लारा पागल हो गई है। मुझे समझ नहीं आ रहा, यह क्या हो रहा है।"

दूसरी ओर मार्क दुकान का काम निपटा चुका था और अब अपने घर की ओर निकलना चाह रहा था। उसका मित्र एडोल्फ उसे घर तक छोड़ने उसके साथ आने वाला था। वे दोनों रुके, उन्होंने एक-दूसरे से हाथ मिलाया और मार्क ने अपने कंधे से दुकान के दरवाजे को धकेला जो एक ठंडे खालीपन की ओर खुल गया।

"घर क्यों जाएँ? छोड़ो उसे। चलो तुम और मैं कहीं चलकर कुछ खाते-पीते हैं, 'ऐडोल्फ अपनी छड़ी के सहारे टिककर ऐसे खड़ा था, जैसे वह कोई पूँछ हो।' चलो चलें, मार्क।"

मार्क ने अपने गालों को धीरे से रगड़ा और फिर हँसा। "ठीक है, लेकिन बिल के पैसे मैं अदा करूँगा।"

आधे घंटे बाद जब वह शराबखाने से निकला और उसने अपने मित्र को विदा किया तो नहर का पूरा दृश्य आग्नेय सूर्यास्त की लाली से भरा हुआ था। दूर दिख रहे बारिश से भीगे हुए पुल का किनारा सुनहरा लग रहा था, जिस पर से छोटी-छोटी काली आकृतियाँ गुजर रही थीं।

उसने अपनी घड़ी पर निगाह डाली और बिना अपनी माँ से मिले सीधे अपनी प्रेमिका के घर जाने का फैसला किया। उसकी प्रसन्नता और शाम की निर्मल स्वच्छता की वजह से उसका माथा थोड़ा चकरा रहा था। किसी कार से बाहर कूद रहे किसी बाँके युवक के रोगन किए जूते से ताँबे का एक चमकीला तीर टकराया।

गड्ढे अब तक नहीं सूखे थे। वे चारों ओर से गीले अँधेरे से घिरे हुए (डामर की सजीव आँखों जैसे) लग रहे थे। शाम की मुलायम उद्दीप्ति उनमें प्रतिबिंबित हो रही थी। सारे मकान हमेशा की तरह धूसर लग रहे थे। लेकिन उनकी छतें, ऊपरी मंजिलों के ऊपरी साँचे, कलई लगे बिजली के खंभे, पत्थर के गुंबद और लघु-स्तंभ—ये सब अभी चटख गेरुआ रंग में रँगे हुए थे। दिन में तो किसी को भी इनके होने का अहसास नहीं होता, क्योंकि अधिकांश लोग ऊपर देखते ही नहीं। सूर्यास्त की वायवीय ऊष्मा में ये सब अप्रत्याशित और जादुई लग रहे थे—ये बाहर निकले हिस्से, छज्जे, कँगनियाँ और छजलियाँ तथा खंभे अपने चमकदार गहरे पीले रंग की वजह से एक-दूसरे से अलग दिख रहे थे, जबकि हलके भूरे अग्र-भाग उनके नीचे मौजूद थे।

अहा! मैं कितना खुश हूँ—मार्क सोचता रहा। जैसे मेरे चारों ओर मौजूद हर चीज मेरी खुशी का जश्न मना रही है।

ट्राम में बैठते हुए उसने एक प्यार भरी कोमल निगाह अपने सहयात्रियों पर डाली। मार्क के चेहरे पर यौवन की लाली थी। उसकी ठोड़ी पर गुलाबी मुँहासे थे और उसकी प्रदीप्त आँखें प्रसन्नता से भरी थीं। उसकी गरदन के पीछे गुद्दी के पास बिन कटे बालों की एक लटकन मौजूद थी, किस्मत ने शायद उसे बचाए रखा था।

कुछ ही पलों बाद मैं क्लारा से मिलूँगा। वह मुझे दरवाजे पर मिलेगी। वह कहेगी कि वह बड़ी मुश्किल से शाम तक उसकी प्रतीक्षा कर पाई।

अचानक वह चौंक गया। जिस जगह उसे उतरना था, बस वहाँ से आगे निकल चुकी थी। ट्राम के दरवाजे तक पहुँचने की जल्दी में वह चिकित्सकीय पत्रिका पढ़ रहे एक मोटे आदमी से टकरा कर गिरते-गिरते बचा। मार्क अपनी टोपी को तिरछा झुकाना चाहता था, पर इस चक्कर में वह लगभग गिर ही गया; ट्राम पहियों के घर्षण की आवाज के साथ मुड़ रही थी। अपना संतुलन बनाए रखने के लिए ऐन मौके पर उसने ऊपर टँगे एक पट्टे को पकड़ लिया। उस मोटे आदमी ने गुस्से से बड़बड़ाते हुए धीरे-धीरे अपना छोटा सा पैर पीछे खींच लिया। उसकी धूसर रंग की मूँछें युद्ध-प्रिय ढंग से ऊपर की ओर उठी हुई थीं। मार्क ने उसे अपनी गलती स्वीकार कर लेने वाली मुसकान दी और ट्राम के अगले हिस्से के दरवाजे पर पहुँच गया। उसने पकड़कर उतरने वाली वहाँ लगी लोहे की छड़ों को दोनों हाथों से पकड़ लिया। फिर वह आगे की ओर झुका और चलती ट्राम से बाहर छलाँग लगाने के लिए गति का सही अनुमान लगाने लगा। नीचे चिकना और झिलमिलाता डामर तेजी से गुजर रहा था। मार्क ने छलाँग लगा दी। उसे अपने पैरों के तलवों में घर्षण की जलन महसूस हुई और उसके पैर जमीन पर पड़ते ही अपने आप दौड़ने लगे—वहाँ उसके पैरों के पटके जाने की अनैच्छिक गूँज आने लगी। तभी कई अजीब सी चीजें एक साथ हो गईं। मार्क से दूर जाती हुई ट्राम के अगले हिस्से से कंडक्टर की बहुत तेज चीख सुनाई दी; चमकदार डामर किसी झूले की सीट की तरह तेजी से ऊपर की ओर उठा; एक गरजते हुए आकार ने मार्क को पीछे से जोरदार टक्कर मारी। उसे लगा जैसे सिर से पैर तक उसकी पूरी देह पर बिजली गिर गई हो और उसके बाद जैसे कुछ नहीं हुआ। वह चमकदार, चिकने डामर पर अकेला खड़ा था। उसने अपने चारों ओर देखा। कुछ दूरी पर उसे अपनी ही आकृति दिखाई दी। इकहरी पीठ वाला मार्क सेंटैंडफस्स सड़क पर तिरछा चला जा रहा था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। हैरान होकर वह तेजी से चला और एक ही पल में अपनी आकृति के पास पहुँच गया और जब वह फुटपाथ के पास पहुँच रहा था तो उसकी पूरी देह लगातार कम होती थरथराहट से भर गई।

वह तो बेवकूफाना बात थी। वह बस द्वारा लगभग कुचल ही दिया गया था।

सड़क चौड़ी और खुशनुमा थी। सूर्यास्त के रंग ने आधे आकाश पर कब्जा कर लिया था। मकानों की ऊपरी मंजिलें और छतें धूप की शानदार रोशनी में नहा रही थीं। वहाँ ऊपर मार्क पारभासी मंडपों, चित्रवल्लरियों और भित्तिचित्रों, नारंगी गुलाबों वाली जालियों, सुनहरे आकाश की ओर उन्मुख पंख लगी मूर्तियों और प्रदीप्त वीणाओं को देख सकता था। जैसे चमकीली लहरों में ये पारलौकिक, आनंदमय वास्तुशिल्पीय सम्मोहन

किसी सुखद दूरी में पीछे लौट रहे थे। मार्क यह नहीं समझ सका कि उसने पहले कभी इन ऊँची लटकी दीर्घाओं और मंदिरों को ध्यान से क्यों नहीं देखा था।

उसका घुटना किसी चीज से टकराया और दर्द फिर जोर से उभर आया। फिर से वही काली बाड़। उधर दूर खड़ी बंद-गाड़ियों को पहचान लेने पर वह अपनी हँसी नहीं रोक सका। वे वहाँ विशाल ताबूतों की तरह खड़ी थीं। उन्होंने अपने भीतर क्या छिपा रखा होगा, खजाना? भीमकाय मनुष्यों के अस्थि-पंजर? या बहुमूल्य मेज-कुरसियों के धूल भरे पहाड़?

अरे, मुझे वहाँ जाकर देखना चाहिए, वरना यदि क्लारा मुझसे पूछेगी तो मैं क्या जवाब दूँगा?

उसने एक बंद-गाड़ी के दरवाजे को जल्दी से हलका धक्का दिया और उसके भीतर चला गया। भीतर से वह लगभग खाली था। वहाँ बीच में केवल पुआल से बनी एक कुरसी पड़ी थी, जो हास्यास्पद ढंग से तीन टाँगों पर टेढ़ी टिकी हुई थी।

मार्क ने अपने कंधे उचकाए और वह दूसरी ओर से वहाँ से बाहर निकल गया। एक बार फिर गरमियों की शाम की चौंध उसकी आँखों में भर गई। और अब उसकी आँखों के सामने लोहे का परिचित छोटा फाटक था और उसके आगे एक पेड़ की हरी डाल से घिरी क्लारा के कमरे की खिड़की थी। क्लारा ने खुद ही फाटक खोला और प्रतीक्षा में वहीं खड़ी रही। वह अपनी अनावृत कोहनियाँ उठाए अपने बालों को सँवारती रही। उसकी बगलों में मौजूद बालों के गेरुआ गुच्छे उसकी छोटी आस्तीनों की धुपहली खुली जगह में से दिखाई दे रहे थे।

बिना आवाज किए हँसते हुए मार्क उसे गले से लगा लेने के लिए दौड़कर आगे बढ़ा। उसने अपने गाल क्लारा के गरम हरे रेशमी वस्त्र से दबाए।

क्लारा का हाथ उसके सिर पर आकर रुक गया।

"मैं आज सारा दिन कितनी अकेली थी, मार्क। पर शुक्र है, अब तुम यहाँ मेरे पास हो।"

उसने मकान का दरवाजा खोला और मार्क ने तुरंत अपने आप को भोजन-कक्ष में पाया। वह कमरा उसे अत्यधिक बड़ा और रोशन लगा।

"जब लोग खुश होते हैं, जैसे कि हम अभी हैं," क्लारा बोली, "तो उन्हें गलियारे की जरूरत नहीं होती।" क्लारा भावपूर्ण फुसफुसाहट में बात कर रही थी और मार्क को लगा जैसे उसके शब्दों का कोई खास व असाधारण अर्थ था।

भोजन-कक्ष में बर्फ जैसी सफेद, अंडाकार मेजपोश के इर्द-गिर्द बहुत सारे ऐसे लोग बैठे हुए थे, जिन्हें मार्क नहीं जानता था और जिन्हें उसने अपनी प्रेमिका के घर में पहले कभी नहीं देखा था। उनमें चौड़े सिर वाला साँवला ऐडोल्फ भी था। वहाँ छोटे पैरों एवं बड़ी तोंद वाला वह बूढ़ा आदमी भी था, जो ट्राम में चिकित्सकीय पत्रिका पढ़ रहा था और वह अब भी बड़बड़ा रहा था।

मार्क ने शर्मीले ढंग से सिर हिलाकर वहाँ मौजूद सभी लोगों का अभिवादन किया और क्लारा की बगल में बैठ गया, और जैसा कि उसे कुछ पल पहले भी लगा था, उसे उस समय लगा जैसे भयानक दर्द की एक असहनीय लहर उसकी पूरी देह से गुजर गई हो। वह दर्द से तड़पने लगा और क्लारा का हरा परिधान तैरता हुआ दूर चला गया तथा अंत में छोटा होकर एक हरी बत्ती में बदल गया। डोरी से लटकी वह हरी बत्ती एक ओर से दूसरी ओर हिल रही थी और मार्क उस हरी बत्ती के नीचे पड़ा था। अकल्पनीय दर्द उसकी देह को रौंद रहा था और उस झूलती हरी बत्ती के अलावा कुछ भी पहचान में नहीं आ रहा था। उसकी पसलियाँ उसके सीने में चुभ रही थीं, जिसकी वजह से उसके लिए साँस ले पाना असंभव होता जा रहा था। कोई उसके पैरों को मोड़ रहा था, खींच रहा था, तो उसे लगा जैसे एक पल में उसका पैर ही टूट जाएगा। किसी तरह उसने स्वयं को मुक्त किया और वह हरी बत्ती दोबारा चमकती हुई दिखी।

मार्क ने खुद को कुछ दूरी पर क्लारा के साथ बैठे हुए देखा तो उसे लगा जैसे उसके पैर क्लारा के गरम रेशमी लहँगे को छू रहे हों; और अपना सिर पीछे किए क्लारा हँसती चली जा रही थी।

अभी-अभी क्या हुआ था, उसे सबको यह बताने की ललक महसूस हुई। मिलनसार ऐडोल्फ और चिड़चिड़े मोटे आदमी समेत वहाँ मौजूद सभी लोगों को एक प्रयास के साथ संबोधित करते हुए उसने कहा, "विदेशी नदी के किनारे यह प्रार्थना कर रहा है।"

उसे लगा कि उसने सबकुछ स्पष्ट कर दिया था और जाहिर है, वे सब यह समझ गए थे···क्लारा ने अपने होंठ गोल करते हुए उसके गाल पर चिकोटी काटी और कहा, "ओ मेरे बेचारे प्रेमी, सब ठीक हो जाएगा।"

अब वह थकान महसूस कर रहा था और उसे नींद आ रही थी। उसने क्लारा की गरदन के इर्द-गिर्द अपनी बाँह रखी, उसे अपनी ओर खींचा और पीछे होकर लेट गया। अब भयानक दर्द ने उस पर फिर झपट्टा मारा और सबकुछ बिल्कुल स्पष्ट हो गया। बुरी तरह से घायल और बँधी पट्टियों में लिपटा मार्क चित पड़ा हुआ था और उसके ऊपर लटकी हरी बत्ती अब आगे-पीछे नहीं झूल रही थी। मूँछों वाला वह परिचित मोटा आदमी, जो कि सफेद लबादे में एक डॉक्टर था, मार्क के आँखों की पुतलियाँ को गौर से देखते हुए चिंतित स्वर में कुछ बड़बड़ाया। कितना भयानक दर्द! हे ईश्वर! अब किसी भी पल एक पसली उसके हृदय को चीर कर फाड़ देगी, यह बेवकूफाना बात है, क्लारा यहाँ क्यों नहीं है?

अप्रसन्न दिखते हुए डॉक्टर कुड़बुड़ाया।

मार्क अब साँस नहीं ले रहा था। वह प्रस्थान कर चुका था, पता नहीं किन दूसरे सपनों में, यह कोई नहीं बता सकता।

ए-५००१, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-२०१०१४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८५१२०७००८६
sushant1968@gmail.com

गेट्लिनबर्ग : एक रोमांचक अनुभव

● राजेंद्र नागदेव

गेट्लिनबर्ग आकर पता चलता है कि जीवन को पूरे उल्लास के साथ किस तरह जीया जाता है। यह एक बहुत छोटा सा कस्बा है अमेरिका के टेनेसी प्रांत के पहाड़ी क्षेत्र में। यह मुख्य मार्ग के दोनों ओर फीते की तरह लंबाई में बसा हुआ है। हम पिजनफोर्ज नामक स्थान पर एक होटल में ठहरे हैं। यह स्थान गेट्लिनबर्ग से सात मील की दूरी पर है। संध्या समय भोजनोपरांत यह सोचकर बाहर निकले कि पंद्रह-बीस मिनट बस यों ही आसपास कहीं घूम लेंगे और वापस आ जाएँगे। किंतु गेट्लिनबर्ग के सम्मोहन में इस तरह बँध गए कि घंटों सड़क पर घूमते रहे। यह कस्बा टेनेसी प्रांत की दिशा से आते हुए अमेरिका के सबसे बड़े राष्ट्रीय उद्यान 'ग्रेट स्मोकी माउंटेन नेशनल पार्क' के निकट है। इसे नेशनल पार्क का प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। नेशनल पार्क आने वाले पर्यटक इस स्थान की भी जीवंतता का भरपूर आनंद उठाने अनिवार्य रूप से यहाँ आते हैं।

आज शनिवार अवकाश का दिन है। अत: सड़क पर भीड़भाड़ बहुत अधिक है। हजारों की संख्या में पर्यटक रास्ते के दोनों ओर फुटपाथों पर आवाजाही कर रहे हैं। सभी देशों के लोग हैं भारतीय भी, जिनमें अधिकतर दक्षिण भारत के हैं। इनमें बच्चों, प्रौढ़ और वृद्ध स्त्री-पुरुषों के साथ ही अमेरिका में अध्ययन अथवा नौकरी कर रहे युवक-युवतियाँ हैं। यह भीड़ फुटपाथ पर उद्वेलित जलधारा की तरह एक दिशा से दूसरी दिशा में जाती है, फिर कुछ किलोमीटर चल कर वापस लौटती है और विपरीत दिशा में जाने लगती है। खूब उल्लसित लोग···खूब उत्साहित लोग··· आवाजें-ही-आवाजें···हम भी धारा के प्रवाह में इधर से उधर, उधर से इधर आ रहे हैं, जा रहे हैं। मैं, पत्नी, बेटी, दामाद और तीन व छह वर्षीय दो नातिनें हैं। पार्किंग की समस्या है। कार बहुत दूर खड़ी की है। बच्चियाँ कभी पैदल चलती हैं कभी शिशु गाड़ी में बैठ जाती हैं।

गेट्लिनबर्ग पर्यटन उद्योग पर ही पूर्णत: आश्रित कस्बा है। अत: पर्यटकों के मनोरंजन हेतु आवश्यक सभी साधन रास्ते के दोनों ओर की छोटी-छोटी दुकानों में उपलब्ध हैं। बच्चों के खिलौनों की दुकानें, उपहारों की दुकानें हैं, जादू के करतब दिखाते लोग हैं, खाद्य सामग्री की गुमटियाँ, छोटे-छोटे रेस्त्राँ और पब हैं, खूब ऊँची आवाज में संगीत बज रहा है। मनोरंजन और थकान मिटाने के सारे साधन इस एक सड़क पर उपलब्ध।

रात आकाश से उतरने लगी है। रंगीन रोशनियाँ बढ़ती जा रही हैं और उनके साथ लोगों की भीड़ और शोर भी। इस स्थान पर आकर लग रहा है जैसे पृथ्वी पर दु:ख है ही नहीं, आनंद-ही-आनंद है। जीवन-अमृत

सुपरिचित लेखक एवं अनुवादक। हिंदी में १२ काव्य-संग्रह, एक यात्रा-वृत्तांत 'धुंध और आकार', अंग्रेजी में २ काव्य-संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मेमोरियल ट्रस्ट, दिल्ली का 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

का भरपूर पान कर लेने की अदम्य इच्छा है चारों ओर। एक छोटे से पहाड़ी कस्बे के अनुरूप दुकानें छोटी-छोटी, किंतु चमक-दमक से भरी हुई हैं। कोई इमारत तीन मंजिल से ऊँची नहीं है। अधिकांश एक या दो मंजिली ही हैं। चलते-चलते एक इमारत में लंबे-तगड़े मनुष्य की प्रतिमा दिखाई देती है। ऊँचाई सामान्य मनुष्य से लगभग डेढ़ गुनी। रुक कर देखते हैं। यह विश्व के सबसे ऊँचे मनुष्य की प्रतिमा है और वह स्थान एक छोटा सा गिनीज म्यूजियम है। हम कुछ देर उसे बाहर से ही कर देखकर आगे बढ़ जाते हैं।

अँधेरा और गहरा गया है। हम चलते-चलते 'स्काइ लिफ्ट' के स्टेशन पर आ गए हैं। सामने बिल्कुल काले आकाश की पृष्ठभूमि पर दो समानांतर पंक्तियों में एक दूसरे से विपरीत दिशाओं में धीरे-धीरे सरकती हुई सैकड़ों छोटी-छोटी लाल बत्तियाँ दिखाई दे रही हैं। वे सामने पहाड़ पर बहुत ऊँचाई तक जा रही हैं। लगता है, जैसे सीधे आसमान में जा रही हों। ये स्काईलिफ्ट की बत्तियाँ हैं। एक साथ एक दिशा में चल रही लिफ्टों की संख्या लगभग सवा सौ होगी। दो लिफ्टों के मध्य अंतर लगभग पंद्रह फीट होगा। अंधकार में यह दृश्य भयभीत कर देने वाला है। बच्चों की इच्छा थी कि स्काईलिफ्ट से पहाड़ पर चला जाए। मुझे वह बहुत भयानक प्रतीत हो रहा था। एक तो निरंतर चलते रहने से बुरी तरह थक चुका था दूसरे मुझे कभी भी चक्कर आ जाने की समस्या है। अचानक लिफ्ट में चक्कर आ गए तो क्या होगा, यह आशंका मन में बार-बार आ रही थी। बाद में पता चला कि यह आशंका निर्मूल नहीं थी। किंतु यदि मैं नहीं जाता तो कोई भी नहीं जा पाता। बच्चों की इच्छा अधूरी रह जाती। कुछ देर विचार कर अंतत: मैंने जाने का निर्णय कर ही लिया। हमने टिकटें खरीदीं और अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगे। हमारी बारी आती है। हम स्काईलिफ्ट में बैठते हैं। स्काईलिफ्ट और जो कुछ भी हो, केबल कार के रूप में तो उसकी कल्पना नहीं ही कहा जा सकती जो हम उसे देखने के पहले कर रहे थे। देखकर आश्चर्य और भय हुआ कि यह तो बिल्कुल ही

असुरक्षित है। स्टील के पाइप को मोड़कर कुरसी का आकार दे दिया गया है। बैठने और पीठ टिकाने के लिए छिद्रों वाले दो पतरे लगा दिए गए हैं बस। सुरक्षा संबंधी किसी तरह की कोई व्यवस्था है ही नहीं। यहाँ तक कि व्यक्ति को कुरसी से बाँधे रखने के लिए भी कोई पट्टा तक नहीं है। सहारे के लिए सामने केवल स्टील का एक पाइप है। वह भी पक्का स्काईलिफ्ट से जुड़ा हुआ नहीं है। कुरसी पर बैठने के लिए उसे उठाकर पीछे की ओर कर दिया जाता है। बैठने के बाद वापस सामने ले आया जाता है। सहारे के लिए व्यक्ति उसी पाइप को हाथों से पकड़ सकता है बस। सबसे अधिक डराने वाली बात यह है कि स्काईलिफ्ट ऊपर से, दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे, हर तरफ से बिल्कुल खुली है। प्लास्टिक या केन्वास तक का कोई आवरण नहीं है। केबलकारें तो कारों की तरह हर तरफ से बंद होती हैं और यात्री उसमे सुरक्षित महसूस करते हैं। यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है कि कोई सुरक्षित महसूस कर सके। मैंने उत्तराखंड में परवानू में दो पहाड़ों के मध्य पौने दो किलोमीटर लंबे पथ पर घाटी के ऊपर से केबलकार में यात्रा की है। वहाँ सुरक्षित महसूस हो रहा था तो घाटी के ऊपर हवाई यात्रा का बहुत आनंद आया था। यहाँ स्थिति बिल्कुल विपरीत है। केवल भय और रोमांच है। स्काईलिफ्ट छोटी है। एक स्काईलिफ्ट में केवल दो व्यक्ति ही बैठ सकते हैं, जैसे झूले पर बैठते हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि अमेरिका जैसे देश में जहाँ नागरिकों और विशेष रूप से, बच्चों की सुरक्षा के लिए अत्यंत कठोर नियम हैं वहाँ इतनी असुरक्षित स्काईलिफ्ट चलाने की अनुमति कैसे दी गई? हम लोग तीन स्काईलिफ्टों में हैं। एक में मैं और पत्नी, दूसरी में दामाद बड़ी बेटी के साथ हैं और तीसरी में हमारी बेटी अपनी छोटी बेटी के साथ बैठी है। बार-बार मुझे लग रहा है कि यदि कोई छोटा बच्चा मचल गया और अभिभावक के हाथ से छूट गया तो वह सीधा नीचे गिर जाएगा जैसे-जैसे अँधेरा बढ़ता जा रहा है वातावरण अधिक भयावह होता जा रहा है। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद स्काईलिफ्टें चल पड़ती हैं। हम मुख्य सड़क के ऊपर से पहाड़ की ओर जा रहे हैं। सड़क पर खूब गाड़ियाँ चल रही हैं। हम अभी सड़क से बहुत ऊपर नहीं हैं। नीचे से गाड़ियों में बैठे लोग हाथ हिला-हिलाकर स्काईलिफ्ट में जा रहे लोगों का अभिवादन कर रहे हैं और प्रत्युत्तर में वे भी वैसा ही कर रहे हैं। सड़क और पहाड़ के बीच सड़क के समानांतर छोटी सी नदी बह रही है। हम नदी के ऊपर से गुजरते हैं। अब पहाड़ आरंभ होता है। पहाड़ भूमि से लगभग सौ अंश के कोण पर सीधा ऊपर गया है। अब तक हम भूमि से बहुत ऊपर नहीं थे, अब पहाड़ के समानांतर चढाई आरंभ हो गई है। ऊपर से ट्यूबलाइटों, लट्टुओं, नियान लाइटों और गाड़ियों की बत्तियों से जगमगाता मुख्य रास्ता दूर तक पसरा हुआ दिखाई दे रहा है किसी रत्नजटित विशाल सर्प की तरह। स्काईलिफ्ट चारों ओर से एकदम खुली होने के कारण ऐसा लग रहा है कि हम पंछी की तरह आकाश से पृथ्वी का विहंगम दृश्य देख रहे हैं। आनंद और भय का रोमांचक मिश्रण है मन के अंदर।

जैसे-जैसे स्काईलिफ्ट ऊपर जा रही है, डर बढ़ता जा रहा है। नीचे झाँकना उतना ही कठिन होता जा रहा है। यद्यपि, स्काईलिफ्ट पहाड़ की सतह से बहुत ऊपर नहीं है पहाड़ भूमि से लंबवत होने के कारण ऐसा लग रहा है जैसे हम खूब गहरी घाटी के ऊपर हों और पूरी तरह असुरक्षित हों। एक केबल पर स्काईलिफ्टें ऊपर की ओर जा रही हैं, उसके समानांतर दूसरी केबल पर विपरीत दिशा से वापस लौट रही हैं। जाने और वापस आने वाले लोग परस्पर हाथ हिला-हिलाकर अभिवादन कर रहे हैं। पहाड़ के शीर्ष पर पहुँचकर यात्रा समाप्त होती है। यहाँ स्काईलिफ्ट से उतरते ही पास के केबिन में बैठी एक लड़की स्काईलिफ्ट में बैठे हुए मेरा और पत्नी का छायाचित्र सामने कर देती है। पता नहीं यह चित्र कब, कैसे लिया गया होगा। आज की उन्नत तकनीकी में वैसे सबकुछ संभव है। हमें वह चित्र बहुत स्पष्ट नहीं लगा और मूल्य भी अधिक बताया जा रहा था। हम चित्र लिए बिना आगे बढ़ जाते हैं।

यहाँ भोजन सामग्रियों और छोटे-मोटे उपहारों की दुकानें हैं। तीन-चार भारतीय लड़के, जो हमारे साथ ही स्काईलिफ्टों से उतरे हैं, अभी-अभी हुए अनुभव को साझा कर रहे हैं। एक कह रहा है, "बाप रे! इतना डर लग रहा था कि अगर मेरी चप्पल भी गिर जाती तो मैं झाँककर नीचे नहीं देखता।" मुझे संतोष हुआ कि मेरा भय अकारण नहीं था। अन्य लोगों ने भी, किशोरों और तरुणों ने भी वैसा ही भय महसूस किया था। हम लगभग घंटा भर पहाड़ की चोटी पर रहे फिर वापसी यात्रा आरंभ हुई। जब स्काईलिफ्ट से जमीन पर उतरे तब जान में जान आई।

आज हम दिन में भी खूब चले थे। कुछ देर फुटपाथ पर चलने के बाद शरीर ने चलने से इनकार कर दिया। चक्कर आने लगते हैं। मैं फुटपाथ के किनारे बनी दो-ढाई फुट ऊँची दीवार पर बैठ जाता हूँ। सामने पब है। पीना-पिलाना चल रहा है और खूब ऊँची आवाज में संगीत बज रहा है। दामाद अमित बच्चों के साथ बहुत आगे निकल गए हैं। पंद्रह मिनट विश्राम करने पर लगा कि अब चल सकता हूँ। चलता हूँ तो चार कदम बाद लड़खड़ा जाता हूँ। अब पैदल चलना संभव नहीं है। अमित को फोन करते है। थोड़ी देर में गाड़ी आ जाती है और हम पिजनफोर्ज की ओर चल देते हैं।

गेट्लिनबर्ग की मुख्य सड़क, उसकी चमक-दमक, शोर और उल्लास को अंतिम बार प्रणाम कर होटल में आ जाते हैं। होटल एक नदी 'लिटिल पिजन रिवर' के किनारे स्थित है। बालकनी से दूर-दूर तक नदी का आकर्षक दृश्य दिखाई देता है। नदी के किनारे पर दूर तक कारें और बड़ी गाड़ियाँ खड़ी हैं। इनमे सप्ताहांत में प्रकृति के साथ समय व्यतीत करने शहरों के लोग आए हैं। हर आयु वर्ग के स्त्री-पुरुष और बच्चे हैं। बहुत अधिक आयु के वृद्ध भी हैं। ये सारा आवश्यक सामान गाड़ियों में भरकर अपने साथ लाते हैं। तंबू तानते हैं। दरियाँ, चटाइयाँ बिछाते हैं। आराम कुरसियों पर दिन में धूप में आराम करते हैं। खेल खेलते हैं। नदी में मछलियाँ पकड़ते हैं। इस तरह अपने दैनिक जीवन की व्यस्त गतिविधियों में वापस लौटने से पहले जीवन का भरपूर आनंद लेते हैं। रात्रि के समय अलाव जलाकर उसके आसपास गाते-बजाते हैं।

गेट्लिनबर्ग आकर ऐसा लगता है, जैसे दुनिया में दु:ख-दर्द कहीं है ही नहीं, बस आनंद-ही-आनंद है।

डी के २-१६६/१८, दानिशकुंज
कोलार रोड, भोपाल-४६२०४२ (म.प्र.)
दूरभाष : ८९८९५६९०३६

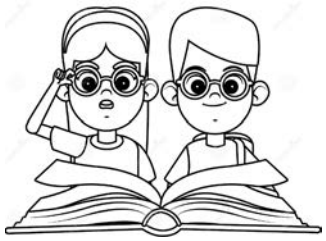

बाल-कहानी

निर्णय

• निश्चल

सुपरिचित लेखक। व्यंग्य, कविता, ग़ज़ल, कहानी, लघुकथा, साक्षात्कार एवं लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'लल्ली प्रसाद पांडेय बाल-पत्रकारिता' सम्मान।

समय से उठना, स्कूल जाना, पढ़ाई करना, होमवर्क करना, खेलना, ऐसे सारे काम परफेक्ट तरीके से करने के कारण न केवल मम्मी-पापा का बल्कि स्कूल में और कॉलोनी में भी सबका लाड़ला था अतुल।

अतुल स्कूल से आने के बाद शाम को हलका सा नाश्ता करता और खेलने चला जाता। होमवर्क और पढ़ाई का समय होने से पहले घर आ जाता। यों तो वह पार्क में केवल एक घंटे ही खेलता था, लेकिन उसके बाद लगभग एक घंटे वह किसी-न-किसी के घर में होता। कॉलोनी में सबका लाड़ला जो था।

अतुल जब घर लौटता था तो उसकी माँ, रंजना खाना लगाती तो अकसर वह कह देता था कि भूख नहीं है, और अगर खाना खाता भी तो कम ही खाता। हाँ, शाम को अगर मम्मी कुछ बढ़िया या अलग सा खाने को कुछ बनातीं और उसके कमरे में रख देतीं, तो वह सारा का सारा जरूर खा लेता था। अतुल की रात को खाना न खाने या कम खाने की आदत से उसकी माँ रंजना परेशान थीं। उन्होंने अतुल से कई बार पूछा भी कि बेटा, क्या बात है? तुम रात को ठीक से खाना नहीं खाते। इस पर अतुल मुसकराकर कह देता कि आज राखी दीदी ने ढोकला खिला दिया था या ललिता ताई ने कचौड़ी खिला दी थी या फिर ऊषा दादी ने लड्डू खिला दिए थे। ऐसे ही कोई-न-कोई जवाब उसका होता था। माँ कहती, "वह तो ठीक है बेटा, लेकिन फिर भी अपने खाने का ध्यान तुम्हें रखना चाहिए।" अतुल कहता, "ठीक है माँ, अब से ध्यान रखूँगा।" लेकिन फिर से उसका वही हाल हो जाता था।

एक शाम माँ ने अतुल के कम खाने की बात, साथ ही कॉलोनी में, औरों के यहाँ कुछ-न-कुछ खा आने की बात उसके पापा संजीव को बताई। वे भी कई बार रात को देख चुके थे कि अतुल रात में ठीक से खाता नहीं था। उन्होंने अतुल को समझाया, "बेटा, आपके सारे काम अच्छे हैं। बस, यह रात को खाने का जो मामला है, इसे भी ठीक कर लो। आप किसी के यहाँ कुछ भी खाओ, लेकिन शरीर-दिमाग के लिए तो भोजन ही उत्तम होता है।"

अतुल ने पापा की बात पर अपनी सहमति जताई और भरोसा दिलाया कि वह इसका खयाल रखेगा। लगभग सात-आठ दिन तो ठीक रहा, पर अतुल का फिर से वही ढर्रा हो गया। इस बार पापा ने उसे सख्त आदेश दिया, "कल से खेलने के बाद तुम सीधे घर आओगे और कॉलोनी में किसी के यहाँ नहीं जाओगे।"

यह सुनकर अतुल एकदम सन्नाटे में आ गया। लेकिन पापा के आदेश को तो वह टाल नहीं सकता था। उसका कॉलोनी के घरों में आना-जाना बंद हो गया। इससे उसके रात के खाने की स्थिति थोड़ी ठीक जरूर हो गई, लेकिन केवल थोड़ी सी।

एक-दो दिन बीते। अब अतुल कुछ उदास, कुछ चिंता में रहने लगा। लेकिन वह कर भी क्या सकता था! चार दिन बीत चुके थे। आज रविवार था, सो अतुल के पापा भी घर पर ही थे। तभी दरवाजे की घंटी बजी, पापा ने गेट खोला तो देखा, ललिता ताई मुसकराती हुई खड़ी थीं। उन्हीं के साथ राखी दीदी एक हाथ से अपनी बैसाखी पकड़े और एक हाथ में टिफिन लिये खड़ी थीं। अतुल के पापा ने उन्हें अंदर बुलाकर बिठाया। वे गेट बंद ही करने वाले ही थे कि उन्होंने देखा कि ऊषा दादी हाथ में मोबाइल लिए हाँफती हुई चली आ रही थीं। अतुल के पापा ने उन्हें प्रणाम किया, हाथ का सहारा देते हुए अंदर ले आए और सोफे पर बिठाया।

अब तक अतुल की माँ भी डाइंग रूम में आ गई थीं। अतुल की माँ ने जब तीनों को देखा तो तीनों को प्रणाम किया। ललिता ताई ने पूछा, "अतुल का क्या हाल है, ठीक तो है न वह?"

अतुल की माँ बोली, "हाँ-हाँ ताई, वह बिल्कुल ठीक है। अपने कमरे में पढ़ रहा है।"

"बहुत होशियार बच्चा है, चार दिन से नहीं आया तो मुझे लगा, कहीं बीमार तो नहीं हो गया, इसीलिए जैसे-तैसे, हाँफते-हूँफते उससे मिलने चलने आई।" ऊषा दादी बोलीं।

राखी दीदी ने अतुल की माँ की तरफ टिफिन बढ़ाते हुए कहा, "लो भाभी, अतुल के लिए ढोकला लाई हूँ, उसे बहुत पसंद है। अब कई दिनों से आया नहीं तो मुझे उसकी चिंता हुई। वह रोज शाम को जब आता है तो पूछ लेता है, 'दीदी, कुछ लाना तो नहीं है।' अब मैं तो बैसाखी लेकर दुकान या बाजार तक मुश्किल से जा पाती हूँ। सो प्यारा अतुल, रोज ही जो सामान मुझे मँगाना होता है, लाकर दे देता है। सचमुच बहुत होनहार बच्चा है। वरना तो आजकल के बच्चे अपने घर के लिए ही कुछ लेने नहीं जाते। ऐसे में हम जैसों के लिए कौन जाएगा।"

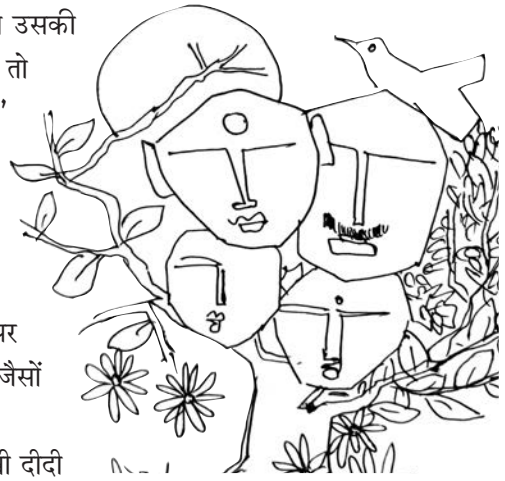

अतुल की माँ टिफिन हाथ में पकड़े राखी दीदी की बात सुन रही थीं।

"सही कह रही हो राखी," तभी ऊषा दादी बोलीं, "अब मेरा बेटा जो बंगलुरु में रहता है। मेरे लिए यह महँगा स्मार्ट फोन तो दिला गया, लेकिन मैं बुढ़िया कहाँ इस फोन को चलाना जानूँ! वह तो अतुल ही है, जो रोज शाम को मेरे बेटे-बहू से वीडियो कॉल पर बात करवा देता है। यों तो घर पर कामवाली आती है, पर वह भी यह फोन चलाना नहीं जानती। अब चार दिन से अतुल नहीं आया तो मेरी तो बहू और बेटे से वीडियो कॉल पर बात ही नहीं हो पाई। मैं अपने नाती को देख नहीं पाई। हालाँकि कल जब बेटे का फोन आया तो मैंने आवाजें तो सबकी सुन लीं, लेकिन वीडियो कॉल वाली बात सादा कॉल में कहाँ?" ऊषा दादी फोन को उदासी से देखने लगीं।

ललिता ताई थैले से टिफिन निकाले और बोलीं, "लो रंजना, तुम्हारे टिफिन।"

"हमारे टिफिन, आपके यहाँ! इन्हें तो मैं कल-परसों ढूँढ़ रही थी।" अतुल की माँ आश्चर्यचकित हुईं।

ललिता ताई हँसी और बोलीं, "अरे, तुमने जो पकौड़ियाँ बनाई थीं, वह अतुल मेरे लिए लाया था। उसे पता है कि मुझे पकौड़ी बहुत पसंद हैं। सो जब भी तुम पकौड़ी या मेरी पसंद की कोई चीज बनाती हो तो वह मेरे लिए जरूर ले आता है।"

रंजना मुसकराकर रह गईं। आज उनके समझ में आया था कि आखिर वे चीजें जो वह अतुल के कमरे में रख देती थीं, कैसे खत्म कर लेता था!

ललिता ताई फिर से बोली, "रंजना, तुम्हारा अतुल बहुत खास बच्चा है। पूरी कॉलोनी में ऐसा कोई और है ही नहीं। हमसे रोज मिलने आता है। अपनी चीजें खिलाता है, और हमारे बहुत कहने के बाद कुछ खाता है। अकसर कहता है 'नहीं ताई, आज कुछ नहीं खाऊँगा, माँ डाँटेंगीं, और कहेंगी तू रात का खाना ठीक से नहीं खाता है' फिर हमारे बहुत कहने पर कहता है, 'अच्छा तो आपका मन रखने के लिए खा लेता हूँ।' उसके आने से मेरा अकेलापन कुछ कम हो जाता है। दिन भर तो मैं टीवी देखती हूँ या अपने काम करती हूँ। लेकिन शाम का इंतजार करती हूँ कि अतुल आएगा तो उससे कुछ बातें करूँगी। वह मुझ अनपढ़ को अखबार भी पढ़कर सुना देता है, वरना तो हमें क्या पता शहर में क्या हो रहा है?"

"लेकिन, वह है कहाँ, अब तक आया क्यों नहीं, ठीक तो है हमारा अतुल?" अतुल से मिलने को व्याकुल ऊषा दादी बोलीं।

"हाँ दादी, वह तो ठीक है, बस हम ही ठीक नहीं थे।" अतुल के पापा रंजना को देखते हुए बोले।

अचानक अतुल डाइंग रूम में आ गया और सभी को देख, चहककर बोला, "अरे ललिता ताई, राखी दीदी, ऊषा दादी आप!" अतुल को देख के उन तीनों के मुरझाए चेहरे खिल उठे। उन्होंने उसे अपने पास बिठा लिया और उससे बात करने लगीं। ऊषा दादी उसके सिर पर हाथ फिरा रही थीं तो ललिता ताई उससे पूछ रही थीं, "कहाँ रहा रे, इतने दिन? हमें तो चिंता हो गई तेरी!"

राखी दीदी ने मेज पर रखा टिफिन उठाया और उसमें से ढोकला निकालकर उसे खिलाते हुए बोलीं, "पता है, मुझे कितनी परेशानी हुई, जब मैं बाजार से सामान लेने गई? तूने तो मेरी बाजार जाने की आदत ही खत्म कर दी है, मेरे लाल!"

रंजना, संजीव उन चारों को देखते हुए मुसकरा रहे थे, और अपने 'निर्णय' को आज काफी हलका और छोटा महसूस कर रहे थे।

सा अ

'शारदायतन', पंचनगरी, सासनीगेट,
अलीगढ़-२०२००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९७१९००७१५३

कोयल की कूक निराली

• सुमन यादव

बसंत आगमन

दिन सुनहरा कनक सा
निशा दमकती रजत सी
मेघ का लगा चक्षु में काजल
निरखता मही को गगन
मन मयूर कर रहा नृत्य
मेंड़ों के पास
कभी चौकड़ी भरता मृग सा
जा पहुँचे खेतों के उस पार
जैसे उमड़-घुमड़कर काले बादल
अपना नेह धरा पर बरसाते
बसंत को देख ओस की बूँदें भी
तृण-मंजरी को स्नेहल सहलाते
विधुर मन को मिल गया हो जैसे
प्रणय गीत और मनमीत
छिड़ जाते हैं वीणा के तार
गूँज उठता है मधुर संगीत
अंकुर फूट रही है डाली से
समीर भर-भरकर लाता सौरभ
मुकुलित सरसों से
जब पिक बैठती है आम्रमंजरी के बीच
और गाती है स्वागत गीत
तब कोहरे की चादर को
हौले से हटाकर
होता है बसंत आगमन।

फूल की चाह

जब मिलूँ सूरज की
पहली किरण से
और विदा करूँ
ओस की बूँदों को

तब चाहता हूँ कि
दुनिया में एक नया रंग छाए
आसमान इंद्रधनुषी होकर
पक्षियों से चहचहाए

धरती हरियाली की चुनर ओढ़
हौले से मुसकराए
नदियाँ पहन पैंजनी
लहरों की झनकार का
पर्वतों को गुदगुदाए

गिरि भी खुद को
टुकड़ों में करके
सरिता संग दूर तलक
भ्रमण कर आए

दूर कहीं किसी जंगल में
सिंह हिरण को कोई
प्रेम गीत सुनाए
पतझड़ को रोक कहीं बसंत
वृक्षों को यौवन राग बताए

कोमल पत्तों के संग
प्रौढ़ पर्ण भी

कविता, हाइकु, लघुकथा, कहानी, गजल, बाल-रचना आदि का लेखन। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। पूर्व में आकाशवाणी वाराणसी कार्यरतरती; और वर्तमान में शिक्षिका।

ताल से ताल मिलाए
हो आपगा भी मतवाली
रेगिस्तान में हरियाली के
रंग बहाए

हो खुशनुमा आबोहवा धरा की
कोयल भी बसंत राग गाए
काँटों को भी सलीका आ जाए
बागबाँ से मीत का
फिर लिखे ब्रह्मांड एक गीत
धरा और अंबर के
शाश्वत प्रीत का।

बसंत बहार

पीली-पीली चुनर
रंग-बिरंगी छाप
हरा-हरा किनारा
साथ में हैं भँवरे का जाप
मतवाली, रंग-रंगीली बसंत
जिसको निकली डाल।
पवन झकोरे मारे
आम्रमंजरी की वह सुगंध
कोयल की कूक निराली
मधु से मधुप होकर अंध
छैल छबीली, मृदुभाषी बसंत
चल रही लेकर सबको संग।
फूल खिले, खिला हर अंग
धरती ने ली अँगड़ाई
मानो होकर दंग
धीरे से शरमाई
थोड़ी सी इठलाई
मधुमती, सजीली बसंत
सुनने दो मुझको भी राग-रंग।
प्यार लिये, सौंदर्य लिये
कुसुम की महक लिये
मधुप का गुंजार
इंसान की क्या हिम्मत
कि न हो मतवाला
न पीए मधुशाला
अनोखी, बसंती बसंत
कर दे सबको मस्त।

सा.अ.
ग्राम-ढकवा, रामपुर, तहसील-सैदपुर,
जिला-गाजीपुर-२३३२२३
दूरभाष : ६३८६०१२२८५

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' के फरवरी तथा मार्च अंक मिले। एक लंबे अरसे बाद अंक को आद्योपांत आत्मसात् किया। श्री मयंक मुरारीजी का 'जीवन के प्राण हैं सूर्यदेव' आलेख साहित्य-जगत् के लिए एक दस्तावेज है। यों तो सभी रचनाएँ श्लाघा के उपयुक्त हैं ही, किंतु उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' का 'मैं शबरी हूँ राम की', उषा कुशवाहा का 'शगुन', कीर्ति काले का 'सहमी सी भोर है' हृदय को छू गईं। यह पत्रिका मेरी जिजीविषा है अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में। ईश्वर आप सभी को ऊर्जा देते रहें, ताकि यह पत्रिका अपने अग्रिम समय में और भी विस्तार के साथ साहित्य शिखर को चूमती रहे।

—ब्रजकिशोर बक्शी, पुडुचेरी

'साहित्य अमृत' का मार्च २०२२ अंक मिला, अनेक धन्यवाद। सदैव की तरह सम्मिलित सामग्री बेहद रुचिकर व प्रभावी है। संपादकीय व प्रतिस्मृति तो पत्रिका हाथ में आते ही पढ़ जाता हूँ। आलेख, व्यंग्य, कविता, कहानियाँ, संस्मरण के साथ ही नात्सु मे सोसेकी (सत्कार त्रिपाठी) की 'तीसरी रात का सपना' भी स्वप्नपरक कहानी होने के बावजूद सोचने के लिए बाध्य करती है। इस अंक में आपने मेरी बाल-कहानी 'विश्वासघात' को स्थान दिया, इसके लिए हृदय से आभारी हूँ।

—महावीर रवांल्टा, उत्तरकाशी (उत्तराखंड)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक मिला। बहुत सुंदर है, बधाई। संपादकीय अच्छा है। हरिओम पंवार की कविता अच्छी है; दिनकर की याद आ गई। महिपाल सिंह राठौड़ का आलेख बहुत अच्छा है; शोध की बहुत संभावना है। श्री मयंक मुरारी का आलेख 'जीवन के प्राण हैं सूर्यदेव' बहुत अच्छा लगा। लेखक ने बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से लिखा है। 'मन की गाँठ' अच्छी कहानी है। हेमंत शर्मा का 'रामानुजाचार्य' पर आलेख बहुत अच्छा है। हैदराबाद में उनकी विराट् मूर्ति स्थापित की गई है। लेख में और विस्तार आ सकता था।

—किशोरीलाल व्यास, हैदराबाद (आ.प्र.)

बैसाखी पर केंद्रित आकर्षक आवरण-पृष्ठ के साथ 'साहित्य अमृत' का अप्रैल २०२२ अंक यथासमय प्राप्त हुआ। संपादकीय 'प्रभु राम के देश में…' में एक साथ तीन विषयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। संपादकीय में आज की युवा पीढ़ी को यह सीख देने की कोशिश की गई है कि हम पुरुषोत्तम श्रीराम के देश में कहाँ से कहाँ चले आए हैं। कहाँ प्रभु श्रीराम अपनी सौतेली माँ के आदेश और पिता के वचन का पालन करने के लिए राजसी भोग-विलास छोड़ वन-गमन करते हैं, वहीं हमारी वर्तमान पीढ़ी अपने जन्मदाताओं को वृद्धाश्रम रूपी वनवास झेलने को मजबूर कर देती है। जहाँ श्रीराम एवं माता सीता की जोड़ी आपसी प्रेम व समर्पण का पूरे विश्व में श्रेष्ठ उदाहरण है, वहीं आज की जोड़ियाँ छोटी-छोटी बातों पर तलाक ले लेती हैं। अत: आज हमें उन आदर्शों को आत्मसात् करने की जरूरत है। संपादकीय में युद्ध की विभीषिका पर भी प्रकाश डाला गया है, साथ ही चुनावों पर भी। रेनू मंडल की लघुकथा 'विवशता' अच्छी लगी, जो एक विवश पति और एक लाचार पिता की कहानी है। साथ ही प्रकाश मनुजी की कहानी 'थैंक्यू नंदू, थैंक्यू आंटी' बहुत अच्छी लगी, जिसमें एक नटखट, चपल, चंचल नंदू के स्नेही व कोमल हृदय को दरशाया गया है। बालस्वरूप राहीजी की गजलें भी अच्छी लगीं। अन्य रचनाएँ भी अच्छी हैं, धन्यवाद।

—हेमंत श्रीवास्तव, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

मनमोहक मुखपृष्ठ से सज्जित 'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक मिला। ध्यानमग्न हो अंक को आद्योपांत पढ़ा। संपादकीय सीख देनेवाला है। राजशेखर व्यासजी का आलेख 'हम क्यों भूलते जा रहे हैं विक्रम संवत्?' ज्ञानवर्धन करनेवाला है। इसे पढ़कर हमें अपनी संस्कृति पर गर्व होता है और विक्रम संवत् पर भी, जो प्राचीनतम है। 'जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख' में डॉ. भीमराव आंबेडकर और मदाम भीकाजी कामा का संक्षिप्त जीवन-परिचय पढ़ ज्ञानवर्धन हुआ। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसी माह १४ अप्रैल को अंबेडकर जयंती भी है। ब्रह्मानंद झा की कविता 'रिश्ते सँभालकर देखो' अच्छी लगी। इसके अलावा सभी रचनाएँ स्तरीय लगीं। इस प्रकार की अच्छी-अच्छी रचनाएँ पढ़वाने के लिए 'साहित्य अमृत' की पूरी टीम साधुवाद को पात्र है।

—अलका जोशी, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

पूर्व की भाँति 'साहित्य अमृत' के अप्रैल-२०२२ अंक का मुखपृष्ठ एवं इसमें प्रकाशित छायाचित्र काफी आकर्षक व मनमोहक है, साथ ही इसकी साज-सज्जा भी खूबसूरत है। इस अंक की सभी रचनाएँ भावपूर्ण, सार्थक तथ्यपरक तथा अंतर्मन को छू लेनेवाली हैं। किंतु कर्नल पी.सी. वशिष्ठजी की कहानी 'जीवाणु सम्मेलन' अच्छी लगी। रेणु 'राजवंशी' गुप्ता का आलेख 'अमेरिका का हिंदू समाज, पहचान की तलाश' भी बहुत अच्छा लगा।

—हरि प्रसाद, जयपुर (राजस्थान)

'साहित्य अमृत' के अप्रैल-२०२२ अंक का चित्र देख दिल खुश हो जाता है। संपादकीय अच्छा लगा। यह आज की पीढ़ी को बहुत ही सरल कहानी व उदाहरण प्रस्तुत कर एक अच्छी सीख देने का प्रयास है। मंजु गुप्ता की कविता 'मस्ती में झूमता' बहुत अच्छी लगी। संदीप राशिनकर का आलेख 'लोक-संस्कृति का आँगन : पुरखौती मुक्तांगन' छत्तीसगढ़ की लोक-संस्कृति पर एक उत्तम आलेख बन पड़ा है। यह आलेख छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति पर प्रकाश डालने का विद्वत्तापूर्ण प्रयास है। पत्रिका में समाविष्ट अन्य सभी रचनाएँ ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद व प्रेरणादायक हैं। विशेष रूप से प्रकाश मनुजी की कहानी 'थैंक्यू नंदू, थैंक्यू आंटी', योगेंद्रनाथ शुक्ल की लघुकथा 'चोहद्दी से मुक्त', देव प्रसाद तिवारी का आलेख 'अवस्थापन एक अनवरत यात्रा' वेद प्रकाशजी का आलेख 'दायित्व बोध का प्रश्न आदि रचनाएँ सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं। इस तरह की बेहतरीन रचनाएँ प्रकाशित करने के लिए 'साहित्य अमृत' परिवार का अशेष धन्यवाद।

—शरद कुमार, अलीगढ़ (उ.प्र.)

वर्ग पहेली (१९४)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ मई, २०२२ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रा द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जुलाई २०२२ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१९२) का शुद्ध हल

१ प्रो	षि	२ त	३ प	४ ति	का	■	५ स	६ ह
■	■	७ ह	र	म	■	८ ह	मा	म
९ प	१० रि	सी	मा	■	११ ब	र	ग	द
१२ ल	हा	ल	ह	■	ग	■	१३ म	र्द
१४ ट	क	■	■	१५ ख	ल	१६ क	■	■
१७ दे	र	स	१८ बे	र	■	१९ का	२० ता	२१ प
२२ ना	ना	■	२३ न	थु	२४ नी	■	२५ जा	प
■	■	२६ ना	जी	वा	द	■	२७ ह	वा
२८ चा	टु	का	र	■	२९ ना	ग	वा	र

★ पुरस्कार विजेता ★

१.**डॉ. विनीता सहल**
३०१, अर्चना कुटीर, तीसरा माला
लोटस आई हॉस्पिटल के सामने
मुंबई (महा.)
दूरभाष : ९४१४१२६२६४

२.**श्री वाई.के. श्रीवास्तव**
१३९२, जयनगर, यादव कॉलोनी
जबलपुर-७८२००२ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२७६८३३५६

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १९२ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री जगदीश राय गर्ग (मानसा), लक्ष्मीदेवी (महेंद्रगढ़), जगदीश चंद्र (कैथल), फकीर चंद ढुल (कैथल), देवाशीश कुमार (मोहाली), अविनाश बॉबी (अर्की), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), शिवकांत (कनीना), दीपा गोस्वामी (रायपुर), आनंद सिंह (दिल्ली)।

वर्ग पहेली (१९४)

बाएँ से दाएँ—

१. क्षतिपूर्ति का धन लेना (४,२)
६. यहूदी धर्म के प्रवर्तक जो ईश्वर के संदेशवाहक माने जाते हैं (२)
७. हरण करनेवाला, मोहक, चोर, ठग (३)
८. केवल दिखावे के लिए किया गया काम (४)
१०. सौ हजार की संख्या, एक लाख (२)
११. बुद्धि, प्रज्ञा (१)
१२. पति या पतनी की माता (२)
१४. सूखा फोड़ा या उसकी पपड़ी, केश (२)
१६. बहनें भाई की कलाई पर बाँधती हैं (२,१,२)
१८. दो रंगा, सफेद-काला, चितकबरा (४)
२०. बाहर आना, वसूल (४)
२१. संपोषक, पालन-पोषण करनेवाला (५)
२२. उस समय, इस कारण (२)
२३. दूसरा, जोड़ का, मुकाबले का, चारा (२)
२५. बान, टेव, व्यसन (२)
२७. आवश्यक, अपेक्षित, वांछित (४)
२९. पुष्परज, केसर का चूर्ण (३)
३०. गीलापन, तरावट, नौका, शोरबा (२)
३१. रात्रि का स्वामी, चंद्रमा (६)

ऊपर से नीचे—

१. दुष्कर, कठिन, नामुमकिन (३)
२. पुलिसदल (४,२)
३. बगुला (२)
४. हिसाब-किताब, आय-व्यय का ब्योरा (२)
५. तात्या टोपे के एक अनन्य सहयोगी (२,३)
६. शरीर, आकृति, तसवीर (२)
९. प्रेमचंद की एक प्रसिद्ध कहानी (२,१,२)
१३. 'दखील' के अक्षर पलट गए हैं यहाँ (३)
१५. व्यवहार में प्रचलित, टिकाऊ (५)
१७. अमिताभ-धर्मेंद्र की एक फिल्म (२,४)
१८. अयोग्य, मूर्ख, अनधिकारी (३)
१९. अफसानानिगार, किस्सागो (५)
२४. माता, जननी (१)
२६. तीन वर्णों का एक मात्रिक गण (छंद) (३)
२७. मोटे सूतों का एक बिछावन (२)
२८. धूल, फूलों का पराग, धोबी (२)
२९. दूसरे का, पराया, लेकिन (२)

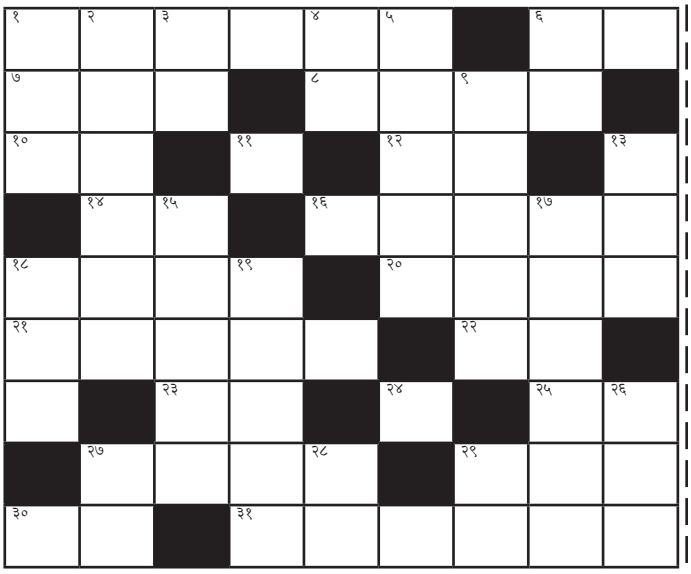

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१९३) का हल अगले अंक में।

'ध्येय-यात्रा' कृति लोकार्पित

१५ अप्रैल को नई दिल्ली के डॉ. आंबेडकर इंटरनेशलन सेंटर में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के ७५वें वर्ष की सुदीर्घ यात्रा के प्रभात प्रकाशन द्वारा दो खंडों में प्रकाशित 'ध्येय-यात्रा' का विमोचन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री दत्तात्रेय होसबाले ने किया। मान. होसबाले ने कहा कि स्थापित सत्ता के विरुद्ध युवा आवाज उठता रहता है, लेकिन वह देश के टुकड़े-टुकड़े करने या समाज को गुमराह करने के लिए नहीं। समाज के प्रति विद्यार्थी के क्या कर्तव्य हैं, ऐसे रचनात्मक आंदोलन को खड़ा करने का काम हमने किया है। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री सुनील अरोड़ा विशिष्ट अतिथि थे, संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख श्री सुनील आंबेकर, अभाविप के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. छगन भाई पटेल व राष्ट्रीय महामंत्री सुश्री निधि त्रिपाठी की विशेष उपस्थिति रही। श्री सुनील आंबेकर ने कहा कि विद्यार्थी परिषद ठहरा हुआ इतिहास नहीं है, बल्कि लगातार इतिहास बना रही है। इसके आयाम बढ़ते जा रहे हैं; नए-नए सामाजिक जीवन के विषयों पर आंदोलन जारी है। श्री सुनील अरोड़ा ने कहा कि अभाविप बोलने का नहीं, सीखने का मंच है। हम भारतीय छात्र आज विश्व के श्रेष्ठ स्थानों पर हैं, लेकिन हमारी कमजोरी यह है कि हम भावुक हो जाते हैं। श्री छगन भाई पटेल ने कहा कि आजादी के ७५ वर्ष के साथ विद्यार्थी परिषद सरिता की तरह बहती जा रही है। सुश्री निधि त्रिपाठी सहित विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति, वरिष्ठ पत्रकार, कई देशों के राजदूत, अभाविप के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष, महामंत्री के साथ विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में अपने कार्य से समाज को दशा-दिशा दे रहे महानुभाव बड़ी संख्या में उपस्थित थे। □

प्रो. रामदरश मिश्र को 'सरस्वती सम्मान' घोषित

४ अप्रैल को नई दिल्ली में के.के बिरला फाउंडेशन द्वारा वर्ष २०११-२०२० की अवधि में प्रकाशित पुस्तकों पर विचार करने के बाद वर्ष २०२१ के 'सरस्वती सम्मान' के लिए हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र के कविता-संग्रह 'मैं तो यहाँ हूँ' को चुना गया है। इस सम्मान के अंतर्गत पंद्रह लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र व प्रतीक-चिह्न भेंट किया जाएगा। □

डॉ. नीरजा माधव को 'डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान'

२६ मार्च को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा आयोजित ३२वें डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान समारोह में डॉ. नीरजा माधव को सम्मान-स्वरूप एक लाख रुपए का चेक एवं मानपत्र प्रदान किया गया। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष एवं सांसद डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे ने अध्यक्षता की। उन्होंने कहा कि डॉ. नीरजा माधव ने केवल वेदना का ही नहीं बल्कि आकांक्षा का साहित्य भी सृजन किया। प्रधान वक्ता प्रो. बल्देवभाई शर्मा ने कहा कि डॉ. हेडगेवार का पुण्य प्रताप ही है कि 'राष्ट्र सर्वोपरि' के मंत्र से अनुप्राणित राष्ट्रभक्त एवं अनुशासित कार्यकर्ताओं की फौज निर्मित हुई है, जो आज राष्ट्र के लिए संजीवनी है। पुस्तकालय के अध्यक्ष डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने डॉ. नीरजा माधव के बहुआयामी साहित्यिक अवदान पर विस्तृत प्रकाश डाला। संचालन डॉ. तारा दूगड़ ने तथा धन्यवाद ज्ञापन किया कुमारसभा के मंत्री श्री महावीर बजाज ने। मंच पर पूर्व क्षेत्र संघचालक श्री अजय नंदी एवं वरिष्ठ चिंतक श्री लक्ष्मी नारायण भाला भी उपस्थित थे। □

'प्रवासी मंच' कार्यक्रम संपन्न

३० मार्च को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित प्रवासी मंच कार्यक्रम में हैंबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी से पधारे भारतविद् श्री राम प्रसाद भट्ट ने 'हिंदी व्याकरणिक परंपरा का इतिहास' विषय पर व्याख्यान दिया। □

दो कृतियों का विमोचन संपन्न

६ मार्च को जबलपुर में सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं साहित्यकार श्री राजेश माहेश्वरी की नवीन कृतियों 'अर्थपथ' एवं 'राजनीति और राजनीतिज्ञ : कल, आज और कल' का विमोचन कलेक्टर डॉ. इलैयाराजा टी. के मुख्य आतिथ्य, ब्रह्मकुमारी आश्रम की प्रमुख सुश्री भावना बहन के विशेष आतिथ्य एवं म.प्र. गौ संरक्षण संस्थान के प्रमुख स्वामी अखिलेश्वरानंदगिरिजी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। संचालन श्री राजेश पाठक 'प्रवीण' एवं आभार प्रदर्शन श्रीमती ज्योति जैन द्वारा किया गया। □

नव्यतम काव्य-कृतियाँ लोकार्पित

२१ मार्च को नई दिल्ली के गांधी स्मारक निधि के सभागार में अखिल भारतीय नागरी लिपि परिषद्, राजघाट के विशेष अधिवेशन में श्री ओम प्रकाश शर्मा 'प्रकाश' की दो काव्य-पुस्तकों 'बच्चे नहीं जानते' तथा 'बिंदु में सिंधु' का लोकार्पण संपन्न हुआ। अध्यक्षता डॉ. पी.सी. पतंजलि ने की। □

२८वाँ राष्ट्रीय कवि-सम्मेलन संपन्न

३ मार्च को जबलपुर में 'संस्कार भारती' के २८वें कवि-सम्मेलन का उद्घाटन विधायक श्रीमती इंदु तिवारी द्वारा किया गया। संचालन श्री योगेश मिश्र ने किया। प्रतिवेदन का वाचन श्री राजेश खरे ने किया। सर्वश्री दीपक तिवारी, प्रणय श्रीवास्तव 'अश्क', सबिहा असर, राजा चौरसिया, सुदीप भोला, बाबा जैसी लाजवाब, महेंद्र मधुर आष्टा, काव्या मिश्रा ने काव्य पाठ किया तथा आचार्य भगवत दुबे के आशीर्वाद एवं मधुर मुक्तकों से कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ। □

डॉ. आरसु को 'अनुवादक रत्न पुरस्कार'

केरल सरकार ने अनुवाद के क्षेत्र में समग्र योगदान देनेवालों के लिए भारत भवन में 'अनुवादक रत्न' नाम से पुरस्कार की स्थापना की है। इस वर्ष का पुरस्कार डॉ. आरसु को उनके अद्यतन अनुवादों में 'अक्कित्तम' कविताओं के अनुवाद के लिए प्रदान करने की घोषणा की गई है। □

श्री दामोदर खड़से को 'शताब्दी सम्मान'

विगत दिनों इंदौर में मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति का वर्ष २०२१ का 'शताब्दी सम्मान' मध्य प्रदेश के राज्यपाल श्री मंगूभाई पटेल के करकमलों से डॉ. दामोदर खड़से को प्रदान किया गया; सम्मान-स्वरूप उन्हें एक लाख रुपए की राशि व प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। लोकसभा की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती सुमित्रा महाजन, सांसद श्री

शंकर लालवानी, समिति के प्रधानमंत्री श्री सूर्य प्रकाश चतुर्वेदी, म.प्र. साहित्य अकादमी के निदेशक श्री विकास दवे, समिति के उपसभापति श्री सूर्यकांत नागर, 'वीणा' के संपादक श्री राकेश शर्मा सहित कई गण्यमान्य व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। □

डॉ. नीरजा माधव 'नारी शक्ति पुरस्कार' से सम्मानित

विगत दिनों वाराणसी में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर राष्ट्रपति मान. श्री रामनाथ कोविद ने आकाशवाणी गोरखपुर की निदेशक डॉ. नीरजा माधव को 'नारी शक्ति पुरस्कार २०२०-२०२१' से सम्मानित किया। उन्हें ट्रांसजेंडरों और तिब्बती शरणार्थियों पर विशेष लेखन कार्य के लिए इस पुरस्कार के लिए चुना गया। □

'हेलो फेसबुक' कथा सम्मेलन संपन्न

११ अप्रैल को पटना में भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् के तत्त्वावधान में अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका के पेज पर 'हेलो फेसबुक कथा सम्मेलन' का संचालन करते हुए तथा श्री जितेंद्र कुमार की कथाकृति 'अग्निपक्षी' पर समीक्षात्मक टिप्पणी करते हुए संयोजक श्री सिद्धेश्वर ने अपने विचार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि श्री जितेंद्र कुमार तथा मुख्य वक्ता डॉ. शरद नारायण खरे थे। डॉ. मनोरमा गौतम ने अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए धन्यवाद ज्ञापन किया। □

संगोष्ठी संपन्न

५ अप्रैल को नई दिल्ली में वातायन-यूके की सौवीं संगोष्ठी का शुभारंभ डॉ. एस.के. मिश्रा द्वारा संपादित एक लघु फिल्म से हुआ, जिसका संचालन सुश्री अलका सिन्हा ने किया। स्वागत उद्बोधन सुश्री मीरा मिश्रा कौशिक ने दिया। सर्वश्री पद्मेश गुप्त, वीरेंद्र गुप्ता, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, सच्चिदानंद जोशी, रेखा सेठी, अरुणा अजितसरिया, नारायण कुमार, अनिल शर्मा जोशी ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. बीना शर्मा ने किया। वर्चुअल कार्यभार सर्वश्री आशीष मिश्रा, कृष्ण कुमार, चेतन और आस्था देव ने सँभाला। □

सोच-विचार के 'प्रकाश मनु एकाग्र' का लोकार्पण

१९ फरवरी को दिल्ली में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र के निवास पर उनके कर-कमलों से डॉ. प्रकाश मनु पर केंद्रित सोच-विचार पत्रिका के अंक का लोकार्पण एवं परिचर्चा कार्यक्रम संपन्न हुआ। पत्रिका के संपादक श्री नरेंद्रनाथ मिश्र एवं सर्वश्री ओम निश्चल, स्मिता मिश्र, जसवीर त्यागी, विशेषांक के अतिथि संपादक वेद मित्र शुक्ल, रामसुधार सिंह, राहुल, वैद्यनाथ झा और रविशंकर सिंह की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति रही। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज का ९५वाँ स्थापना दिवस गांधी सभागार में आयोजित किया गया। स्थापना दिवस के अवसर पर विद्वत् सम्मान समारोह में प्रबुद्ध साहित्यिक मनीषियों को सम्मानित किया गया। अध्यक्षता पूर्व कैबिनेट मंत्री श्री नरेंद्र कुमार सिंह गौर ने की। एकेडमी के अध्यक्ष श्री उदय प्रताप सिंह ने बताया कि प्रयागराज के वयोवृद्ध साहित्यकार, पं. डॉ. राजकुमार शर्मा को सम्मानित किया गया है। इस मौके पर वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्य, कला, संस्कृति की मासिक पत्रिका नूतन कहानियाँ के संपादक श्री सुरेंद्र अग्निहोत्री, पूर्व कुलपति प्रो. गिरीश चंद्र त्रिपाठी, साहित्यकार ब्रजदेव पांडेय, आई.पी.एस. प्रताप गोपेंद्र, वरिष्ठ कवि फतेह बहादुर सिंह, कथाकार प्रो. बाबू राम त्रिपाठी, आलोचक प्रो. मंगला प्रसाद सिंह, वरिष्ठ साहित्यकार रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' एवं आचार्य बी.एच.यू. के प्रो. श्रद्धा सिहं को भी प्रतीक-चिह्न एवं शॉल भेंट कर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. विनम्र सेन सिंह ने किया। □

कवि-सम्मेलन तथा विचार-गोष्ठी संपन्न

१३ अप्रैल को इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती तथा गांधी स्मृति एवं दर्शन स्मृति द्वारा हिंदू नववर्ष तथा आजादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में गांधी स्मृति एवं दर्शन स्मृति, राजघाट में एक विचार-गोष्ठी तथा कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में श्री विजय गोयल (उपाध्यक्ष, गांधी स्मृति एवं दर्शन स्मृति), विशिष्ट अतिथि श्री हंसराज हंस (लोकसभा सांसद) तथा श्री लाल सिंह आर्य (राष्ट्रीय अध्यक्ष, अनुसूचित जाति मोर्चा, भाजपा) आमंत्रित थे। कार्यक्रम के संयोजक श्री बृजेश कुमार गर्ग तथा सह संयोजक श्री अक्षय अग्रवालजी एवं डॉ. जितेंद्र वीर कालराजी थे। अध्यक्षता श्री तिलक चाँदना (संरक्षक, इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती) ने की।

इस अवसर पर आयोजित कवि-सम्मेलन में देश के प्रतिष्ठित कवि सर्वश्री सारस्वत मोहन मनीषी, जय सिंह आर्य 'जय', राजेश जैन चेतन, सुनहरी लाल वर्मा 'तुरंत', ओंकार त्रिपाठी, मनोज मिश्र कप्तान, सुनील शर्मा, अरुण द्विवेदी 'अनंत' आमंत्रित थे। संचालन सर्वश्री संजीव सिन्हा तथा भुवनेश सिंघल ने किया। □

डॉ. इंदुशेखर तत्पुरुष सम्मानित

१६ अप्रैल को प्रख्यात कवि, आलोचक एवं 'साहित्य परिक्रमा' के संपादक डॉ. इंदुशेखर तत्पुरुष को मीडिया-विमर्श परिवार द्वारा नई दिल्ली के कॉन्स्टिट्यूशन क्लब में आयोजित सम्मान समारोह में १४वें पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान से सम्मानित किया गया। समारोह की अध्यक्षता प्रोफेसर चंदन कुमार ने की। कार्यक्रम में हंसराज कॉलेज की प्राचार्य डॉ. रमा एवं प्रख्यात साहित्यकार श्री गिरीश पंकज विशिष्ट अतिथि थे। सर्वश्री श्रीकांत सिंह, संजय द्विवेदी ने भी अपने विचार रखे। युवाओं को संस्कृत से जोड़ने के उद्देश्य से प्रकाशित श्री शिवेश प्रताप की पुस्तक 'जिंदगी की बात, संस्कृत के साथ' का विमोचन भी किया गया। संचालन डॉ. विष्णुप्रिया पांडेय ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ. सौरभ मालवीय ने किया। □

गजल-संग्रह 'मेरी खुशबू मेरे अंदर' लोकार्पित

१७ अप्रैल को साहित्यिक संस्था 'कृष्णबिहारी नूर साहित्य संस्थान' के तत्त्वावधान में वरिष्ठ गजलकार डॉ. कृष्णकुमार नाज के गीत-संग्रह 'साथ तुम्हारे' और कवयित्री डॉ. सीमा विजयवर्गीय के गजल-संग्रह 'तेरी खुशबू मेरे अंदर' का लोकार्पण सिविल लाइंस, मुरादाबाद स्थित दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय के सभागार में संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामनंद शर्मा ने की, मुख्य अतिथि इं. श्री उमाकांत गुप्त तथा विशिष्ट अतिथि शायर श्री मंसूर उस्मानी व वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. महेश दिवाकर थे। संचालन नवगीतकार श्री योगेंद्र वर्मा व्योम ने किया। □